ग्यारहवीं कक्षा के लिए

हिंदी पुस्तक-11

E5T8A6

ਇਹ ਪੁਸਤਕ ਪੰਜਾਬ ਸਰਕਾਰ ਦੁਆਰਾ ਮੁਫ਼ਤ
ਦਿੱਤੀ ਜਾਣੀ ਹੈ ਅਤੇ ਵਿਕਰੀ ਲਈ ਨਹੀਂ ਹੈ।

पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड

साहिबज़ादा अजीत सिंह नगर

© पंजाब सरकार

संशोधित संस्करण : 2022-23...........................2,000 प्रतियाँ

All rights, including those of translation, reproduction and annotation etc., are reserved by the Punjab Government.

सम्पादक मंडल

डॉ० नीरू कौड़ा — विनोद शर्मा

डॉ० सुनील बहल — शशि प्रभा जैन

चेतावनी

1. कोई भी एजेंसी-होल्डर अधिक पैसे लेने के उद्देश्य से पाठ्य-पुस्तकों पर जिल्दबन्दी नहीं कर सकता। (एजेंसी-होल्डरों के साथ हुए समझौते की धारा नं. 7 के अनुसार)
2. पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड द्वारा मुद्रित तथा प्रकाशित पाठ्य-पुस्तकों को जाली और नकली प्रकाशन (पाठ्य-पुस्तकों) की छपाई, प्रकाशन, स्टॉक करना, जमाखोरी या बिक्री आदि करना भारतीय दंड प्रणाली के अन्तर्गत गैरकानूनी जुर्म है।

   (पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड की पाठ-पुस्तकें बोर्ड के 'वाटर मारक' वाले कागज़ के ऊपर ही मूद्रित की जाती हैं।)

सचिव, पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड, विद्या भवन फेज़-8, साहिबज़ादा अजीत सिंह नगर 160062 द्वारा प्रकाशित एवं सुप्रीम ऑफसेट प्रेस, 133, उद्योग केन्द्र, एक्स-I, ग्रेटर नोएडा, उ०प्र०, द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

स्कूल स्तर के विभिन्न-श्रेणियों के लिए पाठ्यक्रमों को संशोधित करना और उन संशोधित पाठ्य-क्रमों पर आधारित पाठ्य-पुस्तकें तैयार करना पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड का प्रमुख उद्देश्य है। इसी उद्देश्य के अन्तर्गत राष्ट्रभाषा हिंदी (वैकल्पिक) विषय के सीनियर सेकंडरी कक्षाओं के पाठ्यक्रम को संशोधित करने और संशोधित पाठ्यक्रम के आधार पर पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण की क्रमिक योजना बनाई गई है।

प्रवेश वर्ष 2007 से ग्यारहवीं श्रेणी के हिंदी विषय के पाठ्यक्रम और प्रश्न-पत्र की रूपरेखा को विशेष रूप से संशोधित किया गया है। इस संशोधित रूपरेखा के आधार पर हस्तीय पाठ्य-पुस्तक को तैयार किया गया है।

पुस्तक को तैयार करते समय राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुसार राष्ट्रभाषा हिंदी के लिए निर्धारित न्यूनतम अधिगम स्तर का विशेष ध्यान रखा गया है। पुस्तक के छह भाग हैं – प्राचीन काव्य, आधुनिक काव्य, निबन्ध भाग, कहानी भाग, लघु कथाएँ और एकांकी भाग। पुस्तक को सम्पादित करते समय ग्यारहवीं श्रेणी के विद्यार्थियों के बौद्धिक स्तर का विशेष ध्यान रखा गया है। पाठों के चयन के समय भारतीय परिवेश एवं संस्कृति के साथ-साथ पंजाब की गौरवमयी पृष्ठभूमि को विशेष स्थान दिया गया है। प्रत्येक पाठ से पूर्व लेखक परिचय एवं पाठ परिचय के साथ पाठ के अन्त में निर्धारित रूपरेखा को आधार बनाकर अभ्यास हेतु प्रश्न दिए गए हैं।

हमें पूर्ण आशा है कि पुस्तक विद्यार्थियों में नैतिक एवं मानवीय मूल्यों के विकास में सहायक होगी। फिर भी, पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने के लिए क्षेत्र से आए सभी सुझाव बोर्ड द्वारा साभार स्वीकार किये जायेंगे।

चेयरमैन

पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड

'ਸਮਾਜਿਕ ਨਿਆਂ ਅਧਿਕਾਰਤਾ ਅਤੇ ਘੱਟ ਗਿਣਤੀ ਵਿਭਾਗ', ਪੰਜਾਬ

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

प्राचीन काव्य

1.	संत कबीर	–	कबीर वाणी	1
2.	गोस्वामी तुलसीदास	–	रामराज्य वर्णन	6
3.	रसखान	–	सवैये	9
4.	रहीम	–	दोहे	12
5.	गुरु तेग बहादुर	–	पदावली	16

आधुनिक काव्य

6.	अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	–	पवनदूत	19
7.	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	–	तोड़ती पत्थर जागो फिर एक बार	25
8.	सुभद्रा कुमारी चौहान	–	वीरों का कैसा हो वसन्त? ठुकरा दो या प्यार करो	31
9.	रामधारी सिंह 'दिनकर'	–	मानव	36
10.	उदयभानु 'हंस'	–	ऐ वीरो, भारतवर्ष के	40
11.	दुष्यन्त कुमार	–	कहाँ तो तय था	43
12.	सुरेश चन्द्र वात्स्यायन	–	वारिसनामा स्वराज के लिए बहे लहू	46

13.	सुभाष रस्तोगी	–	बुद्धम शरणम् गच्छामि	51
14.	उषा आर. शर्मा	–	पिघलती साँकलें	
			तुम-हम	56

निबन्ध भाग

15.	बाबू गुलाबराय	–	भारत की सांस्कृतिक एकता	61
16.	स्वामी विवेकानन्द	–	युवाओं से	68
17.	महादेवी वर्मा	–	स्त्री के अर्थ-स्वातन्त्र्य का प्रश्न	74
18.	लीलाधर शर्मा पर्वतीय	–	भीड़ में खोया आदमी	81
19.	डॉ॰ एम. एल. रामनाथन	–	रसायन और हमारा पर्यावरण	86
20.	डॉ॰ इन्द्रनाथ चावला	–	एक मिलियन डॉलर दृश्य	92
21.	डॉ॰ रवि कुमार 'अनु'	–	शहीद सुखदेव	99
22.	मोहन राकेश	–	विज्ञापन युग	108

कहानी भाग

23.	मुंशी प्रेमचन्द	–	प्रेरणा	115
24.	पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'	–	उसकी माँ	128
25.	सच्चिदानन्द हीरानन्द			
	वात्स्यायन 'अज्ञेय'	–	सेब और देव	142
26.	मन्नू भण्डारी	–	मजबूरी	153

लघु कथाएँ

27.	सिमर सदोष	–	अपना-अपना दु:ख	166
28.	प्रेम विज	–	अटूट बंधन	169
29.	सुरेन्द्र मंथन	–	हरियाली	172
30.	कमलेश भारतीय	–	जन्मदिन	175
31.	अशोक भाटिया	–	रिश्ते	178
32.	विनोद शर्मा	–	नई नौकरी	180

एकांकी भाग

33.	उपेन्द्रनाथ 'अश्क'	–	अधिकार का रक्षक	182
34.	विष्णु प्रभाकर	–	टूटते परिवेश	199

1

प्राचीन काव्य

1. संत कबीर

(जन्म सन् 1398 - निधन सन् 1518)

भक्ति काल के निर्गुण भक्ति धारा के सन्त कवियों में कबीर दास का नाम विशेष लिया जाता है। हिंदी के प्राचीन कवियों के जीवन परिचय के संबंध में विद्वानों में मतभेद रहा है। इसलिए कबीर के जन्म -सम्वत् एवं स्थान के विषय में मात्र अनुमान ही लगाया जा सकता है। अधिकांश विद्वान इनका जन्म सम्वत् 1455 ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा (सन् 1398) को मानते हैं। कबीर पंथियों के विश्वास के अनुसार कबीरदास ज्योति स्वरूप थे और ये लहरतारा के कमल-पत्र पर अवतीर्ण हुए थे। इनके जन्म के विषय में अनेक किंवदंतियाँ भी प्रचलित हैं।

इनका जन्म जुलाहा परिवार में होने अथवा पालन-पोषण होने का अनुमान भी लगाया जाता है। इनके पिता का नाम नीरू था तथा माता का नाम नीमा था। कबीर की पत्नी का नाम लोई था। इनके कमाल नामक पुत्र होने का अनुमान भी लगाया जाता है।

कबीरदास के जीवन परिचय का अनुमान इनकी रचनाओं के आधार पर लगाया जाता है। जुलाहा वंश से संबंधित होने के कारण इनका व्यवसाय सामान्य था। इनकी शिक्षा दीक्षा नहीं हुई थी, पर इनमें अन्तर्ज्ञान होने के अनेक प्रमाण मिल जाते हैं। ये बचपन से ही भक्ति की ओर आकृष्ट थे तथा इन्होंने भक्ति-आंदोलन के संस्थापक स्वामी रामानन्द की शिष्यता ग्रहण की थी। साधु-संगति, गुरु-महत्व एवं जीवन में सहज प्रेमानुभूति की विशेष स्थिति इनकी रचनाओं में मिलती है। सम्वत् 1575 (सन् 1518) में मगहर में इनका देहावसान हुआ माना जाता है। इनके शिष्य हिंदू तथा मुसलमान दोनों थे। इसकी पुष्टि कबीर की मृत्यु पर मगहर में एक समाधि तथा मकबरा के निर्माण से होती है।

कबीर ने स्वयं किसी ग्रंथ की रचना नहीं की थी। इनकी साखियों तथा विशिष्ट पदों को इनके पश्चात् इनके शिष्यों ने संकलित किया। इन्होंने जनता को जिस रूप में भी उपदेश दिया- जीवन एवं समाज की वास्तविकता का बोध करवाया। उसी के कारण इनके शिष्य काफी हो गए। जिस ग्रन्थ में इन उपदेशों को पदों, सबदों, साखियों एवं रमैणी रूप में संकलित किया गया, उसे 'बीजक' कहा जाता है। 'बीजक' के तीन भाग हैं - 'साखी', 'सबद' और 'रमैणी'। दोहों

को 'साखी' कहा गया है, गेय पदों को 'सबद' की संज्ञा प्रदान की गई है तथा 'रमैणी' में इनके सिद्धांत प्रतिपादित हैं। कबीर की कुछ उलटबाँसियों का उल्लेख भी किया जाता है। 'गुरु-ग्रंथ साहिब' में भी कबीर की वाणी सुशोभित है।

कबीर को साध-सधुक्कड़ी भाषा का कवि कहा जाता है। इन्होंने मुक्तक शैली को अपनाया। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को भाषा का डिक्टेटर माना है। इनकी भाषा में ब्रज, अवधी, खड़ीबोली, बुंदेलखंडी, भोजपुरी, पंजाबी तथा राजस्थानी भाषाओं के अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं। सचमुच संत कवियों में कबीरदास अनेक दृष्टियों से संत शिरोमणि कवि माने जा सकते हैं।

पाठ परिचय

कबीर भक्ति काल की ज्ञानमार्गी शाखा के प्रवर्तक थे। उनके शिष्यों के सहयोग से उनकी साखी, सबद व रमैणी 'बीजक' ग्रंथ में संकलित हुए। प्रस्तुत पाठ के अन्तर्गत कबीर जी की साखियाँ, सबद व रमैणी के कुछ अंश संकलित हैं। कबीर जी की इन रचनाओं में उनका जीवन दर्शन झलकता है। साँसारिक नश्वरता, अहंकार का विनाश, सत्संग का महत्व, प्रभु भक्ति, गुरु का महत्व, मानव जन्म की श्रेष्ठता उनके काव्य का प्रतिपाद्य है। यहाँ संकलित सबद में प्रभु को माँ और अपने को बेटा मानते हुए आत्मा-परमात्मा में एक अनन्य सम्बन्ध की सृष्टि की गई है। 'रमैणी' में उस सर्वशक्तिमान की अपार महिमा का गान किया गया है। विषय कोई भी हो- कबीर की शैली में एक सपाट-स्पष्ट-सी बात करने की क्षमता है - इसलिए सत्य कटु होने के कारण अगर कहीं थोड़ी चुभन हो तो अत्युक्ति न होगी। अनुप्रास, उदाहरण, उपमा, रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। अलंकारों की सहजता के साथ लोकानुभव की सूक्ष्मता, सत्यता, वचन-वक्रता और गेयता के गुण इनकी शैली में हैं।

साखी

मनिषा जनम दुर्लभ है, देह न बारंबार।
तरवर थैं फल झड़ि पड्या, बहुरि न लागै डारि॥
कबीर कहा गरबियौ, काल गहै कर केस।
ना जाणै कहाँ मारिसी, कै घर कै परदेस॥
प्रेम न खेतौं नीपजै, प्रेम न हाटि बिकाइ।
राजा परजा जिस रुचै, सिर दे सो ले जाइ॥

साइं सूं सब होता है, बंदे थैं कछु नाहिं।
राई थैं परबत करै, परबत राई मांहि॥
ऐसी बाणी बोलिये, मन का आपा खोइ।
अपना तन सीतल करै, औरन को सुख होइ॥
कबीर औगुण ना गहै, गुण ही कौं ले बीनि।
घट घट महु के मधुप ज्यूँ, पर आत्म ले चीन्हि॥
हिंदू मूये राम कहि, मुसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता, दुह में कदे न जाइ॥
कबीर खाई कोट की, पांणी पिवै न कोइ।
जाइ मिलै जब गंग मैं, तब सब गंगोदक होइ।
केसों कहा बिगड़िया, जे मूंडे सौ बार।
मन को काहे न मूंडिए, जामैं विषै विकार॥
पर नारी पर सुन्दरी, विरला बचै कोइ।
खाता मीठी खाँड सी, अंति कालि विष होइ॥
कबीर सो धन संचिये, जो आगै कूं होइ।
सीस चढ़ायैं पोटली, ले जात न देख्या कोइ॥
गो-धन, गज-धन, बाजि-धन और रतन-धन खान।
जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान॥
राम रसाइन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीवण दुर्लभ हैं, माँगै सीस कलाल॥
सुखिया सब संसार है, खायै अरु सौवे।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै॥
वासुरि सुख, ना रैणि सुख, ना सुख सुपिनै माहिं।
कबीर बिछुरया राम सूं, ना सुख धूप न छाँहिं॥

पीछै लागा जाइ था, लोक बेद के साथि।
आगै थैं सतगुरु मिल्या, दीपक दीया हाथि॥
लघुता से प्रभुता मिलै, प्रभुता से प्रभु दूरि।
चोंटी लै सक्कर चली, हाथी से सिर धूरि॥

सबद

हरि जननी मैं बालिक तेरा,
काहे न औगुण बकसहु मेरा। (टेक)
सुत अपराध करै दिन केते, जननी के चित रहें न तेते।
कर गहि केस करै जो घाता, तऊ न हेतु उतारै माता।
कहै कबीर एक बुधि बिचारी, बालक दु:खी दु:खी महतारी॥

रमैणी

(राग सूहौ)

तूं सकल गहगरा, सफ सफा दिलदार दीदार।
तेरी कुदरति किनहूँ न जानीं, पीर मुरीद काजी मुसलमानीं॥
देवी देव सुर नर गण गंध्रप, ब्रह्म देव महेसर॥

शब्दार्थ

मनिषा	=	मानव का	बहुरि	=	फिर से	थैं	=	(तैं) से
गहै	=	पकड़े हुए	नीपजै	=	उत्पन्न होता है	साईं	=	स्वामी (प्रभु)
आपा	=	अहं (दर्प)	बीन	=	छांटना	महु	=	मधु (शहद)
चीन्हि	=	पहचानना	कोट	=	किला	गंगोदक	=	गंगाजल
विरला	=	कोई	रसाइन	=	रसायन	रसाल	=	मधुर
कलाल	=	मदिरा विक्रेता किन्तु यहाँ इसका अर्थ सद्गुरु है				महतारी	=	माता
घाता	=	प्रहार करना	गहगरा	=	शक्तिमान	गंध्रप	=	गंधर्व
महेसर	=	महादेव	दुह	=	दोनों			

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. कबीर जी के अनुसार मानव को जीवन में किन-किन गुणों को अपनाना चाहिए ?
2. मानव को गर्व क्यों नहीं करना चाहिए ?
3. कबीर ने किस प्रकार का धन संचय करने को कहा है ?
4. कबीर ने ईश्वर को माँ और स्वयं को बालक मानते हुए किस तर्क के आधार पर अपने अवगुणों को दूर करने को कहा है ?
5. कबीर ने प्रभु को सर्वशक्तिमान मानते हुए क्या कहा है ? रमैणी के आधार पर उत्तर दें ।
6. कबीर ने रूढ़ियों का खंडन किस प्रकार किया है ?

******

2. गोस्वामी तुलसीदास
(जन्म सन् 1532- निधन सन् 1623)

हिंदी साहित्य में गोस्वामी तुलसीदास का उल्लेख एक महाकवि के रूप में किया जाता है। भक्तिकाल के रामभक्ति शाखा के कवियों में इनको सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। इनका जन्म 1532 ई० के आसपास राजापुर में हुआ था। किसी विद्वान का कथन है कि गोस्वामी जी का जन्म सोरों में हुआ था और वे इसके लिए प्रमाण भी उपस्थित करते हैं - किन्तु विद्वानों में अधिक शोध के पश्चात् इनका जन्म स्थान राजापुर में ही माना है। इनके पिता का नाम आत्माराम और माता का नाम हुलसी था।

तुलसीदास जी को बाल्यावस्था में उदर-पोषण के लिए बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। इन्होंने अपनी रचना कवितावली में इन कठिनाइयों का चित्र बड़ी मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है। राजापुर में दीन-बन्धु पाठक की कन्या रत्नावली के साथ इनका विवाह हुआ। रत्नावली के रूप ने इन्हें अपने में इतना तन्मय कर लिया कि वे और सब भूल गए। अपनी पत्नी रत्नावली के प्रति इनकी आसक्ति के अनेक संदर्भ प्रचलित हैं। अपनी पत्नी को प्रताड़ना से ही ये रामभक्ति की ओर उन्मुख हुए-ऐसा माना जाता है।

गोस्वामी तुलसीदास जी श्री रामचन्द्र जी के अनन्य भक्त थे। इस संबंध में कई धारणाएं प्रचलित हैं।

गोस्वामी जी जी एक भक्त, साधक एवं साथ ही महाकवि थे। इनकी अनेक रचनाएँ उपलब्ध हैं- रामचरितमानस, विनय-पत्रिका, कवितावली, गीतावली, रामाज्ञा प्रश्न, वैराग्य संदीपिनी, पार्वती-मंगल, रामलला नहछू, बरवै रामायण, कृष्ण-गीतावली तथा जानकी-मंगल आदि।

तुलसीदास के राम परब्रह्म परमात्मा के अवतार थे। सगुणोपासना के पक्षधर भक्त कवि ने सगुण और निर्गुण के अभेद की पुष्टि की है। भक्ति में एकता एवं व्यापकता का भाव स्पष्ट है। इनकी भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह लोक रंजक और लोक धर्म की रक्षक है। वह जन-जन से विश्व की ओर बढ़ती है और सम्पूर्ण विश्व में एक ही राम का अनुभव करती है। फिर भी वह मर्यादा का परित्याग नहीं करती। मर्यादा की रक्षा के लिए ही वह वर्णाश्रम धर्म को मानती है। इन्होंने अपनी रचनाओं में परहित एवं लोक कल्याण को महत्त्व दिया है। तुलसीदास की भक्ति लोक कल्याण की ही भावना पर आधारित है। इन्होंने ज्ञान मार्ग का कहीं खंडन नहीं किया, पर भक्ति मार्ग पर ही अधिक जोर दिया। इसीलिए इनको समन्वयवादी कवि माना जाता है। इन्हें राम भक्त शिरोमणि कवि मानना उचित प्रतीत होता है।

पाठ परिचय

तुलसीदास का 'रामचरितमानस' हिंदी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड से राम-राज्य प्रसंग यहाँ संकलित है। 'रामराज्य' जो स्वतंत्र भारत का एक आदर्श है, स्वतन्त्रता सेनानियों का एक स्वप्न था, का भावपूर्ण वर्णन किया गया है। राम-राज्य में चतुर्दिक हर्षोल्लास का वातावरण था – धर्म अपने चरम पर था – अधर्म का नाम तक नहीं था – इसमें अभाव, अल्पमृत्यु, साम्प्रदायिक द्वेष, दारिद्रय व अविवेक का नाम तक नहीं था। मानव तो क्या वनस्पति और जंगली जीव तक आपस में सौहार्द्र से रहते थे। प्रकृति मानव की आवश्यकतानुसार अपनी समस्त निधियाँ जनकल्याण हेतु देती थी। जहाँ तक कि समुद्र भी अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते थे। इसलिए प्राकृतिक प्रकोप से जनमानस बचा रहता था।

'राम-राज्य' का तुलसीदास जी ने अत्यन्त आत्मीयता से चित्रांकन किया है। पुनरुक्ति प्रकाश, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण अलंकार तथा प्रसाद एवं माधुर्य गुणों का समावेश अत्यंत सुन्दर बन पड़ा है। दोहा एवं चौपाई मात्रिक छन्दों में गेयता का गुण विद्यमान है। भाषा अवधी है – तत्सम शब्दों का प्रयोग प्रायः देखा जा सकता है।

राम-राज्य वर्णन

राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका।
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि व्यापा।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।
चारिउ चरण धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहूँ अघ नाहीं।
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी॥
अल्प मृत्यु नहिं कवीनउ पीरा। सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना॥
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुणी।
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी । सब कृतग्य नहिं कपट सयानी॥

दण्ड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीवहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र के राज॥

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक संग गज पंचानन।
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥

कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा।
सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजर अलि लै चलि मकरंदा॥
लता बिटप मांगे मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं।
ससि संपन्न सदा रह धरणी। हतां मह कृतजुग कै करनी॥
प्रगटीं गिरिन्ह बिबिध मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी।
सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुख कारी॥
सागर निज मरजादा रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं।
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा॥
बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मांगे बारिद देहिं जल, रामचंद्र के राज॥

शब्दार्थ

विषमता = आन्तरिक भेदभाव	बिरुज = नीरोग	अबुध = मूर्ख
निर्दंभ = दम्भ (पाखण्ड) रहित	जहिन्ह = साधुओं	पय = दूध
सरजिज = कमल	मयूखन्हि = चन्द्रमा की किरणें	बारिद = बादल

''दण्ड जतिन्ह ------'' में राजनीति के साम, दाम, दण्ड और भेद का वर्णन है।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. श्रीराम के राज्य में सामाजिक स्थिति किस प्रकार की थी ?
2. रामराज्य में वनस्पति और पशु-पक्षियों की सुरक्षा का वर्णन करें।
3. रामराज्य में प्रकृति का राज्य की समृद्धि में क्या स्थान था ?
4. 'चारिउ चरण धर्म जग माही' में धर्म के किन चार चरणों का वर्णन किया गया है?
5. 'दण्ड जतिन्ह कर भेद जँह, नर्तक, नृत्य समाज' में रामराज्य की किस व्यवस्था का वर्णन है ?
6. गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में रामराज्य का आज की स्थिति में क्या महत्त्व है ?

******

3. रसखान

(जन्म सन् 1558-निधन सन् 1616)

हिंदी के मुसलमान कवियों में रसखान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रसखान उस समय हिंदी की ओर आकर्षित हुए जब कृष्ण-काव्य की मधुर धारा हिंदी के काव्य जगत् को प्लावित कर रही थी। इन्होंने अपने समकालीन कवियों की भांति कृष्ण-काव्य की मधुर धारा प्रवाहित की है। अन्य धर्मावलंबी होने पर भी श्रीकृष्ण - सौन्दर्य पर इनका मुग्ध होना इनके हृदय की शुद्धता और विशालता का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

रसखान का जन्म सन् 1558 के आस-पास दिल्ली के एक सम्पन्न पठान परिवार में हुआ था। कुछ लोगों का कथन है कि ये पठान बादशाहों के वंश के थे। इसलिए इनके जन्म-समय, शिक्षा-दीक्षा, व्यवसाय एवं निधन के संबंध में प्रामाणिक रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

रसखान भगवान श्री कृष्ण के अनन्य भक्त थे। वैष्णव भाव से ओत-प्रोत इनकी रचनाओं से ऐसा ज्ञात होता है कि श्री कृष्ण की भक्ति इनके जीवन का सर्वस्व था। यद्यपि वे मुसलमान थे और फारसी के विद्वान थे, पर हिन्दू संस्कृति के प्रति इनके मन में अत्यधिक अनुराग था। वे साधु और संतों के संपर्क में विशेष आनन्द का अनुभव करते थे। साधुओं के साथ रहने के कारण वे वेदों और शास्त्रों के सिद्धांतों से भी परिचित हो गए थे। गोकुल ही इनका निवास स्थान था। इस स्थान पर रहने के कारण इनकी ब्रजभाषा भी अधिक परिमार्जित हो गई थी। सन् 1616 के लगभग इनका स्वर्गवास हो गया। इनके संबंध में इनकी रचना 'प्रेमवाटिका' में उल्लेख मिलते हैं।

इनकी रचनाओं को संपादकों ने अनेक रूपों में प्रस्तुत किया है। रसखान दोहावली, रसखान कवितावली, रसखानि ग्रंथावली, रसखान शतक, प्रेमवाटिका, सुजान रसखान, रसखान पदावली, रत्नावली आदि इनके अनेक संकलन मिलते हैं। सभी में प्रेमवाटिका तथा सुजान रसखान की रचनाओं को किसी न किसी रूप में समाविष्ट किया गया है। इन्होंने भी अन्य कृष्ण भक्त कवियों की भांति कृष्ण की लीलाओं को तन्मयता से प्रस्तुत किया है। इनमें प्रेम का मनोहारी चित्रण हुआ है।

पाठ परिचय

रसखान हिंदी कृष्ण भक्त कवियों में अपना अलग ही स्थान रखते हैं। प्रस्तुत पाठ में उनके कवित्त एवं सवैये संकलित हैं। ये रचनाएँ उनकी रचना 'सुजान रसखान' से ली गई हैं। रसखान के इन सवैयों में श्री कृष्ण के विभिन्न रूपों का अलौकिक वर्णन है। श्री कृष्ण के बाल रूप में 'अहीर की छोहरियों का छछिया पर छाछ पे नाच नचाना' कौए का 'हरि हाथ से ले गया माखन रोटी' कितने स्वाभाविक चित्रण हैं। रसखान कहीं कृष्ण की बंसी को अपने काव्य का प्रतिपाद्य बनाते हैं तो कहीं ''पाहन हौं तो वही गिरि को'' को बात करते हैं। इस प्रकार रूप कोई भी हो, रसखान के सवैये-कवित्त कृष्ण भक्ति से ओत-प्रोत हैं। उनकी ब्रज भाषा सरल और सरस हैं। अनुप्रास की छटा देखते ही बनती है। शब्दालंकारों-यमक, श्लेष के साथ-साथ प्रसाद व माधुर्य गुण का समावेश है। उनकी कविता में बिम्ब-विधान व गेयता का गुण भी विद्यमान है।

सवैये

सेष सुरेस दिनेस गनेस प्रजेस धनेस महेस मनायौ।
कोऊ भवानी भजौ मन की, सब आस सबै विधि जाय पुरावौ।
कोऊ रमा भजि लेहु महाधन, कोऊ कहूँ मन वांछिति पावौ।
पै रसखानि वही मेरे साधन, और त्रिलोक रहौ कि नसावौ॥

सुनिए सब की कहिए न कछु, रहिए इमि या भवसागर मैं।
करिए ब्रत नेम सचाई लिए, जिनतै तरिए भव-सागर मैं।
मिलिए सबसौं दुरभाव बिना, रहिए सतसंग उजागर मैं।
रसखानि गुविन्दहिं यों भजिए, जिमि नागरि को चित्त गागर मैं॥

प्रान वही जु रहैं रिझि वा पर, रूप वही जिहि बाहि रिझायौ।
सीस वही जिन वे पद पर सै पद अंक वही जिन वा परसायौ।
दूध वही जु दुहायौरी वाही दही सु सही जु वही ढरकायौ।
और कहाँ लौ कहौं रसखनि री भाव वही जु वही मन भायौ॥

मानुष हौं तो वही रसखानि, बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पसु हौं तो कहाँ बसु मेरौ, चरौ निज नन्द की धेनु मंझारन।

पाहन हौं तो वही गिरि को जो धर्‌यौ कर छत्र पुरन्दर कारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौ मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन॥

मोर-पंखा सिर ऊपर राखि हौं, गुंज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढ़ि पितंबर लै लकुटी, बन गोधन ग्वारनि संग फिरौंगी।
भावतो वोहि मेरो रसखानि, सों तेरे कहे सब स्वांग करौंगी।
या मुरली मुरलीधर की, अधरान धरी अधरा न धरौंगी॥

शब्दार्थ

सेष = शेषनाग	सुरेस = इन्द्र	दिनेस = सूर्यदेव
धनेस = कुबेर (धन का देवता)	महेश = शिव	रमा = लक्ष्मी
भवानी = गौरी	पुरावौ = पूर्ण करना	नसायौ = नष्ट हो जाना
भवसागर = संसार रूप समुद्र	गोविन्दही = श्री कृष्ण जी को	
धेनु = गौएं	प्रजेस = ब्रह्मदेव	
पुरन्दर = इन्द्र	मंझारण = बीच में	परसै = स्पर्श करना
स्वाँग = लीला	अधर = होठों पर	

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. रसखान किस देव की आराधना करना चाहते हैं और क्यों ?
2. रसखान के अनुसार भवसागर को किस प्रकार पार किया जा सकता है ?
3. कवि प्राण, रूप, शीश, पैर, दूध और दही की सार्थकता किसमें समझता है ?
4. कवि गोकुल गाँव, नंद की धेनु, गोवर्धन पर्वत का पहाड़, कदम्ब की डालियों पर निवास क्यों करना चाहता है ?
5. गोपिका पूरा स्वाँग करने को तैयार है, परन्तु बाँसुरी को होठों से लगाना क्यों नहीं चाहती ?

******

4. रहीम

(जन्म सन् 1553-निधन सन् 1627)

रहीम जी का पूरा नाम अब्दुर्ररहीम खानखाना था। वे मुगल सम्राट अकबर के नवरत्नों में से थे। इनके पिता बैरमखाँ अकबर के अभिभावक थे। रहीम अकबर के दरबारी कवि ही नहीं प्रत्युत् सेनापति और मंत्री भी रहे। अकबर की मृत्यु के बाद जहाँगीर ने भी इन्हें अपना सेनानायक और जागीरदार बनाया। किन्तु राजनीतिक कुचक्रों ने उन्हें बड़ा परेशान किया। जहाँगीर को लड़ाई में धोखा दिया जाने के झूठे आरोप के कारण इन्हें कुछ कारण तक कारावास का दंड भुगतान पड़ा। उनका जीवनांत अत्यन्त दरिद्रता में हुआ।

रहीम जी की रचनाओं में रहीम सतसई, बरवै नासिका भेद, श्रृंगार सोरठ, मदनाष्टक, रासपंचाध्यायी, नगर शोभा, फुटकल बरवै, फुटकल सवैये प्रसिद्ध हैं।

उन्होंने मुसलमान होते हुए भी भगवान कृष्ण के संबंध में पूर्ण भक्ति भाव से सिक्त रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। उनके नीति संबंधी दोहे भी अद्‌वितीय हैं। उनके काव्य में स्वाभाविकता तथा सजीवता के दर्शन होते हैं। उनके दोहे केवल उपदेशप्रद ही नहीं, काव्य-गुणों से भी सम्पन्न हैं।

पाठ परिचय

प्रस्तुत संकलन में रहीम के नीति व भक्ति सम्बन्धी दोहे संकलित हैं। रहीम ने दो पंक्तियों के दोहों में गहन संकेत दिए हैं। जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभव को थोड़े से थोड़े शब्दों में प्रेषित करना रहीम जी की विशेषता है।

दोहे

अमर बेलि बिनु मूल की, प्रतिपालत जो ताहि॥
रहिमन ऐसे प्रभुहि तजि, खोजत फिरिये काहि ॥ १ ॥
काम न काहू आवई, मोल रहीम न लेइ।
बाजू टूट बाज को, साहब चारा देइ॥ २॥
धूरि धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि-पतनी तरी, सो ढूंढ़त गजराज॥ ३॥
बड़े पेट के भरन में, है रहीम दुख बाढ़ि॥

यातें हाथि हहरि कै, दिये दाँत द्वै काढ़ि ॥ ४॥
रहिमन अपने पेट सों, बहुत कह्यो समुझाइ।
जो तू अनखाये रहै, तोसों को अनखाइ॥ ५॥
रहिमन रहिला की भली, जो परसै चित लाइ।
परसत मन मैला करै, सो मैदा जरि जाई॥ ६॥
रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं॥
उनतै पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं॥ ७॥
रहिमन-रहिबो वाँ भलो, जो लौं सील समूच।
सील-ढील जब देखिये, तुरत कीजिए कूच॥ ८॥
रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून॥
पानी गये न ऊबरैं, मोती मानुस चून॥ ९॥
रहिमन जिह्वा बावरी, कहि गइ सरग-पतार।
आपु तो कहि भीतर भयी, जूती खात कपार॥ १०॥
होइ न जाकी छाँह ढिग, फल रहीम अति दूर।
बाढ़ेउ सो बिनु काज हो, जैसे तार-खजूर॥ ११॥
नाद रीझ तन देत मृग, नर धन हेत-समेत।
ते रहीम पसु ते अधिक, रीझेहु कछू न देत ॥ १२॥
रहिमन अँसुआ नयन ढरि, जिय दुःख प्रकट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ॥ १३॥
धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाइ।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाइ॥ १४ ॥
रहिमन राज सराहिये, ससि सम सुखद जो होइ।
कहा बापुरो भानु है, तपै तरैयनि खोइ॥ १५॥
ज्यौं रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोइ।
बारे उजियारो करै, बढ़े अँधेरो होइ॥ १६॥
माँगे घटत रहीम पद, कितौ करौ बड़ काम।
तीन पैंड़ बसुधा करी, तऊ बावनै नाम ॥ १७॥
रहिमन मनहि लगाइ कै, देख लेहु किन कोय।
नर को बस करिबो कहा, नारायण बस होय ॥ १८॥

रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखो गोय।
सुन अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लेहैं कोइ॥ १९॥
कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिये, तैसोई फल दीन ॥ २०॥
कमला थिर न, रहीम कहि, यह जानत सब कोइ।
पुरुष पुरातन की वधू, क्यों न चंचला होई॥ २१॥
जो रहीम ओछौ बढ़ै, तो अति ही इतराइ।
प्यादा सों फरजी भयो, टेढ़ी-टेढ़ी जाइ॥ २२॥
रहिमन सूधी चाल सों, प्यादो होत वजीर।
फरजी मीर न ह्वै सके, गति टेढ़ी तासीर॥ २३॥
काज परे कछु और है, काज सरे कछु और।
रहिमन भाँवरि के परे, नदी सिरावत मौर॥ २४॥
आवत काज, रहीम कहि, गाढ़े बन्धु सनेह।
जीरन होत न पेड़ ज्यों, थामै बरहिं बरेह॥ २५॥
दादुर मोर किसान मन, लग्यो रहै घन माहिं।
रहिमन चातक-रटनि कैं, सरवरि को कोउ नाहिं॥ २६॥
मन सो कहाँ रहीम प्रभु, दृग सो कहाँ दिवान।
देखि दृगन जो आदरै, मन तेहि हाथ बिकान॥ २७॥
जो रहीम करिबौ हुतो, ब्रज को इहै हवाल।
तो काहे कर पर धरयौ, गोवर्धन, गोपाल॥ २८॥
हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूरि।
खैंचि आपनी ओर को, डारि दियो पुनि दूरि॥ २९॥
सर सूखे पंछी उड़ैं, औरै सरन्ह समाहिं।
दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कहँ जाँहि॥ ३०॥

शब्दार्थ

रज = धूलि
मुनि पत्नी = गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या
द्वै = दो
काढ़ि = निकाले हुए
रहिला = चना
जिह्वा = जीभ
ढिग = पास, समीप
पंक = कीचड़

उदधि	= समुद्र	भानु	= सूर्य	बसुधा	= धरती
बावनै	= बौना	अठिलैहें	= हँसी मज़ाक करना		
भुजंग	= साँप	कमला	= लक्ष्मी	चातक	= पपीहा
कपार	= कपाल (खोपड़ी)	प्यादा	= शतरंज खेल की एक गोट, पैदल		

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. मानव शरीर की नश्वरता का प्रतिपादन करते हुए रहीम ने क्या कहा है ?
2. रहीम ने कुपुत्र को सदैव कुल के लिए अपमान का कारण क्यों कहा ?
3. रहीम ने मनुष्य को सोच समझकर बोलने की शिक्षा देते हुए क्या कहा है ?
4. प्रेमपूर्वक खिलाए जाने वाले भोजन को रहीम ने उत्तम क्यों माना ?
5. प्रभु के प्रति विनय भावना व्यक्त करते हुए रहीम ने क्या कहा ?
6. रहीम के अनुसार प्रभु को किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है ?
7. रहीम के अनुसार जीवन में सत्संगति का क्या महत्त्व है ?

******

5. गुरु तेग बहादुर

(जन्म सन् 1621-देहावसान सन् 1675)

गुरु परम्परा में नवें गुरु तेगबहादुर जी को संयम, त्याग, सहनशीलता एवं करुणा के कारण विशेष स्थान प्राप्त है। तत्कालीन भारतीय जन-जीवन के लिए किया गया इनका बलिदान स्वर्णिम अक्षरों में अंकित है। मीरी और पीरी की तलवारें धारण करने वाले गुरु श्री हरगोबिन्द साहिब के घर माता नानकी जी के गर्भ से इनका जन्म सन् 1621 को अमृतसर में हुआ था। गुरु गद्दी पर बैठने के पश्चात् आप कई गुरु धामों की यात्रा करते हुए कीरतपुर साहिब पहुँचे। सन् 1666 ई. में इन्होंने पहाड़ी राजाओं से भूमि खरीदकर आनन्दपुर साहिब नामक नगर बसाया जो 'खालसा की जन्म भूमि' के रूप में विख्यात है। प्रारम्भिक शिक्षा के साथ इन्होंने अध्यात्म-विद्या तथा शस्त्रविद्या की शिक्षा ग्रहण की। जिस समय गुरु हरगोबिन्द कीरतपुर आ गए, उस समय गुरु तेगबहादुर ने अपने ननिहाल गाँव बकाला (अमृतसर) में ही निवास कर लिया। गुरु हरिकृष्ण के बाद वे गुरु पद पर शोभायमान हुए। इस समय गुरु जी की आयु 43 वर्ष की थी।

औरंगज़ेब के अत्याचार से पीड़ित कश्मीरी पंडित इनके पास रक्षा के लिए आनन्दपुर में आए थे। अपने पुत्र गोबिन्द राय (गोबिन्द सिंह) की प्रेरणा पर इन्होंने भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए हंसते-हंसते बलिदान दे दिया। यह बलिदान स्थान दिल्ली में गुरुद्वारा सीस गंज के नाम से प्रसिद्ध है।

गुरु जी एक महान तपस्वी व्यक्ति थे और निरंकार ईश्वर के प्रचारक थे। इन्होंने पंजाबी से प्रभावित ब्रजभाषा में अपनी पद रचनाएँ कीं। यद्यपि ऐसी रचनाओं की संख्या सीमित है - केवल 59 सबद तथा 57 श्लोकों की रचना मानी जाती है, तथापि इनमें मधुरता एवं जीवन-सत्य के कारण इन्हें हिंदी के श्रेष्ठ कवियों में स्थान प्राप्त है। इनकी रचनाओं में जगत की नश्वरता, साँसारिक व्यवहार की कटुता एवं राम-नाम की महत्ता निरूपित है;सहजता का प्रत्यक्ष प्रमाण है; बाह्याडम्बरों एवं पाखंडों का विरोध एवं सहज जीवन यापन पर बल दिया गया है। इन्होंने संयम, समभाव, समदृष्टि, प्रभु-आसक्ति, सात्विक व्यवहार, चिन्तन-शुद्धता एवं मानवतावादी दृष्टि को सर्वोत्तम माना है।

पाठ परिचय

प्रस्तुत संकलन में गुरु तेगबहादुर जी के श्रेष्ठ पदों को सम्मिलित किया गया है। भक्ति भावना व साँसारिक नश्वरता के साथ-साथ गुरु जी ने मानवीय मूल्यों की स्थापना पर बल दिया है। काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार के बन्धन से मुक्त होकर साधु संगति में लीन होकर व्यक्ति प्रभु को पा सकता है। मानव जन्म संसार में बहुत दुर्लभ है। फिर इसको व्यर्थ क्यों गंवाया जाए - इसे सार्थक करने के लिए मन को प्रभु में लीन करना आवश्यक है।

गुरु तेग बहादुर के काव्य में शांत रस है – अलौकिक भक्ति के साथ-साथ जीव की माया के बंधन में बंधने की विवशता को कवि ने अत्यंत सहज भाव में व्यक्त किया है। 'सगल जन्म भ्रम ही भ्रम खोयो-नहिं छूटि अधमाई' में यह पीड़ा स्पष्ट झलकती है। इनकी भाषा-शैली के विषय में कहा जा सकता है कि इसमें पंजाबी के साथ तत्सम व तद्भव शब्दों का प्रयोग भी है। शैली में गेयता का गुण भी विद्यमान है। प्रस्तुत संकलन इनके काव्य के प्रतिपाद्य को भली भांति स्पष्ट करने में सक्षम है।

पदावली

साधो मन का मानु तिआगउ ॥
कामु क्रोधु, संगति दुरजन की ता ते अहनिसि भागउ ॥ रहाउ ॥
सुखु दुखु दोनों सम करि जानै अउरु मानु अपमाना।
हरख सोग ते रहै अतीता तिनि जगि ततु पछाना ॥ १ ॥
उसतति निंदा दोऊ तिआगै खोजे पदु निरबाना ॥ २ ॥
जनु नानक इहु खेलु कठनु है किनहू गुरमुखि जाना ॥

(राग गउड़ी महला १)

अब मैं कउनु उपाउ करउ।
जिह बिधि मन को संसा चूकै भउ निधि पारि परउ ॥ रहाउ ॥
जनमु पाइ कछु भलो न कीनो ता ते अधिक डरउ।
मन बच क्रम हरि गुन नहीं गाए यह जीअ सोच धरउ ॥ १ ॥
गुरमति सुनि कछु गिआनु न उपजिओ पसु जिउ उदरु भरउ ॥
कहु नानक प्रभ बिरद् पछानउ तब हउ पतित तरउ ॥ १ ॥

(धनासरी महला)

मन की मन ही माहि रही।
ना हरि भजे न तीरथ सेवे चोटी काल गही ॥ रहाउ ॥
दारा मीत पूत रथ संपति धन पूरन सभ मही ॥
अवर सगल मिथिआ ए जानऊ भजनु राम को सही ॥ १ ॥
फिरत फिरत बहुते जुग हारिओ मानस देह लही ॥
नानक कहत मिलन की बरीआ सिमरत कहा नही ॥ २ ॥

(सोरठि महला १)

माई मैं किहि बिधि लखऊ गुसाईं।
महा मोह अगिआन तिमरि मो मनु रहिओ उरझाई ॥ रहाउ ॥
सगल जनम भरम ही भरम खोइओ नह असथिरु मति पाई ॥
बिखिआ सकत रहिओ निस बासुर नह छूटी अधमाई ॥ १ ॥
साध संगु कबहू नहीं कीना नह कीरति प्रभ गाई।
जन नानक मैं नाहि कोऊ गुनु राखि लेहु सरनाई ॥ २ ॥

(सोरठि महला १)

साधो गोबिन्द के गुन गावहु।
मानस जनमु अमोलकु पाइओ बिरथा काहि गवावहु ॥ रहाउ ॥
पतित पुनीत्त दीन बंध हरि सरनि ताहि तुम आवहु।
गज को त्रासु मिटिओ जिह सिमरत तुम काहे बिसरावहु ॥ १ ॥
तजि अभिमान मोह माइआ फुनि भजन राम चितु लावऊ।
नानक कहत मुकति पंथ इहु गुरमुखि होइ तुम पावउ ॥ २ ॥

(राग गाउड़ी, महला १)

शब्दार्थ

साधो	=	सज्जन पुरुष	मानु	=	अहंकार	अहनिसि	=	दिन-रात
हरख	=	खुशी	अतीता	=	अलग	तुत	=	भेद, रहस्य
उसतति	=	स्तुति	निरबाना	=	मुक्ति	संसा	=	दुविधा
उदर भरऊ	=	पेट भरना	बिरद	=	स्वभाव	दारा	=	पत्नी
लखऊ	=	दर्शन करना	मिथिआ	=	मिथ्या, व्यर्थ	गुसाईं	=	मालिक, प्रभु

बिखिआ = विषय विकार (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार)

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. गुरु तेग बहादुर जी के अनुसार गुरमुख में कौन-कौन से गुण होने चाहिए ?
2. 'कहु नानक प्रभु बिरद पछानउ तब हउ पतित तरउ' का भावार्थ स्पष्ट करें।
3. गुरु जी ने नाम सिमरन पर बल क्यों दिया है ?
4. संकलित पदों के आधार पर गुरु तेग बहादुर जी की भक्ति भावना का वर्णन करें।
5. गुरु तेग बहादुर जी ने अपने पदों में सांसारिक नश्वरता का संकेत किया है, स्पष्ट करें।

******

आधुनिक काव्य

6. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

अयोध्या सिंह उपाध्याय का जन्म निजामाबाद (ज़िला आजमगढ़, उत्तर प्रदेश) में हुआ था। वे वृति के कानूनगो थे। उन्होंने अपने नाम-क्रम 'सिंह' (हरि) तथा अयोध्या (औध) को बदलकर, 'हरिऔध' उपनाम से काव्य-रचना की।

'हरिऔध' जी को गद्य और पद्य दोनों पर पूर्ण अधिकार था। किन्तु उन्होंने काव्य-जगत में विशेष ख्याति अर्जित की। इनके रचनाकाल के समय खड़ीबोली अपने शैशवकाल में थी। किन्तु इन्होंने इस भाषा में रचनाएँ करके कमाल कर दिखाया।

उनका 'प्रिय प्रवास' महाकाव्य अत्यंत लोकप्रिय हुआ। इसमें भगवान् कृष्ण के ब्रज से मथुरा चले जाने पर गोपियों के विरह का मार्मिक चित्रण हुआ है। खड़ी बोली में इस प्रसंग को लेकर यह पहला काव्य रचा गया है।

''वैदेही वनवास'' राम काव्य के एक बड़े कारुणिक प्रसंग को प्रस्तुत करता है। ''चुभते चौपदे'' नामक संग्रह में कवि ने चार पंक्तियों के छंद में बड़े सरस पद रचे हैं। सभी ग्रन्थों में कवि ने बड़े उपयुक्त छंदों, रसों और अलंकारों का वर्णन किया है। इन ग्रन्थों में प्राकृतिक छटा के बड़े सुंदर नमूने भी विद्यमान हैं।

अपनी प्रकाण्ड विद्वता के कारण अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में हिंदी के प्राध्यापक पद को भी सुशोभित किया।

पाठ-परिचय

'पवन दूत' कविता अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा रचित प्रबन्ध काव्य 'प्रियप्रवास' से ली गयी है। जब श्री कृष्ण मथुरा चले जाते हैं और लौटकर नहीं आते तो उनके वियोग में उनकी प्रेयसी राधा की हालत दयनीय हो जाती है। एक दिन जब वह श्री कृष्ण के विरह में व्यथित होकर घर में बैठी अश्रु बहा रही थी तभी प्रात: कालीन सुगंधित पवन ने झरोखों से आकर सम्पूर्ण वातावरण को सुरभित कर राधा की विरह वेदना को और भी बढ़ा दिया। तब राधा उस पवन को कहती है कि तू मेरी वेदना को न बढ़ा अपितु श्री कृष्ण के पास मेरी दूत बनकर जा

और मेरी इस दयनीय अवस्था को उन्हें बता और उनकी चरणधूलि को लेकर आ जिसे मैं अपने तन पर लगा कर अपना जीवन सार्थक करूँ।

प्रस्तुत कविता में श्री कृष्ण की विरह अग्नि में दग्ध रहने वाली राधा रानी की दशा का सजीव चित्रण किया गया है। सम्पूर्ण कविता में वियोग शृंगार रस की भरमार है। अनुप्रास, उपमा, रूपक, पुनरुक्तिप्रकाश अलंकारों का जगह-जगह प्रयोग बड़े ही स्वाभाविक व सहज ढंग से किया गया है। सचमुच, अलंकारों के प्रयोग के प्रति वे बहुत सजग प्रतीत होते हैं। अलंकारों के प्रयोग से उनकी यह कविता निस्संदेह अनूठी बन पड़ी है। भाषा में प्रवाह विद्‌यमान है, किन्तु कहीं कहीं संस्कृत के तत्सम शब्दों की अधिकता भी लक्षित होती है।

पवन दूत

नाना चिन्ता सहित दिन को राधिका थी बिताती,
आँखों को थी सजल रखती उन्मना थी बिताती।
शोभावाले जलद-वपु की हो रही चातकी थी,
उत्कंठा थी परम प्रबला वेदना वर्द्धिता थी।।

बैठी खिन्ना एक दिवस वे गेह में थी अकेली,
आके आँसू युगल दृग में थे धरा को भिगोते॥
आई धीरे इस सदन में पुष्पसद्‌गन्ध को ले,
प्रात: वालो सुपवन इसी काल वातायनों से॥

आके पूरा सदन उसने सौर भीला बनाया,
चाहा सारा कलुष तन का राधिका के मिटाना॥
जो बूँदें थीं सजल दृग के पक्ष में विद्‌यमाना,
धीरे-धीरे क्षिति पर उन्हें सौम्यता से गिराया।

श्री राधा के यह पवन की प्यार वाली क्रियाएँ,
थोड़ी-सी भी न सुखद हुई हो गयीं वैरिणी-सी।
भीनी-भीनी महक सिगरी शान्ति उन्मूलती थी,
पीड़ा देती परम चित को वायु की स्निग्धता थी॥

सन्तापों को विपुल बढ़ता देख के दु:खिता हो,
धीरे बोलीं सदुख उससे श्रीमती राधिका यों।
''प्यारी प्रात:- पवन, इतना क्यों मुझे है सताती,
क्या तू भी है कुलषित हुई काल की क्रूरता से''?

मेरे प्यारे नव-जलद-से, कंज-से नेत्रवाले,
जाके आये न मधुवन से औ न भेजा सँदेसा।
मैं रो-रो के प्रिय-विरह से बावरी हो रही हूँ,
जाके मेरी सब कथा स्याम को तू सुना दे॥

कालिन्दी के तट पर घने रम्य उद्यान वाला,
ऊँचे-ऊँचे धवल गृह की पंक्तियों से प्रशोभी।
जो है न्यारा नगर मथुरा, प्राणप्यारा वहीं है,
मेरा सूना सदन तजके तू वहाँ शीघ्र ही जा॥

जाते-जाते अगर पथ में क्लान्त कोई दिखावे,
तो तू जाके निकट उसकी क्लान्तियों को मिटाना।
धीरे-धीरे परस करके गात उत्ताप खोना,
सद्गन्धों से श्रमित जन को हर्षितों-सा बनाना॥

तेरे जैसी मृदु पवन से सर्वथा शान्ति-कामी,
कोई रोगी पथिक पथ में जो कहीं भी पड़ा हो।
तो तू मेरे सकल दुख को भूल के धीर होके,
खोना सारा कलुष उसका शान्ति सर्वाङ्ग होना॥

जाते-जाते पहुँच मथुरा-धाम में उत्सुका हो,
न्यारी शोभा वर नगर की देखना मुग्ध होना।
तू होवेगी चकित लख के मेरु-से मंदिरों को,
आभावाले कलश जिनके दूसरे अर्क-से हैं॥

तू देखेगी जलद-तन को जा वहीं तद्गता हो,
होंगे लोने नयन उनके ज्योति-उत्कीर्णकारी।
मुद्रा होगी वह बदन की मूर्ति-सी सौम्यता की,
सीधे-साधे वचन उनके सिक्त पीयूष होंगे॥

नीले कुंजों सदृश उनके गात की श्यामता है,
पीला प्यारा वसन कटि में पहनते हैं फबोला।
छूटी काली अलक मुख की कान्ति को है बढ़ाती,
सद्वस्त्रों में नवल तन की फूटती-सी प्रभा है॥

जाते ही छू कमल-दल से पाँव को पूत होना,
काली काली अलक मृदुता से कपोलों को हिलाना॥
क्रीड़ाएं भी कलित करना ले दुकूलादिकों को,
धीरे-धीरे परस तन को, प्यार की बेलि बोना॥

कोई प्यारा कुसुम कुम्हला भौन में जो पड़ा हो,
तो प्यारे के चरण पर ला डाल देना उसे तू।
यों देना ए पवन ! बतला फूल-सी एक बाला,
म्लाना हो हो कमल-पग को चूमना चाहती है॥

लाके फूले कमल-दल को श्याम के सामने ही,
थोड़ा-थोड़ा विपुल जल में व्यग्र हो हो डुबाना।
यों देना तू भगिनी जतला एक अंभोजनेत्रा,
आँखों को हो विरह-विधुरा वारि में बोरती है॥

सूखी जाती मलिन लतिका जो धरा में पड़ी हो,
तो तू पाँवों के निकट उसको श्याम के ला गिराना।
यों सीधे से प्रकट करना प्रीति से वंचिता हो,
मेरा होना अति मलिन औ सूखते नित्य जाना॥

यों प्यारे को विदित करके सर्व मेरी व्यथायें,
धीरे-धीरे वहन करके पाँव की धूलि लाना।
थोड़ी-सी भी चरण-रज जो ला न देगी हमें तू,
हा! कैसे तो व्यथित चित को बोध मैं दे सकूँगी।

जो ला देगी चरण-रज तू तो बड़ा पुण्य लेगी,
पूता हूँगी परम उसको अंग मैं लगाके।
पोतूंगी जो हृदय-दल में वेदना दूर होगी,
डालूंगी मैं शिर पर उसे आँख में ले मलूँगी।

पूरी होवें न यदि तुझसे अन्य बातें हमारी,
तो तू मेरी विनय इतनी मान ले औ चली जा।
छूके प्यारे कमल-पग को प्यार के साथ आ जा,
जी जाऊँगी, हृदय-तल में मैं तुझी को लगाके॥''

('प्रियप्रवास' से)

शब्दार्थ

उत्कंठा	= प्रिय से मिलने की उत्सुकता				
गेह	= घर	खिन्ना	= उदास	दृग	= आँख
वातायन	= झरोखा	क्षिति	= धरती	सिगरी	= सारी
उन्मूलती	= अन्त करना				
कंज-से नेत्र	= कमल के समान आँखों वाले अर्थात् श्री कृष्ण				
कालिंदी	= यमुना नदी	क्लांति	= दु:खी, क्लेष	परस	= स्पर्श
कलुष	= पाप, मैल, गंदगी	अर्क	= सूर्य		
उत्कीर्णकारी	= खुदा हुआ	फबोला	= शोभा फबने वाला, सुंदर		
दुकूलादिक	= वस्त्र आदि	भौन	= भवन		
अंभोजनेत्रा	= कमल नयनों वाली				
चरण-रज	= पैरों की धूल	व्यथित	= दु:खी		

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. श्री कृष्ण के वियोग में राधा की व्यथा का चित्रण करें।
2. पवन ने आकर राधा के दु:ख को किस प्रकार कम किया ?
3. राधा ने पवन को दूत बनाकर क्यों भेजा ?
4. राधा ने पवन को श्री कृष्ण का परिचय किस प्रकार दिया ?
5. मुरझाये फूल, फूले कमल दल और मलिन लतिका जैसे उपमानों के द्वारा राधा ने अपनी व्यथा किस प्रकार व्यक्त की ?
6. 'पवन दूत' कविता का केन्द्रीय भाव लिखें।

******

7. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

(जन्म सन् 1896-निधन सन् 1961)

आधुनिक हिंदी काव्य-विकास की चर्चा में 'निराला' को महाप्राण काव्य-पुरुष, महाकवि इत्यादि विशेषणों से संबोधित किया जाता है। छायावादी कवियों में निराला महत्त्वपूर्ण कवि माने जाते हैं। इनका जन्म सन् 1896 में बंगाल प्रान्त के मेदिनीपुर जिले में महिषादल नामक स्थान पर हुआ था। इसी स्थान पर इन्होंने प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की। इन्होंने अनेक भाषाओं का अध्ययन भी कर लिया था। वे स्वामी रामकृष्ण परमहंस एवं विवेकानन्द की विचाराधारा से विशेष प्रभावित थे। इनके व्यक्तित्व के निरालेपन के कई प्रसंग हिन्दी जगत में उल्लेख्य हैं। उन्मुक्तता, अक्खड़ता, के साथ निर्बल, असहाय एवं दीन दु:खियों की सहायता इनके व्यक्तित्व की विलक्षणता है।

निराला की काव्य-चेतना को अनेक रूपों में देखा जा सकता है। इनकी कविताएं अनेक संग्रहों में संकलित हैं। इनकी रचनाओं को काव्य-विकास की दृष्टि से क्रमश: तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम चरण 1921-36, द्वितीय चरण 1937-46, तृतीय चरण 1950-61 । 'परिमल', अनामिका, गीतिका, 'अपरा', 'नए पत्ते,' 'तुलसीदास' इत्यादि इनकी उल्लेखनीय काव्य रचनाएँ हैं।

हमारी दृष्टि में निराला को किसी एक वाद विशेष की सीमा में आबद्ध नहीं किया जाना चाहिए। इनकी रचनाओं में विषय विविधता स्पष्ट है। इनके व्यक्तित्व की झलक इनकी अनेक कविताओं में द्रष्टव्य है। पर इनकी निजता समष्टि चेतना का रूप धारण कर लेती है। यही कारण है कि इनमें कहीं-कहीं अन्तर्विरोधी भाव व्यंजित हुए हैं। निराला ही एक ऐसे कवि हैं। जिन्होंने कठोर एवं कोमल भावों को आत्मसात् कर काव्य में रूपायित किया है। इनकी कविताओं में छायावादी कोमलता, सुन्दरता एवं कल्पना की बहुलता है। रहस्यवादी दार्शनिकता के साथ प्रगतिवादी आक्रोश तथा अवसाद भी है। इतना ही नहीं, इन्हें 'नयी कविता' एवं 'अकविता' सरीखे समकालीन आंदोलन का अग्रणी कवि माना जाता है।

पाठ परिचय

प्रस्तुत पाठ में 'निराला' जी की 'तोड़ती पत्थर' तथा 'जागो फिर एक बार ' कविताएँ संकलित हैं। दोनों कविताएँ निराला जी की रचना 'राग विराग' से ली गई हैं।

'तोड़ती पत्थर' प्रगतिवादी रचना है। ज्येष्ठ की भीषण गर्मी में एक पत्थर तोड़ने वाली युवती का स्वाभाविक चित्रण किया है। कवि ने समाज के अंदर फैली विषमता का चित्रण किया है। एक तरफ बड़े बड़े महल और दूसरी तरफ सर्वहारा वर्ग की स्थिति-एक तरफ साधन सम्पन्न वर्ग और दूसरी तरफ शोषित वर्ग जिसे जीवन के न्यूनतम साधन जुटाने के लिए कितना संघर्ष करना पड़ता है। कविता में चित्रात्मकता का गुण विद्‌यमान है।

'जागो फिर एक बार' कविता में कवि ने गुरु गोबिन्द सिंह की वीरता का उदाहरण देकर मनुष्य की सोई हुई पौरुष शक्ति को जागृत करने का प्रयास किया है। मनुष्य की बौद्‌धिक शक्ति को जागृत करते हुए उसे सबल बनने को कहा है। मनुष्य को मुक्त होकर विचरण करना चाहिए।

तोड़ती पत्थर

वह तोड़ती पत्थर।
देखा उसे मैंने इलाहबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर।
कोई न छायादार।
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन, भर बँधा यौवन,
नत नयन, प्रिय कर्म रत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार -
सामने तरु, मालिका अट्टालिका, प्राकार।

चढ़ रही थी धूप
गर्मियों के दिन,
दिवा का तमतमाता रूप।
उठी झुलसाती हुई लू

रुई ज्यों जलती हुई भू
गर्द चिनगी छा गयीं
प्रायः हुई दुपहर -
वह तोड़ती पत्थर।

देखते देखा मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा, छिन्नतार।
देख कर कोई नहीं,
देखा मुझे उस दृष्टि से,
जो मार खा रोयी नहीं।

सजा सहज सितार,
सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार
एक क्षण के बाद वह काँपी सुघर,
ढुलक माथे से गिरे सीकर,
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा -
'मैं तोड़ती पत्थर।'

जागो फिर एक बार

जागो फिर एक बार !
समर अमर कर प्राण,
गान गाये महासिन्धु-से,
सिन्धु-नद-तीरवासी !
सैन्धव तुरंगों पर,
चतुरंग चमूसंग,
सवा सवा लाख पर
एक को चढ़ाऊँगा,
गोबिन्द सिंह निज
नाम जब कहाऊँगा।
किसने सुनाया यह

वीर–जन–मोहन अति
दुर्जय संग्राम–राग,
फाग का खेला रण
बारहों महीने में ?
शेरों की मांद में
आया है आज स्यार
जागो फिर एक बार!
सत् श्री अकाल,
भाल–अनल धक–धक कर जला,
भस्म हो गया था काल
तीनों गुण ताप त्रय,
अभय हो गये थे तुम
मृत्युञ्जय व्योमकेश के समान,
अमृत–सन्तान ! तीव्र
भेदकर सप्तावरण–मरण लोक
शोकहारी ! पहुँचे थे वहाँ
जहाँ आसन हैं सहस्त्रार
जागो फिर एक बार !
सिंहनी की गोद से
छीनता रे शिशु कौन ?
मौन भी क्या रहती वह
रहते प्राण ? रे अजान।
एक मेषमाता ही
रहती है निर्निमेष –
दुर्बल वह –
छिनती सन्तान जब
जन्म पर अपने अभिशप्त
तप्त आँसू बहाती है,
किन्तु क्या,

योग्य जन जीता है।
पश्चिम की उक्ति नहीं -
गीता है, गीता है -
स्मरण करो बार- बार -
जागो फिर एक बार !
पशु नहीं, वीर तुम,
समर शूर, क्रूर नहीं,
काल-चक्र में ही दबे
आज तुम राज-कँवर ! समर-सरताज !
पर क्या है,
सब माया है - माया है,
मुक्त हो सदा ही तुम,
बाधा -विहीन -बन्ध छन्द ज्यों,
डूबे आनन्द में सच्चिदानन्द-रूप
महामन्त्र ऋषियों का
अणुओं परमाणुओं में फूंका हुआ -
''तुम हो महान्, तुम सदा हो महान्,
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता, कामपरता।
ब्रह्म हो तुम
पद-रज भर भी है नहीं पूरा यह विश्व -भार-''
जागो फिर एक बार !

शब्दार्थ

नत	= झुके हुए	गुरु	= भारी	छिन्नतार	= क्षीण मन से
हरख	= खुशी	समर	= युद्ध	तुरंग	= घोड़ा
दुर्जय	= जिसे जीतना कठिन हो	तीन गुण	= सत, रज, तम		
चमूसंग	= सेना के साथ	ताप त्रप	= आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक		
मृत्युंजय	= मृत्यु को जीतने वाला	व्योमकेश	= शिव		

मेषमाता = भेड़	निर्निमेष = अपलक
कामपरता = इच्छाओं के अधीन	सहस्त्रार = हठयोग के अनुसार छह चक्रों में से एक, जो मस्तिष्क में होता है।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. कविता के आधार पर पत्थर तोड़ने वाली युवती का चित्रांकन करें।
2. 'तोड़ती पत्थर' कविता में कवि ने ग्रीष्म ऋतु का वर्णन किस प्रकार किया है ?
3. कर्म में लीन होते हुए पत्थर तोड़ने वाली युवती के मन में क्या-क्या विचार आये?
4. 'सवा-सवा लाख पर एक को चढ़ाऊँगा' यह पंक्ति किसने कही और कवि इसके माध्यम से क्या कहना चाहता है ?
5. 'सिंहनी' और 'मेषमाता' के उदाहरण के द्वारा कवि ने क्या संदेश दिया है ?
6. 'जागो फिर एक बार' कविता का केन्द्रीय भाव लिखें।

******

8. सुभद्रा कुमारी चौहान

(जन्म सन् 1904-निधन सन् 1948)

हिंदी कवयित्रियों में सुभद्रा कुमारी चौहान का प्रमुख स्थान है। काव्य के क्षेत्र में इन्होंने राष्ट्रीय और नारी हृदय की अनुभूतियों से अपनी कल्पनाओं का शृंगार किया है। इनका जन्म सन् 1904 की नाग पंचमी को प्रयाग के निहालपुर मोहल्ले में हुआ था। इनके पिता का नाम ठाकुर रामनाथ सिंह था। वे शिक्षा प्रेमी और उच्च विचार के व्यक्ति थे। इनके कुटुम्ब में शिक्षा पर उचित बल दिया जाता था। कुटुम्ब में कई ऐसे लोग थे, जिन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त थी और वे उच्च पदों पर नियुक्त थे। इनकी प्रारंभिक शिक्षा प्रयाग में ही सम्पन्न हुई। इन्होंने क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज में शिक्षा प्राप्त की। इनका विवाह छात्रावस्था में ही खंडवा निवासी ठाकुर लक्ष्मण सिंह चौहान के साथ हो गया था।

इनके हृदय की भांति इनकी कविताएँ भी सरल और निर्मल भावों से युक्त हैं। इनकी कविताओं के दो संग्रह विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं- 'मुकुल' और 'त्रिधारा'। इनकी कविताओं में देश-प्रेम की भावना तथा वात्सल्य भाव का चित्रण विशेष रूप से हुआ है।

विषय की दृष्टि से इनकी रचनाओं के तीन रूप हैं - देश-भक्ति प्रधान रचनाएं, मातृत्व प्रधान रचनाएं और प्रेम प्रधान रचनाएँ। सुभद्रा जी देश की अनन्य सेविका थीं। इनकी रग रग में राष्ट्र प्रेम समाविष्ट था। राष्ट्र की सेवा हेतु इन्होंने अपनी आकांक्षाओं को समर्पित कर दिया था। इनका यह समर्पण इनकी राष्ट्रीय रचनाओं में फूट पड़ा है। इनकी राष्ट्रीय रचनाएँ प्राणों को स्पर्श करती हैं और नई चेतना का संचार करती हैं। इन्होंने अनेक राष्ट्रीय नेताओं के विषय में भी कविताएँ लिखी हैं। इनकी कुछ कविताएं विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं- झांसी की रानी, वीरों का कैसा हो बसंत, राखी की चुनौती , जलियांवाला बाग में बसंत, आदि।

इन्होंने कविताओं के साथ-साथ कहानियां भी लिखी हैं। इनकी डायरी तथा कुछ अन्य रचनाएं अभी भी अप्रकाशित हैं। इन्हें 'मुकुल' तथा 'बिखरे मोती' पर पुरस्कार भी मिले थे। इनकी कविताओं में भारतीय शूरवीरों के बलिदान को सरल, काव्यमयी और प्रेरणादायक शैली में प्रस्तुत किया गया है। राष्ट्रीयता और देशभक्ति इनकी कविताओं के मूल स्वर हैं।

पाठ परिचय

इस संकलन में सुभद्रा कुमारी चौहान की दो प्रसिद्ध कविताएं 'वीरों का कैसा हो बसंत' तथा 'ठुकरा दो या प्यार करो' संकलित हैं। दोनों रचनाएँ उनके संकलन 'मुकुल' से हैं। प्रथम रचना में राष्ट्र प्रेम है। कवयित्री कुरुक्षेत्र, हल्दीघाटी तथा स्वतंत्रता संग्राम के उदाहरण देकर वीर-भावनाओं का संचार करने का प्रयास करती है।

ब्रिटिश शासन के समय कवयित्री को भूषण एवं चन्दबरदायी जैसे राष्ट्रीय धारा के कवियों का अभाव और लेखनी पर नियंत्रण खटकता है। दूसरी कविता में सहज, सरल, निश्छल प्रेम की अभिव्यक्ति है। निष्कपट मन अपने प्रिय को किस भोलेपन से आत्मसमर्पण कर उसी पर छोड़ देता है कि ठुकरा दो या प्यार करो। दोनों ही कविताओं की भाषा-शैली सहज व सरल है। ओज व प्रसाद तथा कहीं कहीं माधुर्य गुण भी है। अनुप्रास, मानवीकरण, रूपक, उदाहरण तथा कहीं-कहीं विरोधाभास अलंकारों का प्रयोग है।

वीरों का कैसा हो वसन्त ?

वीरों का कैसा हो वसन्त ?
आ रही हिमाचल से पुकार,
है उद्धि गरजता बार बार,
प्राची, पश्चिम, भू, नभ अपार,
सब पूछ रहे हैं दिग् दिगन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

भर रही कोलिला इधर तान,
मारू बाजे पर उधर गान,
है रंग और रण का विधान
मिलने आए हैं आदि अन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

फूली सरसों ने दिया रंग,
मधु लेकर आ पहुँचा अनंग,
वधु वसुधा पुलकित अंग-अंग
है वीर वेश में किन्तु कन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

गलबाहें हों या हो कृपाण,
चल चितवन हो, या धनुष बाण,
हो रस विलास या दलित त्राण,
अब यही समस्या है दुरन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त?

कह दे अतीत अब मौन त्याग,
लंके! तुझ में क्यों लगी आग?
ऐ कुरुक्षेत्र! अब जाग, जाग,
बतला अपने अनुभव अनन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त?

हल्दी घाटी के शिला खण्ड,
ऐ दुर्ग! सिंह गढ़ के प्रचण्ड,
राणा ताना का कर घमण्ड,
दे जगा आज स्मृतियाँ ज्वलन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त?

भूषण अथवा कवि चन्द नहीं,
बिजली भर दे वह छन्द नहीं,
है कलम बंधी, स्वच्छन्द नहीं,
फिर हमें बतावै कौन? हन्त!
वीरों का कैसा हो वसन्त?

ठुकरा दो या प्यार करो

देव! तुम्हारे कई उपासक
कई ढंग से आते हैं।
सेवा में बहुमूल्य भेंट वे
कई रंग की लाते हैं॥

धूमधाम से, साज़बाज़ से
वे मंदिर में आते हैं।
मुक्ता-मणि बहुमूल्य वस्तुएँ
लाकर तुम्हें चढ़ाते हैं।

मैं ही हूँ गरीबिनी ऐसी
जो कुछ साथ नहीं लायी
फिर भी साहस कर मन्दिर में
पूजा करने को आयी ॥

धूप-दीप-नैवेद्य नहीं है
झांकी का श्रृंगार नहीं।
हाय! गले में पहनाने को
फूलों का भी हार नहीं ॥

कैसे करूँ कीर्तन,
मेरे स्वर में है माधुर्य नहीं।
मन का भाव प्रकट करने को
वाणी में चातुर्य नहीं ॥

नहीं दान है, नहीं दक्षिणा
खाली हाथ चली आयी।
पूजा की विधि नहीं जानती
फिर भी नाथ! चली आयी ॥

पूजा और पुजापा प्रभुवर!
इसी पुजारिन को समझो।
दान-दक्षिणा और निछावर
इसी भिखारिन को समझो ॥

मैं उन्मत्त प्रेम की लोभी
हृदय दिखाने आयी हूँ।
जो कुछ है, वह यही पास है,
इसे चढ़ाने आयी हूँ ॥

चरणों पर अर्पित है, इसको
चाहो तो स्वीकार करो।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है।
ठुकरा दो या प्यार करो ॥

शब्दार्थ

उद्‌धि	= समुद्र	प्राची	= पूर्व दिशा
दिक्-दिगंत	= सभी दिशाएं	अनंग	= भौंरा, कामदेव
वधु-वसुधा	= पृथ्वी रूपी दुल्हन	विधान	= नियम व्यवस्था
त्राण	= मुक्ति	दुरंत	= भीषण
मारू बाजे	= युद्‌ध के नगाड़े	हन्त	= खेद, हाय
नैवेद्य	= भोज्य पदार्थ जो किसी देवता को अर्पण किया जाये,	पुजापा	= पूजा की सामग्री
चातुर्य	= चतुराई	मुक्तामणि	= मोती और मणियाँ
उन्मत	= मतवाला	भू	= भूमि, पृथ्वी

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. कवयित्री ने 'हिमाचल' की पुकार 'उद्‌धि' की गर्जन से किस ओर संकेत किया है?
2. वीरांगना अपने मन में चिन्तित क्यों हो रही है?
3. कवयित्री अतीत से क्या पूछना चाहती है?
4. हल्दीघाटी और सिंहगढ़ का दुर्ग किन वीरों की स्मृतियाँ जगाना चाहता है?
5. कवि भूषण और चन्दबरदायी में क्या समानता थी?
6. कवियों की कलम पर अंकुश क्यों लगा हुआ था?
7. धनी लोग परमात्मा की उपासना किस प्रकार करते हैं?
8. 'धूप, दीप, नैवेद्य नहीं, झाँकी का श्रृंगार नहीं' में कवयित्री का वास्तव में किस ओर संकेत है?
9. समर्पण की निष्कपट भावना का चित्रण 'ठुकरा दो या प्यार करो' कविता में हुआ है। - स्पष्ट करें।
10. 'वीरों का कैसा हो वसन्त' या 'ठुकरा दो या प्यार करो' कविता का भावार्थ लिखें।

******

9. रामधारी सिंह 'दिनकर'

(जन्म सन् 1908-निधन सन् 1974)

राष्ट्रीय चेतना के क्रांतिकारी कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्म जिला मुंगेर (बिहार प्रांत) के सिमरिया में सन् 1908 ई० में हुआ। इनके पिता एक साधारण किसान थे। अपनी प्रतिभा के विकास के लिए इन्हें निरन्तर संघर्ष करना पड़ा। अपने परिश्रम तथा अध्यवसाय द्वारा इन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की। कई महत्त्वपूर्ण पदों पर काम करने के पश्चात् इन्होंने भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति पद को सुशोभित किया। सन् 1952 में यह राज्य-सभा के सदस्य मनोनीत हुए। भारत सरकार ने इनकी साहित्यिक एवं राष्ट्रीय सेवाओं को सम्मुख रखते हुए इन्हें 'पद्म भूषण' की उपाधि से सम्मानित किया।

इनकी काव्य-रचनाओं में 'रेणुका', 'रसवंती', 'द्वन्द्वगीत', 'हुंकार', 'धूपछांव', 'सामधेनी', 'इतिहास के आंसू', 'कुरुक्षेत्र', 'रश्मि-रथी', 'उर्वशी', आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। 'कुरुक्षेत्र' इनका प्रबन्ध काव्य है जिसमें महाभारत के कथानक के आधार पर सामाजिक चेतना को उजागर किया गया है और पीड़ित मानवता की शान्ति की कामना व्यक्त की गई है। 'उर्वशी' इनका नवीनतम प्रबन्ध काव्य है जिस पर इन्हें भारतीय ज्ञानपीठ का पुरस्कार दिया गया है।

रामधारी सिंह 'दिनकर' क्रांति, कर्म, उत्साह तथा जीवन के प्रति अटूट विश्वास के कवि हैं। इन्होंने अपनी कविताओं द्वारा जन-जन को क्रांति और जागरण का ओजस्वी संदेश दिया। इनकी कविताओं में देशप्रेम, राष्ट्रीय चेतना, शोषण एवं अन्याय के प्रति विद्रोह, सांस्कृतिक उत्थान तथा जन-जागरण का अमर सन्देश मिलता है। इनकी भाषा में ओज और प्रवाह है। इनकी क्रांतिकारी कविताएं ओज से परिपूर्ण हैं परन्तु इनकी प्रेम सम्बन्धी कविताओं में रमणीयता के दर्शन होते हैं। जब ये सामाजिक एवं राजनीतिक पाखण्डों पर प्रहार करते हैं तो इनकी भाषा व्यंग्यपूर्ण हो जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि इनकी भाषा-शैली इनके काव्य को अधिक कुशल, प्रभावशाली एवं ओजस्वी बनाती है।

पाठ परिचय

प्रस्तुत कविता 'मानव' दिनकर जी के प्रसिद्ध प्रबंध काव्य 'कुरुक्षेत्र' प्रबंध काव्य 'छठे सर्ग से ली गयी है। कवि कहता है कि मानव ने ज्ञान और विज्ञान में अपार सफलता प्राप्त की है। इसे धरती, आकाश और पाताल की सब खबर है। इसी कारण मानव को सम्पूर्ण सृष्टि का शृंगार कहते हैं किन्तु मानव का दूसरा पक्ष यह भी है कि वह संहार, वासना, पाखंड और छल-कपट की मूर्ति भी है। मनुष्य ने धरती और आकाश की दूरी को चाहे माप लिया हो किन्तु एक मानव

की दूसरे मानव से दूरी तो अभी भी बनी हुई है। मानव क्यों इस दूरी को दूर नहीं कर पाया है? कवि का मानना है कि केवल ज्ञान विज्ञान के आधार पर ही मानव को ज्ञानी व विद्वान नहीं माना जा सकता। वह तभी ज्ञानी व विद्वान को सकता है यदि एक मानव दूसरे मानव से प्यार करेगा, उसमें भाईचारे की भावना जागेगी। कवि ईश्वर से प्रश्न करता है कि कब मनुष्य में अधर्म और शत्रुता की भावना का अंत होगा और उसमें धर्म और दया का दीपक जलेगा?

प्रस्तुत कविता की विशेषता है कि इसमें कवि ने विश्व में सुख शांति लाने के लिए मानवता का संदेश व उपदेश दिया है। इसमें उन्होंने शुद्ध खड़ी बोली का प्रयोग किया है। तत्सम शब्दों का प्रयोग यथास्थान पर किया है। इनकी भाषा सशक्त, प्रभावशाली एवं प्रांजल है।

मानव

धर्म का दीपक, दया का दीप,
कब जलेगा, कब जलेगा, विश्व में भगवान?
कब सुकोमल ज्योति से अभिषिक्त–
हो, सरस होंगे जली–सूखी रसा के प्राण?
यह मनुज ब्रह्मांड का सबसे सुरम्य प्रकाश,
कुछ छिपा सकते न जिससे भूमि या आकाश।
यह मनुज जिसकी शिखा उद्दाम।
कर रहे जिसको चराचर भक्ति युक्त प्रणाम।
यह मनुज, जो सृष्टि का श्रृंगार।
ज्ञान का, विज्ञान का, आलोक का आगार।
वह मनुज, जो ज्ञान का आगार।
यह मनुज, जो सृष्टि का श्रृंगार।
नाम सुन भूलो नहीं, सोचो–विचारों कृत्य।
यह मनुज, संहार सेवी, वासना का भृत्य।
छद्म इसकी कल्पना, पाखण्ड इसका ज्ञान।
यह मनुष्य, मनुष्यता का घोरतम अपमान।
व्योम से पाताल तक सब कुछ इसे है ज्ञेय,

पर, न यह परिचय मनुज का, यह न उसका श्रेय।
श्रेय उसका, बुद्धि पर, चैतन्य उर की जीत,
श्रेय मानव की असीमित मानवों से प्रीत,
एक नर से दूसरे के बीच का व्यवधान,
तोड़ दे जो, बस, वही ज्ञानी, वही विद्वान,
और मानव भी वही।
साम्य की वह रश्मि, स्निग्ध, उदार
कब खिलेगी, कब खिलेगी, विश्व में भगवान?
कब सुकोमल ज्योति से अभिषिक्त..........
हो, सरस होंगे जली–सूखी रसा के प्राण?

('कुरुक्षेत्र' के छठे सर्ग से)

शब्दार्थ

अभिषिक्त = सजकर   सरस = सुखी   रसा = पृथ्वी, धरती
सुरम्य = सुन्दर, मनमोहक   शिखा = लौ, तेज   उद्दाम = प्रचण्ड, बंधनहीन
वासना = दुर्विचार, तुच्छ और घृणित (जैसे काम, क्रोध, मोह, लोभ विचार)
चराचर = जड़ और चेतन   आलोक = प्रकाश   कृत्य = काम
भृत्य = सेवक   आगार = भण्डार
संहार सेवी = विनाश में विश्वास रखने वाला, हिंसक।
छद्म = धोखा   पाखंड = आडम्बर, दिखावा
व्योम = आकाश   ज्ञेय = जानने योग्य
श्रेय = कल्याण
चैतन्य उर = जाग्रत और संवेदनशील हृदय, मनुष्य मात्र को अपने जैसा समझने वाला हृदय
व्यवधान = रुकावट   साम्य = समता
रश्मि = किरण   स्निग्ध = कोमल

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. 'मानव' कविता में दिनकर जी ने ईश्वर से क्या प्रार्थना की है?
2. कवि के अनुसार आज मानव उन्नति के किस शिखर तक पहुँच चुका है?
3. कवि ने मानव को मानवता का घोर अपमान क्यों कहा है?
4. कवि के अनुसार मानव का श्रेय किसमें निहित है?
5. 'मानव' कविता का केन्द्रीय भाव लिखें।

*****

10. उदयभानु 'हंस'

(जन्म सन् 1930ई०)

हिंदी के उदीयमान कवियों में श्री हंस रुबाइयों के सफल प्रयोग के लिए प्रसिद्ध हैं। हिंदी रुबाइयाँ, धड़कन, सरगम, संत-सिपाही नामक काव्य संग्रहों के प्रणेता हंस जी को हरियाणा के राज्य कवि का श्रेय प्राप्त है। उत्तर प्रदेश सरकार ने इन्हें 'संत-सिपाही' पर निराला पुरस्कार से सम्मान दिया है।

श्री हंस ने बिहारी की काव्य कला, निबंध-रत्नाकर, हिंदी के प्रमुख कलाकार, साहित्य परिचय प्रभूति गद्य द्वारा हिंदी साहित्य की सेवा की है।

पाठ परिचय

डॉ. शैलेन्द्र नाथ श्रीवास्तव द्वारा संपादित पुस्तक 'कलम उगलती आग' में से उदयभानु हंस द्वारा रचित 'ऐ वीरो, भारतवर्ष के' कविता में कवि भारतवासियों से आह्वान करता है कि आइए! मिलकर गुस्ताखियों का मज़ा चखाएँ और दुश्मन की छाती पर तिरंगे को फहराएँ। यही समय है कि जब हम मातृभूमि का संकट से उद्धार करें। कवि ने भारतवासियों को बंदा बैरागी व गुरु गोबिंद सिंह जी की वीरता से प्रेरणा लेकर युद्ध क्षेत्र में अपनी वीरता का परिचय देने का आह्वान किया है। कवि कहता है कि चंद्रशेखर आज़ाद, सरदार वल्लभ भाई पटेल, सुभाष चंद्र बोस व भगत सिंह स्वतंत्रता-संग्रामियों ने जो भारत के उज्ज्वल भविष्य का सपना देखा था उसको साकार करना होगा।

कविता की भाषा सरल एवं प्रवाहपूर्ण है। शब्द-चयन विषय वस्तु के अनुरूप है। संपूर्ण कविता में संगीतात्मकता का गुण विद्यमान है। वीर रस पूरी कविता में ओत-प्रोत है। अनुप्रास, उदाहरण व पुनरुक्तिप्रकाश से कविता को अलंकृत किया गया है।

ऐ वीरो, भारतवर्ष के

ऐ वीरो, भारतवर्ष के,
फिर दिन आए संघर्ष के!
पशु–बल की आज चुनौती को, तुम दृढ़ता से स्वीकार करो।
फूलों की गलियाँ छोड़, जरा अब काँटों से भी प्यार करो।
इन दुष्ट भेड़ियों को, हमले का मज़ा चखाना है,
वे जीवन भर जो भूल न पाएँ, ऐसा पाठ पढ़ाना है।
अब सदा के लिए रोज़–रोज़ का झगड़ा ही निपटाना है,
यह अमर तिरंगा अब दुश्मन की छाती पर लहराना है !
अब समय नहीं है रुकने का,
अब प्रश्न नहीं है झुकने का,
अवसर आया है, मातृभूमि का संकट से उद्धार करो,
रिपुदल के गर्म लहू से ही रणचंडी का शृंगार करो !
तुम युद्ध–क्षेत्र में नीच शत्रु–सेना के पाँव उखाड़ दो,
दुनिया के इतिहास–ग्रंथ से इनका पन्ना फाड़ दो,
जो दुश्मन घर में घुस आए, तुम उनको पकड़ पछाड़ दो,
फिर कब्र खोद कर, एक साथ ही सबको ज़िन्दा गाड़ दो !
तुम पर्वत जैसे तन जाओ,
बंदा बैरागी बन जाओ,
ऐ सिंहों, गुरु गोविंद सिंह की, फिर धारण तलवार करो,
प्राचीन सप्त–सिन्धु प्रदेश पर, फिर अपना अधिकार करो।
अब माँ की बलिवेदी पर, सिर धरने का अवसर आया है,
फिर काली का खाली खप्पर, भरने का अवसर आया है,
कल तक जो कहते थे, वह करने का अवसर आया है,
जीते थे अब तक जहाँ, वहीं मरने का अवसर आया है !
कह दो जग से, हम मुश्किल को, आसान बना कर छोड़ेंगे,
है युद्ध अगर अभिशाप, उसे वरदान बना कर छोड़ेंगे।
हमला करने वालों को, लहू–लुहान बना कर छोड़ेंगे,
हम तो दुश्मन की धरती को, श्मशान बना कर छोड़ेंगे।

हम प्यार बुद्ध से करते हैं,
पर नहीं युद्ध से डरते हैं !
है नीति यही, जो मित्र बने, तुम उसे हृदय से प्यार करो,
निर्लज्ज शत्रु जब चढ़ आए, उसका समूल संहार करो।
अब सावधान, फिर शत्रु आक्रमण कभी न दुहराने पाए,
केसर की हँसती फुलवारी पर आग न बरसाने पाए।
भारत की आज़ादी पर, कोई आँच नहीं आने पाए,
सीमाओं पर जो लहू बहा, वह व्यर्थ नहीं जाने पाए।
करना है पूर्ण प्रबंध तुम्हें,
भारत, माँ की सौगंध तुम्हें,
हिंसा की ज्वाला में जलती पृथ्वी का हलका भार करो,
आज़ाद, भगत, वल्लभ, सुभाष का चिर सपना साकार करो।

शब्दार्थ

रिपुदल = शत्रुदल, दुश्मनों का समूह

सप्त-सिंधु-प्रदेश = सिंधु, रावी, सतुलज, झेलम, गंगा, यमुना और सरस्वती आदि सप्त नदियों के यहाँ बहने के कारण ही भारत को सप्तसिंधु वाला देश कहा जाता है।

निर्लज्ज = ढीठ

केसर = कुंकुम, मौलसरी

रणचंडी = रणकी देवी, दुर्गा

खप्पर = कपाल

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. कवि ने किन भेड़ियों को मज़ा चखाने की बात कही है ?
2. बन्दा बैरागी और गुरु गोबिंद सिंह की वीरता से क्या प्रेरणा मिलती है ?
3. हम प्यार बुद्ध से कहते हैं, पर नहीं युद्ध से डरते हैं – का भाव स्पष्ट करें।
4. आज़ाद, भगत, वल्लभ और सुभाष कौन थे और उन्होंने भारतवर्ष के लिए क्या सपना देखा था ?
5. प्रस्तुत कविता का केन्द्रीय भाव लिखें।

******

11. दुष्यन्त कुमार

(जन्म सन् 1933-निधन सन् 1975)

हिंदी कविता की अपठनीयता, बासीपन, और ज़िन्दगी के बाहर धकेलने वाले गज़लगो कवि दुष्यन्त कुमार सन् 1955 के बाद की साहित्यिक रचना के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। दुष्यन्त कुमार त्यागी का जन्म 1 सितम्बर 1933 को उत्तर प्रदेश के बिजनौर जिले के राजपुर-नवादा में एक अच्छे खीते-पीते घराने में हुआ। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा मुज़फ्फरनगर में हुई और सन् 1949 में नहरौर से हाई स्कूल की शिक्षा के बाद 1955 के आसपास इन्होंने इलाहाबाद से एम.ए. की परीक्षा पास की। लिखने की आदत इन्हें स्कूली जीवन में पड़ चुकी थी और काफी दिन तक परदेशी उपनाम से लिखते रहे, मगर इलाहाबाद इनकी वास्तविक साहित्यिक जन्मभूमि थी। जहाँ रहते हुए दुष्यन्त कुमार की भेंट अनेक साहित्यकारों से हुई। इनके पिता जी की इच्छा थी कि वकालत करे या पुलिस में जाए, परन्तु स्वयं इन्हें साहित्य से जुड़ी हुई आजीविका पसंद थी क्योंकि ये मूलत: रचनाधर्मी थे। इलाहाबाद से लखनऊ और लखनऊ से दिल्ली पता नहीं कितनी नौकरियाँ छोड़ीं और अपनाईं। रेडियो की नौकरी इन्हें पसन्द आई थी। जिसके आग्रह से कुछ वर्षों तक ये दिल्ली रेडियो में स्क्रिप्ट लेखक का काम करते रहे और फिर सभवत: सन् 1966 में असिस्टेंट प्रोड्यूसर की पदोन्नति पाकर भोपाल चले गए। इन्हें नौकरियां छोड़ते हुए विचित्र अनुभव हुए। ये प्राय: कहा करते थे, ''मैं आपकी या किसी की नौकरी नहीं करता, मैं सिर्फ अपनी कलम की नौकरी करता हूँ।'' ये भोपाल के साहित्यिक-जंगल के शेर कहलाते थे, कवि सम्मेलनों के प्राण समझे जाते थे और अपने गाँव तथा शहर दोनों में दरबार लगाकार बैठते थे। इसी शहर में रहते हुए इन्हें इनकी गज़ल के कारण विशेष पहचान मिली। 30 दिसम्बर, 1975 को मात्र बयालीस वर्ष की अल्पायु में इनका देहांत हो गया।

दुष्यंत कुमार की पहचान कवि तथा नाटककार के रूप में विशेष बनी। वैसे बाल सुलभ कविताएं ये बारह वर्ष की अवस्था में लिखने लगे थे। शुरू में इन्होंने एक उपन्यास ऐसा भी लिखा जिसे अप्रकाशित ही रहने दिया। कवि रूप में जिस पुस्तक ने इन्हें रातों-रात प्रतिष्ठा दी वह थी इनका पहला काव्य संग्रह 'सूर्य का स्वागत' जो सन् 1957 में प्रकाशित हुआ। फिर सन् 1975 तक इनके तीन संग्रह प्रकाश में आए 'आवाज़ों के घेरे', 'जलते हुए वन का बसन्त' तथा 'साये में धूप'।

उपन्याय तथा नाटक के क्षेत्र में भी दुष्यन्त की देन अविस्मरणीय है। 'एक कण्ठ विषपायी' इनका बहुचर्चित नाट्य काव्य है और 'मसीहा मर गया' नाटक तथा 'मन के कोण' एकांकी संग्रह हैं। इनके तीन महत्त्वपूर्ण उपन्याय हैं- छोटे-छोटे सवाल, आंगन में एक वृक्ष और दुहरी

जिन्दगी। इस तरह इनकी प्रतिभा एकाधिक विधाओं में प्रस्फुटित हुई है और सभी में इन्होंने ज़मीन तोड़ी है।

दुष्यन्त के लेखन को किसी एक खेमे में आबद्‌ध नहीं किया जा सकता। इन्होंने स्वयं को नयी कविता का दावेदार कभी घोषित नहीं किया, बल्कि दावेदारों से सदा दूर रहे। इनका काव्य निश्चित रूप से समकालीन पीड़ा को सर्वाधिक पकड़कर चलता है। वह अपने आप–पास की दुनिया के अन्तर्विरोधों और जुल्मों को देखता है तथा अनुभूति के धरातल पर आत्मसात् कर इन्हें सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इनकी रचनाओं में आम आदमी की पीड़ा उसकी विवशता है। गज़ल लेखन में इस कवि को विशेष ख्याति मिली है। इस कवि ने हिंदी गज़ल को समकालीन मुहावरा प्रदान किया, कथ्य को नयी ज़मीन दी।

पाठ परिचय

हिंदी साहित्य में ग़ज़ल विधा के सशक्त हस्ताक्षर दुष्यन्त कुमार के काव्य संग्रह 'साये में धूप' से प्रस्तुत रचना 'कहाँ तो तय था' संकलित है। मानवीय पीड़ा को यथार्थ धरातल पर अनुभव कर सार्थक अभिव्यक्ति देना दुष्यन्त जी की गज़ल की विशेषता है। कवि आसपास की दुनिया के अन्तर्विरोधों और जुल्मों को देखता है – एक छटपटाहट महसूस करता है। लेकिन आशावादिता की झलक इस ग़ज़ल में देखने को मिलती है। प्रस्तुत ग़ज़ल में भी कहीं निराशा दिखाई देती है, 'कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए' – में यह भाव दिखाई देता है लेकिन अन्ततः आशा की किरण भी झलकती दिखाई देती है। 'गुलमोहर', जो मानवीय प्रेम का प्रतीक है, के लिए कवि सर्वस्व समर्पण करना चाहता है।

भाषा में 'उर्दू' शब्दावली का प्रभावशाली प्रयोग है।' 'मयस्सर', 'मुनासिब', 'ख्वाब', 'मुतमइन', 'बशर', 'एहतियात' आदि शब्दों का प्रयोग है। इस गज़ल में एक पीड़ा की अनुभूति है।

कहाँ तो तय था

कहाँ तो तय था चिरागां हरेक घर के लिए,
कहाँ चिराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए।

कहाँ दरख्तों के साये में धूप लगती है,
चलो यहाँ से चलें और उम्र भर के लिए।

न हो कमीज़ तो पाँवों से पेट ढंक लेगे,
ये लोग कितने मुनासिब हैं इस सफ़र के लिए।

खुदा नहीं, न सही आदमी का ख़्वाब सही,
कोई हसीन नज़ारा तो हैं नज़र के लिए।

वे मुतमइन हैं कि पत्थर पिघल नहीं सकता,
मैं बेकरार हूँ आवाज़ में असर के लिए।

तेरा निज़ाम है सिल दे ज़ुबान शायर की,
ऐ एहतियात ज़रूरी है बशर के लिए।

जिएँ तो अपने बगीचों में गुलमोहर के तले,
मरें तो गैर की गलियों में गुलमोहर के लिए।

शब्दार्थ

तय था = निश्चित था
चिरागां = दीवाली, जलते हुए दीपकों की कतारें
मयस्सर = उपलब्ध; आसानी से मिलने वाला
मुनासिब = उपयुक्त
हसीन = सुन्दर
मुतमइन = संतुष्ट
निज़ाम = प्रबन्ध
बशर = आदमी
गुलमोहर = गुलमोहर फूलों से युक्त पेड़, मानवीय प्रेम का प्रतीक।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. हिंदी ग़ज़ल को नई अभिव्यक्ति देना दुष्यन्त कुमार के काव्य की विशेषता है। 'कहाँ तो तय था' गज़ल के आधार पर स्पष्ट करें।
2. 'कहाँ तो तय था' ग़ज़ल में कवि में मानवीय पीड़ा को यथार्थ धरातल पर प्रस्तुत किया है, स्पष्ट करें।
3. 'कहाँ तो तय था' कविता का सार 150 शब्दों में लिखें।
4. 'कहाँ तो तय था' ग़ज़ल में कहीं निराशा दिखाई देती है तो कहीं आशा की किरण, स्पष्ट करें।
5. 'कहाँ तो तय था' ग़ज़ल से हमें क्या शिक्षा मिलती है ? 60 शब्दों में स्पष्ट करें।
6. 'तेरा निज़ाम' में किसे संबोधित किया गया है ?

******

12 सुरेश चन्द्र वात्स्यायन

(जन्म सन् 1934 - निधन सन् 2008)

स्वतंत्र भारत के उदयीमान हिंदी कवियों में सुरेश चन्द्र वात्स्यायन का नाम अनेक दृष्टियों से उल्लेखनीय है। इनका जन्म 7 फरवरी 1934 को पसरूर (पाकिस्तान) में हुआ। इनके पिता पं. अमरनाथ शास्त्री अविभाजित पंजाब के सुप्रसिद्ध संस्कृत, हिंदी सेवी शिक्षाविद शास्त्री थे। इनका पैतृक धाम हिमाचल प्रदेश के ऊना जिले में सुंकाली नामक गाँव है। इन्होंने स्नातकोत्तर कालेज, लुधियाना में छात्र जीवन की प्रतियोगिताओं में प्रथम स्थान प्राप्त किया। इन्होंने हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेज़ी, जर्मन के अलावा वेद उपनिषद्-पुराण-गुरुवाणी के साथ-साथ पंजाबी, उर्दू, बंगाली तमिल आदि भाषाओं का निजी अध्ययन किया। यही कारण है कि इनकी रचनाएँ हिन्दी, पंजाबी तथा अंग्रेज़ी तीनों भाषाओं में प्रकाशित हैं। छात्र जीवन में सुरेश जी ने अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय अपनी स्वरचित मंत्र मुग्ध कर देने वाली रचनाओं से करा दिया था। सदा छात्रवृत्ति प्राप्त करते रहे-स्कूल में ही मौलिक कविता पाठ तथा नाटक का मंचन किया। इनकी प्रारम्भिक कविताओं में प्रकृति, देश और मां के अभाव की कसक स्पष्ट है।

'अंकुर', प्रवाल, और 'मुकुल शैलानी' कवि सुरेश के तीन कविता-संग्रह हैं जो पंजाब प्रदेश और भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत हैं। बंगला कविताओं के हिन्दी रूपान्तर और अंग्रेज़ी कविताओं के लिए भी सुरेश का नाम लिया जा सकता है। इनके अंग्रेज़ी तथा पंजाबी में भी काव्य संग्रह प्रकाश में आ चुके हैं। अखिल भारतीय दर्शन परिषद् के लिए सुरेश ने अंग्रेज़ी से हिंदी में कुछ अनुवाद कार्य भी किया है जो नेतृत्व और समाज दर्शन (दो खण्ड) में प्रकाशित है।

लोक धुन, नवगीत, अंग्रेज़ी सॉनेट के समानान्तर चतुर्दशी, उर्दू रुबाई के समानानन्तर षट्पदी और यतिक्रम पर आधारित अतुकांत लेकिन लयपूर्ण कविताओं में सुरेश की सृजनशीलता अंकुरित और प्रवाहमयी है।

सुरेश का कवि रूप बहुआयामी है। कवि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की सही पहचान इनकी एकरूपता में है। भारतोयता, संस्कृति और भाषा के प्रति पूर्ण समर्पित व्यक्तित्व है। इन्हें प्रगतिशील भारतीय चिन्तन की प्रतिनिधि मंत्र कविता के प्रवर्त्तक कवि रूप में मान्यता मिल चुकी है। इन्हें अखिल भारतोय स्तर पर अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। भाषा विभाग, पंजाब ने इन्हें सन् 1992 में शिरोमणि साहित्यकार के रूप में अलंकृत किया है।

पाठ परिचय

'वारिसनामा' कचहरी व कानून की भाषा का शब्द है। बड़े-बूढ़ों की संतान उनकी सम्पदा-जायदाद या विरसे की उत्तराधिकारी होती है। उत्तराधिकारी वारिस की देख-रेख में सौंपा गया अधिकार वारिसनामा कहलाता है।

स्व और राज की संधि (अपना + राज) पर ऋग्वेद के स्वराज सूक्त की निरन्तरता की विरासत 1942 में गाँधीवादी कांग्रेस द्वारा अपनाये गये पूर्ण स्वराज के प्रस्ताव में जगमगा उठी थी। 1950 से लेकर आज दिन तक कविता के विश्वमंच पर मंत्र कविता के प्रवर्त्तक विद्यावाचस्पति सुरेशचन्द्र वात्स्यायन भारत छाप-विश्व मानव के रूप में जो लड़ाई लड़ते आए हैं, उसकी एक ज्योति है कालजयी स्वराज चेतना। यह चेतना अपने आप उजागर होने और उजाला फैलाने की भावना है। सुन स्वराज की धुन और सुन सुन सुन भारत की स्वराज धुन इसी भावना के कविता संग्रह हैं जो सुरेश जी की प्रगतिशील विश्व मानवता की मंत्र संपदा का भारतीय राग है।

कविता में अंग्रेज़ी सॉनेट, जापानी हाइकु-रेडा., उर्दू गज़ल, प्रबन्ध की जगह अनुबंध के हिंदी रूप विकसित करते हुए कवि सुरेश ने भारतेन्दु के पुनर्जागरण, मैथिली की राष्ट्रवादी क्षमता, प्रसाद-पंत-महादेवी-निराला के प्राकृतिक सांस्कृतिक वैभव और अज्ञेय के प्रयोग धर्म को अपने कविकर्म का कलेवर बनाकर जो पड़ाव रचा है, उसका प्रतिनिधि है 'वारिसनामा स्वराज के लिए बहे लहू का' स्वराज के मंत्र से यह वारिसनामा राजगुरू-सुखदेव-भगतसिंह जैसे अमर शहीदों के लिए श्रद्धांजलि है। नई युवा पीढ़ी के लिए यह एक नए युग के निर्माण में भारत के नवनिर्माण का आह्वान है।

वारिसनामा

स्वराज के लिए बहे लहू

भगतसिंह-राजगुरु-सुखदेव के वारिसो,
फाँसी के जिस फंदे ने,
गले घोंट दिए उनके,
क्यों भूल गए आज तुम उसको,
याद दिलाती आज भी इक समाधि को जुहारती
सतलुज के फ़ीरोजपुरी पुल की हुसैनी हवा,
स्वराज के संकल्प पर
प्रशासन के विदेशी उस प्रहार को !

नेशन के विरुद्ध,
राष्ट्र के युद्ध की पहचान के बिना,
पुरखों की आर्य संतान तुम कैसे बनोगे,
ज़िंदगी की किताब में
विदेशियों की लिपि में दरज
आर्य-द्रविड़-रंग-जाति-क्षेत्रगत भेदभाव के
पश्चिमी पाखंड को
जड़ से उखाड़ फेंकने वाले शोध बोध की ज्योति
इतिहास का यथार्थ ज्ञान तुम कैसे बनोगे,
राम-राज्य के जिस आदर्श के लिए
वे हो गए बलिदान
धारण किए बिना धड़कनों में उसको
कुश के वंशज सतगुरु नानक के सबद
लव के वंशज दशमेश पिता के विचित्र नाटक का देश पावन
मानुस की जात का सच्चा सुच्चा हिंदुस्तान तुम कैसे बनोगे ?
दुर्भाग्य है तुम्हारा
कि तुममें छिपा खोया जो चंद्रगुप्त
कोई चाणक्य उसके लिए प्रकाश में कहीं नहीं,
ऐसे में नेताओं की ओर देखो मत
नेतृत्व की पहचान खुद बनो !
जागो
नींद ने तुमको ले जाना है कहीं नहीं,
समझो
नींद में जो आते हैं
सपने वे राह भूली अकल की भटकन हैं,
नशे की गोलियों जैसे वे
भूल भुलैयों में भरमाते हैं !!

हर सुबह सांझ की लाली के संग
करो प्रणाम उन माताओं को

भगतसिंह राजगुरु हरसुखदेव की नसों नाड़ियों में
गति कर रही बन कर लहू जो,
लहू यह माटी पानी आग हवा आकाश है जिनकी
जो हर सुख-सुविधा की दाता है
वह और कोई नहीं
बेटी धरती की अपनी भारत माता है।

संकट है घर में,
संकट है बाहिर,
पहचानो
घर में लगी घर की ही आग को,
पहचानो
घर की आग को भड़का रही
बाहिर की धूर्त पाजी सफ़ेदपोश हवा को,
यदि प्रबुद्ध तुम तपः पूत संकल्प के प्रकल्प
तब क्या है किसी अजनबी आग हवा की बिसात
कि अपनी लपेट में तुम्हें लपक वह ले
तुम इंद्र, वज्रपाणि, मृत्युंजय, प्रलयंकर जन्मजात,
भूलो मत बैसाखियों के भरम में
अचूक दुर्दम दम है तुममें
अपने पैरों चल सकते तुम अपनी चाल हो
अँधेरा हो घना
तो उसको चीर जो सकती
तुम वह मशाल हो,
सुनो शहीदों की हर समाधि को जुहारती
हर फ़ीरोज़पुरी पुल पार की हुसैनी हर हवा में गूंजती
वैदिक ऋषि के अभय सूक्त जैसी
स्वराज के संकल्प की वँगार को गुहार को,
लो थामो, उतारो अपनी धड़कनों में
स्वराज का वारिसनामा यह
भगतसिंह राजगुरु सुखदेव के वारिसो !!!

शब्दार्थ

राष्ट्र = ऋषि संस्था के रूप में अंत्योदय व सर्वोदय से जुड़े समाज की भौगोलिक इकाई का नाम राष्ट्र है।

नेशन = यूरोप की औद्योगिक क्रांति से जुड़े धर्म-अर्थ-काममय शोषण की उपनिवेश-साम्राज्यवादी संस्था का नाम नेशन है। अफ्रीका व एशिया द्वारा भारत भूमि पर लड़ा गया स्वराज का युद्ध नेशन के विरुद्ध राष्ट्र का युद्ध था। यह भोग से योग की लड़ाई थी।

इन्द्र = देह-देव-प्राण-इंद्रिय बल के प्रतिनिधि देवराज इंद्र

वज्रपाणि = हाथ में वज्र वाले इन्द्र-विष्णु

मृत्युंजय = मृत्यु पर विजयी (शिव)

प्रलयंकार = सर्वनाशकारी (शिव)

(भारतीयों के भीतर इन्द्र, वज्रपाणि, मृत्युंजय और प्रलयंकार के गुण जन्म से ही बतौर विरासत मौजूद रहते हैं।)

अभ्य-सूक्त = कुछ वेद मंत्र हर डर में निडर (अभय) रहने वाले ऋषियों की प्रार्थना है। इन मंत्रों के एक समूह का नाम 'अभय सूक्त' है।

श्री गुरु तेगबहादुर जी की ये पंक्तियाँ इसी अभय सूक्त की वाणी हैं :-

भय काहू कउँ देत नहिं, न भय आनतहूँ मान,

कहु नानक हरभज मना, गिआनी ताहि पछान॥

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. 'वारिसनामा' किसे कहते हैं ? युवा पीढ़ी को विरासत क्या है ?
2. स्वराज के लिए बहे लहू का स्वरूप क्या है ?
3. स्पष्ट कीजिए कि यह कविता भारत छाप विश्व मानव की छवि है।
4. हुसैनीवाला के समीप भारत पाक सीमा पर खड़ा स्मारक, आज की पीढ़ी को क्या कहता है ?
5. निराला की 'जागो फिर एक बार' कविता से 'वारिसनामा' कविता की तुलना करें।

******

13. सुभाष रस्तोगी

(जन्म सन् 1950 ई०)

सुभाष रस्तोगी समकालीन कविता के एक जाने माने कवि हैं। कविता के साथ-साथ साहित्य की अन्य विधाओं जैसे कहानी, उपन्यास, जीवनी तथा साक्षात्कार आदि में भी इनकी अच्छी पकड़ है। इनका जन्म 17 अक्टूबर, 1950 ई० को अम्बाला छावनी में हुआ। इन्होंने हिंदी में एम. ए. तथा पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की हुई है। इनकी मुख्य रचनाएं व अन्य उपलब्धियाँ इस प्रकार हैं :-

काव्य संग्रह :- टूटा हुआ आदमी और जीवन छला गया, अग्निदेश, वक्त की साजिश, कत्ल सूरज का, बयान मौसम का, अपना-अपना सच, तपते हुए दिनों के बीच, कठिन दिनों में, अंधेरे में रोशन होती चीज़ें।

कहानी :- ठहरी हुई ज़िंदगी, एक लड़ाई-चुपचाप

उपन्यास :- काँच घर, टूटे सपने

साक्षात्कार :- संवाद निरंतर

जीवनी :- क्रांतिकारी भगतसिंह, रवीन्द्रनाथ टैगोर, नेताजी सुभाषचन्द्रबोस, अमर क्रांतिकारी सुखदेव।

पुरस्कार व सम्मान :- 'कत्ल सूरज का' के लिए 1980-81 में हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा, तपते हुए दिनों के बीच 1987-88 में, बयान मौसम का 1991-92 में तथा 1994-95 में क्रांतिकारी भगतसिंह (जीवनी) के लिए प्रथम पुरस्कार से सम्मानित। डॉ० लीलाधर वियोगी कविता पुरस्कार। इसके अतिरिक्त अनेक प्रमुख संस्थाओं द्वारा भी इन्हें विशेष रूप से सम्मानित किया जा चुका है।

उपलब्धियाँ :- कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में कहानियों एवं कविताओं पर एम. फिल. हेतु शोध कार्य सम्पन्न। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय द्वारा कुछ कविताएं एम. ए. हिंदी द्वितीय वर्ष के पाठ्यक्रम में शामिल। कुछ कविताएँ विभिन्न भारतीय भाषाओं से अनूदित। आकाशवाणी तथा दूरदर्शन के विभिन्न केन्द्रों के विभिन्न कार्यक्रमों, संगोष्ठियों तथा कवि-सम्मेलनों में निरंतर भागीदारी।

आजकल ये भारत सरकार के एक कार्यालय से सेवानिवृत्त होकर स्वतंत्र लेखन कार्य में लगे हुए हैं व साहित्य की सेवा कर रहे हैं।

पाठ परिचय

'बुद्धम् शरणम् गच्छामि' कविता सुभाष रस्तोगी द्वारा रचित 'समय के सामने' कविता संग्रह में से ली गयी है। इस कविता में कवि ने प्रार्थना की है कि हरेक इन्सान को सुविधाएं मिलें। हरेक को रोज़गार मिले, अन्न मिले, सभी सलामत रहें, खेतों में हरियाली हो, सभी को खुशी मिले और लोगों के जीवन में अज्ञान रूपी अंधकार दूर होकर ज्ञान रूपी प्रकाश फैले। यही नहीं कवि तो पक्षियों के लिए भी प्रार्थना करता है कि उन्हें भी कोई न कोई ठिकाना मिले। कवि प्रार्थना करता है कि लोगों में वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना जागृत हो और बुद्धम् शरणम् गच्छामि का अनहद नाद एक बार फिर से लोगों के हृदय में गूंजे।

कविता की भाषा शैली सहज व सरल है। अनुप्रास, उपमा, रूपक, पुनरुक्ति प्रकाश अलंकारों का सुंदर प्रयोग देखने को मिलता है। अंग्रेज़ी, अरबी, फारसी शब्दों का प्रयोग यथोचित स्थान पर किया गया है। कहीं-कहीं संस्कृतनिष्ठ भाषा का भी प्रयोग द्रष्टव्य है।

बुद्धम् शरणम् गच्छामि

यही प्रार्थना है
कि इस बरस हुआ जो
वह अगले बरस न हो !
धूप –
किसी एक की मिलकियत न बने
सूरज –
उनके कीच-भरे आँगन में भी उतरे
जो किसी भी पंक्ति में
शामिल नहीं हैं
हर खेत को पानी
हर हाथ को काम मिले
झोपरपट्टी में भी
पीपल की बन्दनवार सजे
यही प्रार्थना है
कि इस बरस जो हुआ
वह अगले बरस न होवे

कोई चिरैया
प्यास से दम न तोड़े
हर पंछी को छाँव
हर पाँव को ठाँव मिले
घुप्प अँधेरे में
कोई क़ंदील जले
और सब-कुछ रोशन हो जाये
समय का बायस्कोप
इस बरस तो कम-से-कम
हत्या, आगज़नी और बलात्कार
              अकाल
प्रकृति के ताण्डव
और आदमी को
आदमी का निवाला बनाने के दृश्य
                    न दिखाये
यही प्रार्थना है
कि इस बरस जो हुआ
वह अगले बरस न होवे

इस बरस तो
              आदमी -
विश्वास
प्रार्थना
भलाई
अहिंसा
तप-त्याग
सहिष्णुता
और वसुधैव कुटुम्बकम् जैसे
सदियों पुरानी हमारी विरासत से जुड़े शब्द

कम-से-कम
नई सदी में तो
हमारे आचरण में फिर से लौटें
और बुद्धम् शरणम् गच्छामि का अनहद नाद
एक बार फिर से
प्राणों में गूँजे
यही प्रार्थना है
कि इस बरस जो हुआ
वह अगले बरस न होवे
नई सदी में तो धरती
          कम-से-कम
हमारे कपट-तन्त्र से कलंकित न होवे
धरती के सुजलाम् सुफलाम्
और शस्यश्यामलाम् होने के पुराने दिन
                    फिर से लौटें
यही प्रार्थना है
कि पिछले बरस की तरह
          इस बरस
हज़ारों लोग बेघर न हों
और आदमज़ात की
कौड़ियों सरीखी बेजान आँखों के
पेड़ों पर चिपकने के दृश्य
काल-देवता
अगले बरस न दिखाये
अन्न के दाने-दाने को / आदमी न तरसे
वनस्पतियाँ
खूब फलें-फूलें
नई सदी में / सब
खुशियों के हिंडोले में झूलें

सुबह -
मंगलगान-सी जीवन में उतरे
और साँझ-
सबकी सलामती की दुआ मांगती हुई
हर अँधियारे कोने में
उजाले का एक अन्तरीप रचे
और हर थके पाँव को
            मंज़िल मिले
यह प्रार्थना है
कि पिछले बरस की तरह
वह अगले बरस न होवे !

शब्दार्थ

मिलकियत	=	जागीर	कीच भरे	=	कीचड़ भरे
ठाँव	=	स्थान, जगह	घुप्प	=	घना
कंदील	=	दीप	बायस्कोप	=	परदे पर चलचित्र दिखलाने का एक प्रसिद्ध यंत्र
आगजनी	=	आग लगाना	सहिष्णुता	=	सहनशीलता

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. 'जो किसी भी पंक्ति में शामिल नहीं है' में कवि ने किन लोगों की ओर इशारा किया है ? उनके लिए कवि ने क्या प्रार्थना की है ।
2. पक्षियों के लिए कवि क्या कामना करता है ?
3. सदियों पुरानी हमारी विरासत से जुड़े शब्दों से कवि का क्या अभिप्राय है ?
4. 'बुद्धम् शरणम् गच्छामि का अनहद नाद एक बार फिर से प्राणों में गूँजे' - का आशय स्पष्ट करें।
5. प्रस्तुत कविता का केन्द्रीय भाव लिखें।

******

14. उषा आर. शर्मा

(जन्म सन् 1953)

स्वतंत्र भारत की उदीयमान हिंदी कवयित्रियों में श्रीमती ऊषा आर शर्मा का प्रमुख स्थान है। मुम्बई में 24 मार्च 1953 में एक सैनिक परिवार में जन्मी कवयित्री की शिक्षा भारत के विभिन्न प्रान्तों में हुई। विद्यार्थी जीवन से ही संगीत, नाटक व प्रकृति प्रेम ने संवेदनाओं को सँजोने में भूमिका प्रस्तुत की। प्रभाकर के पश्चात् दर्शन शास्त्र व लोक प्रशासन में स्नातकोत्तर स्तर की परीक्षा विशिष्टता के साथ उत्तीर्ण की। भारतीय प्रशासनिक सेवाओं की प्रतियोगिता में चयन हुआ और राष्ट्र सेवा की प्रबल भावना के साथ एक अनुशासित व कर्मठ सिपाही की तरह इस कार्य में जुट गईं। लेकिन भीतर की संवेदनशील कवयित्री व लेखिका ने व्यस्तता के इस जीवन में भी मानवीय संत्रास, यंत्रणा, घातों-प्रतिघातों को भी एक सशक्त अभिव्यक्ति दी है। परिणामत: एक वर्ग आकाश (कविता संग्रह 1999) 'पिघलती साँकलें' (कविता संग्रह 1998) भोजपत्रों के बीच (कविता संग्रह 1999) 'क्यों न कहूं' कहानी संग्रह प्रकाशनाधीन है।

श्रीमती उषा आर शर्मा के लेखन कार्य को विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित किया गया है। 'भोज पत्रों के बीच' भाषा विभाग, पंजाब द्वारा पुरस्कृत हुई। आपके लेखन के लिए पंजाब हिन्दी साहित्य द्वारा 'वीरेन्द्र सारस्वत सम्मान' से आपको सम्मानित किया गया। गुरु नानक देव विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित पंजाब की आधुनिक हिंदी कविता में इनकी सात कविताएँ प्रकाशित हैं।

पाठ परिचय

'पिघलती साँकलें' में उषा आर. शर्मा की विभिन्न कविताएँ संकलित हैं। नवयुग के आगमन के लिए एक आधारभूत परिवर्तन की आवश्यकता है। रूढ़ियों, मान्यताओं व झूठी परम्पराओं की गुस्ताख साँकलों को पिघलना ही होगा लेकिन इसके लिए मात्र कागों की चहकन पर्याप्त नहीं – बल्कि एक ऐसे विस्फोट की जो समस्त जग जीर्ण-शीर्ण को समाप्त कर दे। इस पाठ में इसी संकलन से दो कविताएं शामिल की गई हैं। कवयित्री की भाषा परिपक्व व आलंकारिक है, तत्सम शब्दों के साथ उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग है। इन कविताओं में आशावाद का स्वर है –मानवता की भावना का उदय एक नए युग की शुरूआत के विश्वास के साथ अपने कथ्य को लिए हुए है। इनमें कवयित्री के प्रकृति प्रेम व सरलतम भावों में प्रकटीकरण की सशक्त अभिव्यक्ति है।

'तुम-हम' कविता में भाव तत्व की प्रधानता के कारण पाठक का कवयित्री की भावनाओं के साथ सीधा तादत्म्य स्थापित हो जाता है। भावों की उदात्तता, तीव्रता व स्वाभाविकता के कारण कविता ग्राह्य एवं आकर्षक बन पड़ी उदात्तता, तीव्रता व स्वाभाविकता के कारण कविता ग्राह्य एवं आकर्षक बन पड़ी है। पूरी कविता में मातृभक्ति को बहुत ही अनूठे ढंग से कवयित्री ने अभिव्यक्ति प्रदान की है। कवयित्री विवाहोपरान्त आज भी माँ की ममता को स्मरण करती है कि बचपन में किस तरह उसने मां की छत्रछाया में उछलकूद करते जीवन व्यतीत किया और किस तरह माँ उसे हर मुसीबत से बचाती थी। वह माँ के इस प्यार को याद करके भावविभोर हो उठती है और आज भी वह माँ के आँचल की छाया में सोने को लालायित है।

कविता की भाषा अत्यंत सरल है। कहीं कहीं संस्कृतनिष्ठ व फ़ारसी भाषा का प्रयोग किया गया है। अनुप्रास एवं पुनरुक्तिप्रकाश अलंकारों से कविता का शृंगार किया गया है। 'थक-मांद' में समासात्मक शैली का प्रयोग किया गया है

पिघलती साँकलें

व्यस्तताओं की बेड़ियों
में बंधे
इन्सानों के पास
समय कहाँ है
आत्ममंथन के लिए।

कुण्डली मारे
सुषुप्त शेष नाग की
कौन करे निद्रा भंग
मुंडेरों पर बैठे
कागों की चहकन
नहीं है पर्याप्त।

आवश्यकता है
किसी मर्मभेदी
परमाणु विस्फोट की
जिसके हंगामे मात्रा से
आलोड़ित हो जाए
सारा ब्रह्मांड।

तब स्वयं ही
पिघल जाएंगी
गुस्ताख साँकलें
नहीं रहेगा कहीं
कोई प्रतिबंध।

इत्मिनान रखो
तब पहचानेगा
इन्सान
इन्सान को
उदय होगा
एक नया सूर्य
और करेंगे
हम पदार्पण
एक नई दुनिया में।

तुम-हम

तुम्हारे मूल से उपजी
तुम्हारी प्रतिच्छाया
– मैं
बढ़ी, पली और
कब जवान हो गई
मुझे पता ही न चला।
तुम मेरा छतनारा
दरख्त रहीं –
जिसकी छांव तले
मैं कलोल करती
कब सयानी हो गई –
मुझे पता ही न चला।
तुम्हारें पंखों ने दी

सदा गरमाहट मुझे
और बचाये रखा
हर मुसीबत से
कब बदल गए
मेरे रोयें पंखों में
मुझे पता ही न चला।
एक दिन
तुमने
मेरा
अलग
एक सुन्दर सा
घोंसला
बना दिया
मैं उसमें
कैसे रम गई
मुझे पता ही न चला।
पर मन अब भी
उड़-उड़ जाता है
पुराने घोंसले में
और मैं महसूस
करती रहती हूँ
सदैव तुम्हारे
स्नेहिल स्पर्श को।
तुम फैलाए रखो
यूंही
अपना आंचल
आसमान की तरह
जिसे मैं
जब चाहे

ओढ़ लूँ
और –
जब थक-मांद कर
आऊं तुम्हारी आगोश में
तो बालों में
फेरती हुई
अपनी उंगलियां
तुम सुला लेना
मुझे अपनी गोद में।

शब्दार्थ

प्रतिछाया	=	प्रतिरूप, प्रतिबिंब, प्रतिमा			
छतनारा	=	जिसकी शाखाएँ छत की तरह चारों तरफ दूर-दूर तक फैली हों।			
दरख्त	=	पेड़, वृक्ष	कलोल	=	उछल-कूद
स्नेहिल स्पर्श	=	प्यार भरा स्पर्श	आगोश	=	आलिंगन, क्रोड़, अंक
रोयें	=	रोंगटे , रोम			

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. 'तुम-हम' कविता का केन्द्रीय भाव स्पष्ट करें।
2. कवयित्री ने अपने आप को किसकी प्रतिच्छाया कहा है और क्यों ?
3. कवत्रियी आज भी अपनी माँ की गोद में क्यों सोना चाहती है ?
4. प्रस्तुत कविता में भावों की उदात्तता एवं तीव्रता है – स्पष्ट करें।

******

निबन्ध भाग

15. बाबू गुलाबराय

(जन्म सन् 1888 - निधन सन् 1963)

बाबू गुलाबराय का जन्म सन् 1888 ई. में इटावा (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। उन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा मैनपुरी में प्राप्त की थी और तदनंतर आगरा विश्वविद्यालय से एम. ए. तथा एल. एल. बी. की परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं।

बाबू जी ने आजीविका प्राप्ति के लिए छत्तरपुर राज्य की सेवा की। वे नरेश के निजी-सचिव तथा अनेक उच्च पदों पर कार्य करते रहे। सेवा-निवृत्ति के बाद वे स्थायी रूप से आगरा में बस गये तथा उन्होंने जीवन पर्यन्त 'साहित्य संदेश' नामक साहित्यिक पत्र का सम्पादन किया। उनकी साहित्यिक पत्र सेवाओं के लिए आगरा विश्वविद्यालय ने उन्हें डी. लिट. की उपाधि से सम्मानित किया।

नवरस सिद्धांत और अध्ययन, काव्य के रूप, हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास, अध्ययन और स्वाद उनके समीक्षा शास्त्र तथा साहित्य के इतिहास सम्बन्धी रचनाएं हैं। उनके प्रसिद्ध निबंध संग्रह हैं :- 'मेरे निबंध' 'निबंध संग्रह', 'प्रबन्ध प्रभाकर', 'निबन्ध माला', 'साहित्य और समीक्षा', 'अध्ययन और आस्वाद'।

उन्होंने साहित्यिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, संस्मरणात्मक और ललित सभी प्रकार के निबंधों की रचना की है। उनके निबंधों में व्यक्तित्व की सरलता, अनुभूति का सम्मिश्रण, विचारों की स्पष्टता एवं शैली की सुबोधता सहज दर्शनीय है।

पाठ-परिचय

संकलित निबंध 'भारत की सांस्कृतिक एकता' उनके प्रसिद्ध निबंध संग्रह , 'प्रबन्ध प्रभाकर' से लिया गया है। इसमें उन्होंने अत्यन्त सरल और सुबोध शैली में यह बताया है कि ऊपरी मतभेद और विभिन्नता के होते हुए भी सारा भारतवर्ष एक है। राष्ट्रीय एकता को खण्डित करने के उद्देश्य से हमारे विरोधी भारत को, एक देश न कहकर 'उप महाद्वीप' कहते रहे हैं।

जाति, धर्म, भाषा आदि के भेद होते हुए भी संस्कृति की सम्पन्नता भेदों में है। किन्तु भेद इतने न हों कि उनमें सामंजस्य न रहे।

राष्ट्रीय एकता के लिए धार्मिक और सांस्कृतिक एकता, राजनीतिक एकता के समान ही आवश्यक है। भारत के विभिन्न धर्मों में बुनियादी समानताएँ हैं। मुसलमान और ईसाई धर्म, एशियाई धर्म होने के कारण, भारतीय धर्मों से बहुत कुछ समानता रखते हैं। उन्होंने यहाँ की संस्कृति को प्रभावित किया है और उनसे प्रभावित भी हुए हैं। प्राचीनकाल से भारतीय धर्म और साहित्य ने राष्ट्रीय एकता का पाठ पढ़ाया है। भाषिक दृष्टि से भी भारत में विशेष भेद नहीं है। जाति, भाषा, वेशभूषा और धर्म के भेदों के बावजूद हमारा एक राष्ट्रीय व्यक्तित्व है।

निबंध में उन्होंने विषय के प्रत्येक पक्ष पर सूक्ष्मतापूर्वक, तर्कसंगत व मनोवैज्ञानिक ढंग से विचार प्रस्तुत किये हैं। निबंध की भाषा संस्कृत निष्ठ होते हुए भी बोधगम्य है।

भारत की सांस्कृतिक एकता

देश राष्ट्रीयता का एक आवश्यक उपकरण है। भारत-भूमि की नदियों के प्रवाह की प्राकृतिक विभाजन-रेखाएँ बतलाकर तथा भाषा और धर्मों एवं रीति-रिवाज़ों के भेद को आधार बनाकर हमारी राष्ट्रीयता के विचार के खण्डित करने के हेतु हमारे कुछ हितचिन्तक इस देश को देश न कहकर उपमहाद्वीप कहते हैं। हमारी राष्ट्रीयता को चुनौती देने के निमित्त उत्तर-दक्षिण, अवर्ण-सवर्ण, हिन्दू-मुसलमान-सिक्ख-ईसाई-जैन के भेद खड़े करके हमारी संगठित इकाई को क्षति पहुँचाई गई। भाषा का भी बवण्डर उठाया गया ताकि आपसी झगड़ों और भेदभाव में हमारी शक्ति का ह्रास हो और विदेशी शासकों का राज्य अटल बना रहे।

पहले तो प्रायः सभी देशों में जाति, भाषा और धर्मगत भेद हैं। संयुक्त राज्य अमरीका में ही कई जातियाँ हैं। वहाँ भाषाएँ भी कई बोली जाती हैं, किन्तु एक केन्द्रीय भाषा सबको मिलाए हुए है। स्विट्ज़रलैण्ड में जर्मन, फ्रांसीसी तथा इतालवी तीन भाषाएँ बोली जाती हैं। फिर भी वह एक सुसंगठित राष्ट्र है। इंग्लैण्ड, आस्ट्रेलिया एक भाषाभाषी होते हुए भी भिन्न-भिन्न राष्ट्र हैं। जिस देश में भेद नहीं, उसकी इकाई शून्य या गणितशास्त्र की इकाई की भाँति दरिद्र इकाई है। सम्पन्नता भेदों में ही है, किन्तु भेद इतने न होने चाहिएँ कि उनमें सामंजस्य न रहे।

वैसे तो केंचुआ भी एक इकाई है, उसमें आँख, कान, नाक और हाथ-पैर का भेद नहीं. केवल एक ही स्पर्शेन्द्रिय सारी ज्ञानेन्द्रियों का प्रतिनिधित्व करती है। किन्तु क्या उसका जीवन सम्पन्न कहा जाएगा ? मनुष्य अपने अवयवों के बाहुल्य और उनके समायोजन और संगठन के कारण जीवधारियों में सबसे अधिक विकसित और श्रेष्ठ गिना जाता है।

भेदों के अस्तित्व से इन्कार करना मूर्खता होगी और उनकी उपेक्षा करना अपने को धोखा देना होगा। हमारे समाज में भेद और अभेद दोनों ही हैं। हमारे पूर्व शासकों ने अपने स्वार्थवश हमारे भेदों को अधिक विस्तार दिया और जिससे हमारे देश में फूट की बेल पनपे और इस भेद-नीति से उनका उल्लू सीधा रहे। हमारे अभेदों की उपेक्षा की गई या उनको नगण्य समझा गया। इसमें हीनता की मनोवृति पैदा की गई। देश की नदियाँ, जिनको विभाजन-रेखाएँ कहा जाता है, हमारी भूमि को उर्वरा और शस्यश्यामला बनाती हैं। हमारी भौगोलिक इकाई हिमालय पर्वत और सागर से है। उसे छिन्न-भिन्न किया गया है। इसमें कुछ राजनीतिक स्वार्थ भी सहायक हुए। प्राचीनकाल में राष्ट्रीयता की धारा अबाधित तो नहीं रही है, आंतरिक द्वेष कभी-कभी प्रबल हो उठे हैं, किन्तु भारतवासी एकच्छत्र सार्वभौम राज्य से अपरिचित न थे। राजसूय, अश्वमेध आदि यज्ञ ऐसे ही राज्य की स्थापना के ध्येय से किये जाते थे। इनके द्वारा टूटी हुई राष्ट्रीय एकता जुड़कर अविरल धारा का रूप धारण कर लेती थी।

राजनीति की अपेक्षा धर्म और संस्कृति मनुष्य के हृदय के अधिक निकट है। यद्यपि राजनीति का सम्बन्ध भौतिक सुख-सुविधाओं से है फिर भी जनसाधारण जितना धर्म से प्रभावित होता है उतना राजनीति से नहीं। हमारे भारतीय धर्मों में भेद होते हुए भी उनमें एक सांस्कृतिक एकता है, जो उनके अविरोध की परिचायक है। वही त्याग और तप एवं मध्यम मार्ग की संयममयी भावना हिन्दू, बौद्ध जैन और सिक्ख सम्प्रदायों में समरूप से वर्तमान है। एक धर्म के आराध्य दूसरे धर्म में महापुरुष के रूप में स्वीकार किए गए हैं। भगवान बुद्ध तो अवतार ही माने गए हैं। 'कलियुगे कलि प्रथम चरणे बुद्धावतारे' कहकर प्रत्येक धार्मिक संकल्प में हम उनका पुण्य स्मरण कर लेते हैं। भगवान ऋषभभेद का श्रीमद्भागवत में परम आदर के साथ उल्लेख हुआ है। जैन धर्म ग्रन्थों में भगवान राम और कृष्ण को तीर्थंकर नहीं तो उनसे एक श्रेणी नीचे का स्थान मिला है। अन्य हिन्दू देवी-देवताओं को भी उनके देवमण्डल में स्थान मिला है।

भारत में उद्भूत प्राय: सभी धर्म आवागमन में विश्वास करते हैं। मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा की शिक्षा हिन्दू, जैन और बौद्ध धर्मों में समान रूप से प्रतिष्ठित है। स्वास्तिक चिह्न और ओंकार मन्त्र हिंदुओं और जैनों में समान रूप से मान्य हैं। कमल और हाथी तथा अश्वत्थ वृक्ष (पीपल) बौद्धों और हिंदुओं में एक रूप से पूजनीय माने जाते हैं। जैनों के अणुव्रत, हिंदूधर्म के योगशास्त्र के 'यम' और बौद्धों के पंचशील प्राय: एक ही हैं। पारसियों और हिंदुओं में अग्नि की पूजा समान रूप से होती है। जेन्दावेस्ता की गाथाओं और वैदिक ऋचाओं में भाषागत समानता है। पारसी लोग गोमांस नहीं खाते।

सिक्ख गुरुओं ने हिंदू धर्म की रक्षा में योग ही नहीं दिया वरन् उसके लिए कष्ट और अत्याचार भी सहे। उन्होंने, विशेषकर गुरु नानक और गुरु गोबिन्द सिंह जी ने, हिंदी में कविता की है। उनके धर्म-ग्रन्थों में राम-नाम की महिमा गाई गई है। गुरु गोबिन्द सिंह ने चण्डी (दुर्गादेवी) का भी स्तवन किया है। 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में कबीर आदि महात्माओं की वाणी आदर के साथ सुरक्षित है, उनका नित्य पाठ होता है। सिक्खों के गुरु लोग हमारे संतों में अग्रगण्य समझे जाते हैं और उनका आदर के साथ स्मरण किया जाता है।

मुसलमान और ईसाई धर्म एशियाई धर्म होने के कारण भारतीय धर्मों से बहुत कुछ समानता रखते हैं। यूरोप से भी पहले ईसाई धर्म को दक्षिण भारत में स्थान मिला है। कुछ लोगों का तो कहना है कि स्वयं ईसा ने भारत में शिक्षा पाई थी। 'दूसरों के प्रति वैसा ही व्यवहार करो जैसा कि तुम दूसरों से अपने प्रति चाहते हो' - ईसा-मसीह का यह कथन महाभारत के आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्' का ही पर्याय है। ईसाइयों की क्षमा और और दया बौद्ध धर्म से मिलती-जुलती है। मैं यह नहीं कहता कि किसने किससे लिया, परन्तु इन मौलिक सिद्धातों में हिन्दू, बौद्ध और ईसाई धर्मों में समानता है। रोमन कैथोलिकों की पूजा-अर्चना, धूप-दीप, व्रत-उपवास आदि हिन्दुओं के से हैं।

मुसलमान और ईसाइयों ने यहाँ की संस्कृति को प्रभावित किया है और वे यहाँ की संस्कृति से प्रभावित हुए हैं। भारतीय सूफी कवियों ने वेदांत की भावभूमि को अपनाया और उनके ग्रन्थों में हिंदू परम्पराओं, कथाओं, विचारों, देवी-देवताओं और प्रतीकों के समावेश हुए हैं। तानसेन और ताज पर हिन्दू-मुसलमान समान रूप से गर्व करते हैं। जायसी, रहीम, रसखान, रसलीन आदि अनेक मुसलमान कवियों ने अपनी वाणी से हिंदी की रसमयता बढ़ाई है। रसखान के सवैये तो सचमुच रस की खान हैं।

प्राचीनकाल में भारतीय धर्म और साहित्य ने राष्ट्रीय एकता का पाठ पढ़ाया है। सभी काव्य-ग्रंथ, चाहे वे उत्तर के हों चाहे दक्षिण के, रामायण और महाभारत को अपना प्रेरणा-स्रोत बनाते रहे हैं। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के आम्नाय और काव्य-ग्रन्थ उत्तर-दक्षिण में समान रूप से मान्य हैं। कालिदास के 'रघुवंश' और भवभूमि के 'उत्तर रामचरित' में उत्तर और दक्षिण के प्राकृतिक दृश्यों का बड़ी रसमयता के साथ वर्णन आया है।

हिन्दू-तीर्थाटन में धार्मिक भावना के साथ राष्ट्रीय भावना भी निहित है। शिवभक्त ठेठ उत्तर की गंगोत्री से जाह्नवी-जल लाकर दक्षिणी सीमा के रामेश्वरम्, महादेव का अभिषेक करते हैं। उत्तर में बदरी -केदार, दक्षिण में रामेश्वरम्, पूर्व में जगन्नाथ और पश्चिम में द्वारकापुरी के तीर्थाटन में भारत की चारों दिशाओं की पूजा हो जाती है।

भारत की सात पुरियां पवित्र और मोक्षप्रद मानी गई हैं। इनकी भी यात्रा की जाती है और प्रातः स्मरण भी किया जाता है। इनके नाम हैं – अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार),काशी, कांची, अवंतिका (उज्जयिनी), द्वारावती (द्वारका)। पूरा श्लोक इस प्रकार है :-

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवंतिका।

पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिका : ॥

स्वामी शंकराचार्य ने भारत की चारों दिशाओं में अपने मठ स्थापित किये थे। उत्तर में ज्योतिर्मठ, दक्षिण में शृंगेरी मठ, पूर्व में गोवर्धन मठ और पश्चिम में शारदामठ। ये भगवान शंकराचार्य की दिग्विजय के कीर्तिस्तम्भ ही नहीं वरन् भारत की एकता के भी परिचायक चिह्न हैं। दक्षिण के अन्य आचार्यों के सम्प्रदाय अविरोधभाव से उत्तर में फूले-फले और विकसित हुए। बंगाल के चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय ने भी मथुरा वृन्दावन में अपनी शिष्य-परम्परा स्थापित की। इन सम्प्रदायों के मंदिर बने और इनकी पूजा-अर्चना ने उत्तर प्रदेश के जीवन और साहित्य को प्रभावित किया। हिंदी साहित्य गगन के सूर्य और शशि-स्वरूप सूर और तुलसी दक्षिण के सम्प्रदायों से ही प्रभावित थे। ये सब एकता के सूत्र प्राचीन ही थे (पश्चिम की सौगात न थे), किन्तु उनकी उपेक्षा की गई।

अब भाषा का प्रश्न आता है। उत्तर भारत की प्राय: सभी भाषाएँ संस्कृत से निकलती हैं और उन सभी के शब्दों में पारिवारिक समानता है। दक्षिण की भाषाएँ भी संस्कृत से प्रभावित हुई हैं। उन्होंने भी थोड़ी-बहुत मात्रा में संस्कृत की शब्दावली ग्रहण की, किसी ने थोड़ी तो किसी ने बहुत। उर्दू को छोड़कर प्रायः सभी भाषाओं की वर्णमाला एक नहीं तो एक-सी है। केवल लिपि का भेद है। मराठी और देवनागरी की लिपि तो एक ही है। संस्कृत की परिनिष्ठित लिपि होने के कारण देवनागरी प्राय: सभी प्राँतों में पहचानी जाती है। उर्दू का लिपि-भेद होते हुए भी हिंदी के साथ भाषा में साम्य है। भाषा की ज़मीन और व्याकरण प्राय: एक से हैं। बेल-बूटे फ़ारसी-अरबी के हैं। प्रेमचन्द, अश्क, सुदर्शन आदि ने हिंदी में भी लिखा और उर्दू में भी। भारत की प्रायः सभी भाषाओं का साहित्य भगवान राम और भगवान कृष्ण की पावन गाथाओं से आप्लावित रहा है, सभी ने संतों और वीरों का स्तवन किया है, सभी भाषाओं के साहित्य ने स्वतन्त्रता की लड़ाई में योगदान किया है। भाषाओं का भेद होते हुए भी विचारों की एकध्येयता रही है।

भारत की विभिन्न भाषाओं के साहित्य का धूमिल इतिहास घुला-मिला सा प्रतीत होता है। उनके बीच कोई अभेद्य दीवार न थी, मीरा गुजराती और हिंदी में समान रूप से कवयित्री मानी जाती हैं। मीरा के गीतों से बंगाल भी प्रभावित हुआ है। भूषण की वाणी का महाराष्ट्र में भी आदर

हुआ था। संत तुकाराम आदि महाराष्ट्र-संतों ने अपनी कविता में हिंदी को भी अपनाया। विद्यापति समानरूप से हिंदी मैथिली और बंगला के कवि माने जाते हैं। कबीर, दादू आदि संतों का व्यापक प्रभाव रहा है। उन्होंने अपने एकतारे की तान में सारे भारत को बाँध दिया। तुलसी-कृत रामायण का मराठी और बंगला में भी अनुवाद हुआ। सूरदास के भजनों को प्राय: सभी प्रांतों के गवैयों ने अपनाया। बंगला के 'वंदे मातरम्' और 'जन-गण-मन' राष्ट्रीय गीत बने। वेशभूषा, रहन-सहन और शक्ल-सूरत में भेद होते हुए भी भारतवासी अपने जातीय व्यक्तित्व से पहचान लिये जाते हैं।

हमारा एक जातीय व्यक्तित्व है। वह हमारी जातीय मनोवृत्ति, जीवन-मीमांसा, रहन-सहन, रीति-रिवाज़, उठने-बैठने के ढंग, चाल-ढाल, वेश-भूषा, साहित्य,संगीत और काल में अभिव्यक्त होता है। विदेशी प्रभाव पड़ने पर भी वह बहुत अंशों में अक्षुण्ण बना हुआ है, वही हमारी एकता का मूल सूत्र है।

शब्दार्थ

समायोजन	=	संयोजन, संगठन
उर्वरा	=	उपजाऊ
शस्य-श्यामला	=	धन-धान्य से परिपूर्ण
अबाधित	=	बिना बाधा (रुकावट) के, निरन्तर
तीर्थंकर	=	जैनियों के आराध्य 24 श्लाघापुरुष
आवागमन	=	जीवात्मा का बार बार जन्म लेना,
मुदिता	=	प्रसन्नता, चित की वह दशा, जिसमें दूसरे का सुख देखकर सुख होता है।
स्वस्तिक चिह्न	=	मंगलकारी चिह्न
यम	=	अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह (आवश्यकता से अधिक संग्रह न करना) यम कहलाते हैं।
अणुव्रत	=	अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को ही जैन धर्म में पंच महाव्रत या अणुव्रत कहा गया है।

पंचशील	=	हिंसा न करना, चोरी न करना, काम और मिथ्याचार से बचना, झूठ से बचना, नशीली वस्तुओं और आलस्य से बचना।
जेन्दावेस्ता	=	पारसियों का धर्मग्रन्थ,
वैदिक ऋचाएँ	=	वेदों में संकलित देव-स्तुतियाँ
आम्नाय	=	धर्म शास्त्रीय ग्रंथ
एकध्येयता	=	लक्ष्य की एकता

अभ्यास

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दें :-

1. भारत में जाति, भाषा और धर्मगत विभिन्नता होते हुए भी सांस्कृतिक एकता किस प्रकार बनी हुई है ? निबंध के आधार पर उत्तर दें।
2. 'भारत की सांस्कृतिक एकता' निबंध का सार लिखें।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. विरोधी लोग भारत को उप-महाद्वीप क्यों कहते हैं ?
2. 'समाज में भेद और अभेद दोनों हैं' लेखक के इस कथन का क्या अभिप्राय है?
3. पंचशील से क्या अभिप्राय है ?
4. धर्म और संस्कृति को लेखक ने हृदय के निकट स्वीकार किया है। निबंध के आधार पर उत्तर दें।
5. भारत की सांस्कृतिक एकता में सिक्ख गुरुओं का क्या योगदान है ?
6. मुसलमान और ईसाई धर्म की भारतीय धर्मों से क्या समानता है ?
7. हिंदू तीर्थाटन में राष्ट्रीय भावना कैसे निहित है ?
8. भाषागत समानता से आप क्या समझते हो ?

******

16. स्वामी विवेकानन्द

(जन्म सन् 1863 - निधन सन् 1902 ई०)

स्वामी विवेकानन्द का जन्म कलकत्ता के एक संभ्रांत परिवार में हुआ था। उनके पिता कलकत्ता उच्च न्यायालय में वकालत करते थे। उनकी माता सुशिक्षित थी और हिंदू धर्म की मान्यताओं में आस्था रखती थी। विद्यार्थी जीवन में विवेकानन्द प्रतिभाशाली छात्र एवं ओजस्वी वक्ता के रूप में जाने जाते थे। उन्होंने अपनी विलक्षण बुद्धि से अल्पायु में ही धर्म, दर्शन, पुराण, उपनिषद्, विज्ञान आदि का गंभीर अध्ययन किया और उनमें पारंगत हो गये। वे बंगाल के महान् संत रामकृष्ण परमहंस के सम्पर्क में आये और उनके अत्यन्त प्रिय शिष्य बन गये। इसके बाद नरेन्द्रनाथ नाम का यह युवक स्वामी विवेकानन्द बन गया।

विवेकानन्द नैतिक-आध्यात्मिक मानवतावाद के प्रचारक थे। उन्होंने घोषणा की, ''मैं उन सभी धर्मों को स्वीकार करता हूँ जो पहले से चले आ रहे हैं।''उन्होंने अपने संदेश का प्रचार करने के लिए भारत, यूरोप तथा अमरीका की यात्राएं कीं।1893 ई० में वे शिकागो विश्वधर्म सम्मेलन में भाग लेने अमरीका गये, जहाँ उन्होंने हिंदू धर्म को सही और तर्कपूर्ण व्याख्या कर सभी श्रोताओं को प्रभावित किया। सन् 1897 में उन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। विवेकानन्द ने आध्यात्मिक क्षेत्र में भारत और पश्चिम को एक सूत्र में जोड़ने का काम किया। उन्होंने 1899 में अमरीका की व्यापक यात्राएं कर अपने संदेश का प्रचार करने के लिए वेदान्त केन्द्रों की स्थापना की और अनुयायी बनाये। 39 वर्ष की आयु में विवेकानन्द का देहान्त हो गया। उन्होंने वेदान्त की मानवतावादी व्याख्या कर मानवतावाद का प्रचार किया। उन्होंने विभिन्न धर्मों में समन्वय कर सद्भाव स्थापित किया तथा मानव सेवा को ईश्वर सेवा समझा। वे आधुनिक युग में भारत के नवजागरण के प्रेरणा स्रोत और प्रकाश स्तंभ थे।

पाठ परिचय

प्रस्तुत निबन्ध स्वामी विवेकानन्द जी के व्याख्यान का अंश है। स्वामी विवेकानन्द जी ने यहाँ देश के नवयुवकों को सम्बोधित किया है। लेखक के अनुसार राष्ट्र के नवनिर्माण में नवयुवकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वर्तमान में राष्ट्र को शारीरिक दृष्टि से मज़बूत, निर्भय एवं ऐसे नवयुवकों की आवश्यकता है जो सद्चरित्र हों और अपनी शक्ति में विश्वास रखते हों। विवेकानन्द जी के अनुसार नास्तिक वह है जो अपने आप में विश्वास नहीं करता। भारत के राष्ट्रीय आदर्श हैं -

त्याग और सेवा, जिन्हें अपनाकर गरीबों, भूखों और पीड़ितों की सेवा की जा सकती है। राष्ट्रभक्ति का आधार है प्रेम और विवेक – अर्थात् विवेकपूर्ण कार्य करते हुए भेदभाव से ऊपर उठकर हरेक मनुष्य से प्रेम करना। शिक्षा के विषय में स्वामी जी का कहना है कि शिक्षा विविध जानकारियों का ढेर नहीं जो मस्तिष्क में ठूँस दिया जाए, अपितु उन विचारों की अनूभूति है जो जीवन निर्माण, मनुष्य निर्माण एवं चरित्र निर्माण में सहायक हों। प्रस्तुत निबंध संबोधन शैली में है – भाषा में तत्सम शब्द हैं, लेकिन प्रवाहमयता का गुण विद्‌यमान है। विवेकानन्द के उपदेश का सूत्र वाक्य है – ''उठो, जागो और तब तक रुकों नहीं जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाए।'' इस प्रकार यह निबंध मानवीय मूल्यों की आस्था पर आधारित है। 'युवाओं से' सम्बोधन दिखाता है कि निबंध नवयुवकों को समर्पित है, जिन्हें नवभारत का निर्माण करना है। लेखक को युवकों से बहुत बड़ी आशा है।

युवाओं से

मेरी आशा, मेरा विश्वास नवीन पीढ़ी के नवयुवकों पर है। उन्हीं में से मैं अपने कार्यकर्त्ताओं का संग्रह करूँगा। वे एक केंद्र से दूसरे केंद्र का विस्तार करेंगे–और इस प्रकार हम धीरे-धीरे समग्र भारत में फैल जायेंगे। भारतवर्ष का पुनरुत्थान होगा, पर वह शारीरिक शक्ति से नहीं, वरन् आत्मा की शक्ति द्‌वारा। वह उत्थान विनाश की ध्वजा लेकर नहीं, वरन् शांति और प्रेम की ध्वजा से होगा।

भारत के राष्ट्रीय आदर्श हैं – त्याग और सेवा। आप इन धाराओं में तीव्रता उत्पन्न कीजिए और शेष सब अपने आप ठीक हो जायेगा। तुम काम में लग जाओ, फिर देखोगे इतनी शक्ति आयेगी कि तुम उसे संभाल न सकोगे। दूसरों के लिए रत्ती भर सोचने, काम करने से भीतर की शक्ति जाग उठती है। दूसरों के लिए रत्ती-भर सोचने से धीरे-धीरे हृदय में सिंह जैसे बल आ जाता है। तुम लोगों से मैं इतना स्नेह करता हूँ, परन्तु यदि तुम लोग दूसरों के लिए परिश्रम करते-करते मर भी जाओ तो भी यह देखकर मुझे प्रसन्नता ही होगी।

केवल वही व्यक्ति सबकी सेवा उत्तम रूप से कर सकता है, जो पूर्णतयः निःस्वार्थी है, जिसे न तो धन की लालसा है, न कीर्ति की और न किसी अन्य वस्तु की ही। मनुष्य जब ऐसा करने में समर्थ हो जायेगा, तो वह भी एक बुद्‌ध बन जायेगा और उसके भीतर से ऐसी शक्ति प्रकट होगी, जो संसार की अवस्था को सम्पूर्ण रूप से परिवर्तित कर सकती है।

हमेशा बढ़ते चलो ! मरते दम तक गरीबों और पददलितों के लिए सहानुभूति–यही हमारा आदर्श वाक्य है। वीर युवको! बढ़े चलो ! ईश्वर के प्रति आस्था रखो, दुखियों का दर्द समझो और ईश्वर से सहायता की प्रार्थना करो। वह अवश्य मिलेगी।

तुम लोग ईश्वर की संतान हो, अमर आनंद के भागी हो, पवित्र और पूर्ण आत्मा हो। अतएव तुम कैसे अपने को ज़बरदस्ती दुर्बल कहते हो ? उठो, साहसी बनो, वीर्यवान होओ। सब उत्तरदायित्व अपने कंधे पर लो – यह याद रखो कि तुम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हो। तुम जो कुछ बल या सहायता चाहो, सब तुम्हारे ही भीतर विद्यमान है।

एक बात पर विचार करके देखिए, मनुष्य नियमों को बनाता है या नियम मनुष्य को बनाते हैं? मनुष्य रुपया पैदा करता है या रुपया मनुष्य को पैदा करता है ? मनुष्य कीर्ति और नाम पैदा करता है या कीर्ति और नाम मनुष्य पैदा करते हैं ? मेरे मित्रो, पहले मनुष्य बनिए, तब आप देखेंगे कि वे सब बाकी चीज़ें स्वयं आपका अनुसरण करेंगी। परस्पर के घृणित द्वेषभाव को छोड़िए.... और सुद्देश्य, सदुपाय एवं सत्साहस का अवलम्बन कीजिए। आपने मनुष्य जाति में जन्म लिया है, तो अपनी कीर्ति यहीं छोड़ जाइए।

हमें केवल मनुष्य की आवश्यकता है और सब कुछ हो जायेगा, किन्तु आवश्यकता है वीर्यवान, तेजस्वी, श्रद्धासंपन्न और अन्त तक कपट रहित नवयुवकों की। इस प्रकार के सौ नवयुवकों से संसार के सभी भाव बदल दिये जा सकते हैं। और सब चीज़ों की अपेक्षा इच्छा शक्ति का अधिक प्रभाव है। इच्छा शक्ति के सामने और सब शक्तियाँ दब जायेगी, क्योंकि इच्छा शक्ति साक्षात् ईश्वर से निकलकर आती है। विशुद्ध और दृढ़ इच्छा शक्ति सर्वशक्तिमान है।

मैंने तो नवयुवकों का संगठन करने के लिए जन्म लिया है। यही क्या, प्रत्येक नगर में वे मेरे साथ सम्मिलित होने को तैयार हैं और मैं चाहता हूँ कि इन्हें अप्रतिहत गतिशील तरंगों की भाँति भारत में सब ओर भेजूँ, जो दीन-हीनों एवं पददलितों के द्वार पर-सुख, नैतिकता, धर्म एवं शिक्षा उड़ेल दें और इसे मैं करूँगा या मरूँगा।

मैं सुधार में विश्वास नहीं करता, मैं विश्वास करता हूँ स्वाभाविक उन्नति में। मैं अपने ईश्वर के स्थान पर प्रतिष्ठित कर अपने समाज के लोगों के सिर पर यह उपदेश, ''तुम्हें इस भाँति चलना होगा, दूसरे प्रकार नहीं'' मढ़ने का साहस नहीं कर सकता। मैं तो सिर्फ उस गिलहरी की भाँति होना चाहता हूँ जो श्री रामचंद्र जी के पुल बनाने के समय थोड़ा बालू देकर अपना भाग पूरा कर संतुष्ट हो गयी थी। यही मेरा भी भाव है।

लोग स्वदेश भक्ति की चर्चा करते हैं। मैं स्वदेश-भक्ति में विश्वास करता हूँ। पर स्वेदश-भक्ति के संबंध में मेरा एक आदर्श है। बड़े काम करने के लिए तीनों चीज़ों की आवश्यकता होती है। बुद्धि और विचार शक्ति हम लोगों की थोड़ी सहायता कर सकती है। वह हमको

थोड़ी दूर अग्रसर करा देती है। और वहीं ठहर जाती है। किंतु हृदय के द्वारा ही महाशक्ति की प्रेरणा होती है। प्रेम असंभव को संभव कर देता है।जगत के सब रहस्यों का द्वार प्रेम ही है। अत: मेरे भावी देशभक्तो, तुम हृदयवान बनो। क्या तुम हृदय से समझते हो कि देव और ऋषियों की करोड़ों संतान पशुतुल्य हो गयी है ? क्या हृदय में अनुभव करते हो कि करोड़ों आदमी आज भूखे मर रहे हैं और वे कई शताब्दियों से इस भाँति भूखे मरते आ रहे हैं? क्या तुम समझते हो कि अज्ञात के काले बादल ने सारे भारत को आच्छन्न कर लिया है। क्या तुम यह सब समझकर कभी अस्थिर हुए हो ? क्या तुम कभी इससे अनिद्रित हुए हो ? क्या वह तुम्हारे हृदय के स्पन्दन से कभी मिली है। क्या उसने कभी तुम्हें पागल बनाया है? क्या कभी तुम्हें निर्धनता और नाश का ध्यान आया है ? क्या तुम अपने नाम, यश, सम्पत्ति यहाँ तक कि अपने शरीर को भी भूल गये हो ? क्या तुम ऐसे हो गये हो ? यदि हो, तो जानो कि तुमने स्वदेश भक्ति की प्रथम सीढ़ी पर पैर रखा है।

उठो जागो, स्वयं जागकर औरों को जगाओ। अपने नर-जन्म को सफल करो। ''उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधित-उठो, जागो और तब तक रुको नहीं, जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाय।''

जो अपने आप में विश्वास नहीं करता, वह नास्तिक है। प्राचीन धर्मों ने कहा है, वह नास्तिक है जो ईश्वर में विश्वास नहीं करता। नया धर्म कहता है, वह नास्तिक है जो अपने आप में विश्वास नहीं करता।

यह एक बड़ी सच्चाई है; शक्ति ही जीवन और कमज़ोरी ही मृत्यु है। शक्ति परम सुख है, जीवन अजर-अमर है, कमज़ोरी कभी न हटने वाला बोझ और यंत्रणा है ; कमज़ोरी ही मृत्यु है।

सबसे पहले हमारे तरुणों को मज़बूत बनना चाहिए। धर्म इसके बाद की वस्तु है। तरुण मित्रो शक्तिशाली बनो, तुम्हें यही सलाह है। तुम गीता के अध्ययन की अपेक्षा फुटबॉल के द्वारा ही स्वर्ग के अधिक समीप पहुँच सकोगे। ये कुछ कड़े शब्द हैं, पर मैं उन्हें कहना चाहता हूँ क्योंकि तुम्हें प्यार करता हूँ। मैं जानता हूँ कि काँटा कहाँ चुभता है ? मुझे इसका कुछ अनुभव है। तुम्हारे स्नायु और माँसपेशियाँ अधिक मज़बूत होने पर तुम गीता अधिक अच्छी तरह समझ सकोगे। तुम अपने शरीर में शक्तिशाली रक्त प्रवाहित होने पर, श्रीकृष्ण के तेजस्वी गुणों और उनकी अपार शक्ति को अधिक समझ सकोगे। जब तुम्हारा शरीर मज़बूती से तुम्हारे पैरों पर

खड़ा रहेगा और तुम अपने को 'मनुष्य' अनुभव करोगे, तब तुम उपनिषद् और आत्मा की महानता को अधिक समझ सकोगे।

मैं अभी तक के धर्मों को स्वीकार करता हूँ और उन सबकी पूजा करता हूँ। मैं उनमें से प्रत्येक के साथ ईश्वर की उपासना करता हूँ, वे स्वयं चाहे किसी भी रूप में उपासना करते हों। मैं मुसलमानों की मस्जिद में जाऊँगा, मैं ईसाइयों के गिरिजा में क्रॉस के सामने घुटने टेककर प्रार्थना करूँगा, मैं बौद्ध-मंदिरों में जाकर बौद्ध और उनकी शिक्षा की शरण लूँगा। मैं जंगल में जाकर हिंदुओं के साथ ध्यान करूँगा, जो हृदयस्थ ज्योति स्वरूप परमात्मा को प्रत्यक्ष करने में लगे हुए हैं।

शिक्षा विविध जानकारियों का ढेर नहीं है, जो तुम्हारे मस्तिष्क में ठूँस दिया जाता है और जो आत्मसात् हुए बिना यहाँ आजन्म पड़ा रहकर गड़बड़ मचाया करता है। हमें उन विचारों की अनुभूति कर लेने की आवश्यकता है, जो जीवन-निर्माण मनुष्य-निर्माण तथा चरित्र-निर्माण में सहायक हों। यदि आप केवल पाँच ही परखे विचार आत्मसात् कर उनके अनुसार अपने जीवन और चरित्र का निर्माण कर सकते हैं, तो आप पूरे संग्रहालय को कंठस्थ करने वाले की अपेक्षा अधिक शिक्षित होंगे।

अपने भाइयों का नेतृत्व करने का नहीं, वरन् उनकी सेवा करने का प्रयत्न करो। नेता बनने की इस क्रूर उन्मत्तता ने बड़े-बड़े जहाज़ों को इस जीवनरूपी समुद्र में डुबो दिया है।

मैं तुम सबसे यही चाहता हूँ कि तुम आत्म-प्रतिष्ठा, दलबंदी और ईर्ष्या को सदा के लिए छोड़ दो। तुम्हें पृथ्वी-माता की तरह सहनशील होना चाहिए। यदि तुम ये गुण प्राप्त कर सको, तो संसार तुम्हारे पैरों पर लोटेगा।

शब्दार्थ

पुनरुत्थान	= फिर से विकास या उत्थान	आत्मसात	= अपने पक्ष में मिला लेना
आच्छन्न	= ढका हुआ	अप्रतिहत	= जिसे कोई टोकने वाला न हो
उन्मत्तता	= एक प्रकार की सनक		
स्पन्दन	= धड़कन		

अभ्यास

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दें :-

1. स्वामी विवेकानन्द ने देश के नवयुवकों को कौन-कौन से गुण विकसित करने के लिए प्रेरित किया है ?
2. भारतवर्ष के राष्ट्रीय आदर्श कौन-कौन से हैं। स्वामी जी ने उन आदर्शों की क्या व्याख्या की है ?
3. स्वदेश भक्ति का स्वामी जी ने क्या अर्थ स्पष्ट किया है ?
4. 'युवाओं से' निबंध का शीर्षक कहाँ तक सार्थक है? स्पष्ट करें।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. स्वामी विवेकानन्द किस प्रकार का संगठन करना अपना ध्येय मानते थे ?
2. उठो, जागो और तब तक रुको नहीं जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाये,' स्वामी जी के इस उद्बोधन का भाव समझायें।
3. नास्तिक व्यक्ति की स्वामी जी ने क्या व्याख्या की है ?
4. स्वामी जी ने नवयुवकों को शारीरिक दृष्टि से मज़बूत बनने की सलाह क्यों दी है?
5. धर्म के संबंध में स्वामी जी के क्या विचार थे ?
6. किस प्रकार की शिक्षा जीवन और चरित्र का निर्माण कर सकती है? स्पष्ट करें।

*****

17. महादेवी वर्मा

(जन्म 1907 - निधन 1987)

आधुनिक हिंदी कविता के विकास में छायावादी कवियों में महादेवी वर्मा एक चर्चित कवयित्री हैं। इन्होंने कविता के साथ ही गद्य की अनेक विधाओं में लिखा है। इनके संस्मरण, रेखाचित्रों के साथ निबंधों की चर्चा विशेष की जाती है।

इनका जन्म फर्रूखाबाद (उत्तर प्रदेश) में 1907 ई. में होली के दिन हुआ। इनकी प्रारंभिक शिक्षा मिशन स्कूल इंदौर में हुई। ये केवल नौ वर्ष की थी कि इनका विवाह हो गया, पर विवाह के बाद भी इनका अध्ययन चलता रहा। सन् 1929 ई. में इन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा लेकर भिक्षुणी बनना चाहा, किन्तु वैसा न करके महात्मा गाँधी के सम्पर्क में आने पर वे समाज सेवा की ओर उन्मुख हो गई। सन् 1932 में इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की और नारी समाज में शिक्षा-प्रसार के उद्देश्य से प्रयाग महिला विद्या पीठ की स्थापना करके उसकी प्रधानाचार्य के रूप में कार्य करने लगीं। इन्होंने 'चाँद' पत्रिका का कुछ समय तक सम्पादन किया।

महादेवी का कर्मक्षेत्र बहुमुखी रहा है। इन्हें सन् 1952 में उत्तर प्रदेश की विधान परिषद् का सदस्य मनोनीत किया गया। 1954 में वे साहित्य अकादमी दिल्ली की संस्थापक सदस्या बनीं और 1960 ई. में इन्हें प्रयाग महिला विद्यापीठ का कुलपति बनाया गया। इनके व्यापक शैक्षिक, साहित्यिक एवं सामाजिक कार्यों के लिए भारत सरकार ने सन् 1956 में इन्हें पद्म भूषण अलंकरण से सम्मानित किया। विक्रम, कुमायूँ तथा दिल्ली विश्वविद्यालय ने इन्हें डी. लिट्. की मानद् उपाधि से विभूषित किया। सन् 1983 में 'यामा' और 'दीपशिखा' पर इन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया और फिर उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान ने भी भारती नाम से स्थापित हिन्दी के सर्वोत्तम पुरस्कार से सम्मानित किया। साहित्य, दर्शन, संगीत, चित्रकला, प्रकृति एवं पशु-पक्षियों में महादेवी की गहरी रुचि रही है। इनकी रचनाओं में रुचि वैचित्र्य को सर्वत्र लक्षित किया जा सकता है। इनके निबंध 'शृंखला की कड़िया', 'क्षणदा', 'संकल्पिता' तथा 'भारतीय संस्कृति के स्वर' में संकलित हैं। अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएं, पथ के साथी' और 'मेरा परिवार' इनके संस्मरणात्मक रेखाचित्रों के संकलन हैं। कविता और गद्य पर इनका समान रूप से अधिकार देख सकते हैं। महादेवी की गद्य शैली सहज एवं प्रवाह पूर्ण है।

तत्सम शब्दों की प्रधानता होने पर इनकी भाषा कहीं-कहीं कठिन होते हुए भी, समझ में आ जाती है। इनकी शैली को दो स्पष्ट रूपों विचारात्मक एवं भावनात्मक में बांटा जा सकता है। सटीक वर्णन, प्रभावशाली बिम्ब योजना एवं चित्रात्मकता इनकी शैली की अनेक विशेषताएं हैं। भाषण-शैली में लिखित निबंधों में महादेवी जी के भारतीय संस्कृति के स्वर विशेष देखे जा सकते हैं।

कुछ निबंधों में शिक्षा और विद्या का सूक्ष्म अंतर बताते हुए लेखिका ने भारत भूमि की प्राचीन उज्ज्वल परम्पराओं की ओर विद्यार्थियों का ध्यान आकृष्ट किया है। नारी-स्वतंत्रता की बात इनके कुछ निबंधों में प्रभावशाली ढंग से की गई है। इनके कुछ निबंध समाज की सही पहचान कराते हैं। इनमें नारी - जागरण पर विशेष बल दिया गया है।

पाठ परिचय

महादेवी वर्मा का प्रस्तुत निबन्ध 'स्त्री के अर्थ स्वातन्त्र्य का प्रश्न' मनुष्य के सामाजिक विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देते हुए नारी की वास्तविक स्थिति का प्रभावपूर्ण भाषा में वर्णन करता है। समाज की सब व्यवस्थाओं में नारी और पुरुष के अधिकारों में एक विचित्र विषमता रही है। लेखिका के अनुसार यह एक कटु सत्य है कि सारी सामाजिक, राजनैतिक व अन्य सुविधाओं की रूप रेखा शक्ति अनुसार ही निर्धारित होती रही है और सबल की सुविधानुसार ही परिवर्तित व संशोधित होती रही है। युग आए - युग चले गए - सभ्यता में अनेक परिवर्तन हुए लेकिन आर्थिक दृष्टि से नारी आज भी बहुत कुछ उसी हीन व दुर्बल स्थिति में पड़ी है - जिसमें प्राचीन काल में भी थी। लेखिका के अनुसार पुरुष केन्द्रित समाज में सत्ता व सुविधा का ध्रुवीकरण भी पुरुष की तरफ हुआ और नारी उपेक्षिता रही - परावलम्बित रही।

लेखिका की भाषा संस्कृत निष्ठ है। शैली प्रभावपूर्ण, चित्रात्मक तथा काव्यमय है।

स्त्री के अर्थ स्वातन्त्र्य का प्रश्न

अर्थ सदा से शक्ति का अंध अनुगामी रहा है। जो अधिक सबल था उसने सुख के साधनों का प्रथम अधिकारी अपने आपको माना और अपनी इच्छा और सुविधा के अनुसार ही धन का विभाजन करना कर्त्तव्य समझा। यह सत्य है कि समाज की स्थिति के उपरान्त उसके विकास के लिए प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे वह सबल रहा, चाहे निर्बल, मेधावी था, चाहे मंदबुद्धि सुख के नहीं तो जीवन-निर्वाह के साधन देना आवश्यक - सा हो गया, परन्तु यह आवश्यकता भी शक्ति

की पक्ष–पातिनी ही रही। सबल ने दुर्बलों को उसी मात्रा में निर्वाह की सुविधाएं देना स्वीकार किया, जिस मात्रा में वे उसके लिए उपयोगी सिद्ध हो सकीं। इस प्रकार समाज की व्यवस्था में भी यह साम्य न आ सका जो सबके व्यक्तित्व को किसी एक तुला पर तोलता।

सारी राजनीतिक, सामाजिक तथा अन्य व्यवस्थाओं की रूप–रेखा शक्ति द्वारा ही निर्धारित होती रही और सबल की सुविधानुसार ही परिवर्तित और संशोधित होती गई, इसी से दुर्बल को वही स्वीकार करना पड़ा जो सुगमतापूर्वक मिल गया। वही स्वाभाविक भी था।

आदिम युग से सभ्यता के विकास तक स्त्री सुख के साधनों में गिनी जाती रही। उसके लिए परस्पर संघर्ष हुए, प्रतिद्वंद्विता चली, महाभारत रचे गए और उसे चाहे इच्छा से हो और चाहे अनिच्छा से, उसी पुरुष का अनुगमन करना पड़ता रहा जो विजयी प्रमाणित हो सका। पुरुष ने उसके अधिकार अपने सुख की तुलना पर तोले, उसकी विशेषता पर नहीं। अत: समाज की सब व्यवस्थाओं में उसके और पुरुष के अधिकारों में एक विचित्र विषमता मिलती है। जहाँ तक सामाजिक प्राणी का प्रश्न है, स्त्री पुरुष के समान ही सामाजिक सुविधाओं की अधिकारिणी है, परन्तु केवल अधिकार की दुहाई ही तो सबल निर्बल का चिरन्तर संघर्ष और उससे उत्पन्न विषमता नहीं मिटा सकती।

एक ओर सामाजिक व्यवस्थाओं ने स्त्री को अधिकार देने में पुरुष की सुविधा का विशेष ध्यान रखा है, दूसरी ओर उसकी आर्थिक स्थिति भी परावलम्बन से रहित नहीं रही। भारतीय स्त्री के संबंध में पुरुष का भर्त्ता नाम जितना यथार्थ है, उतना सम्भवत: और कोई नाम नहीं। पुत्री, पत्नी, माता और सभी रूपों में स्त्री आर्थिक दृष्टि से कितनी परमुखापेक्षिणी रहती है, यह कौन नहीं जानता? इस आर्थिक विषमता के पक्ष और विपक्ष दोनों ही में कुछ जा सकता है और कहा जाता रहा है।

आर्थिक दृष्टि से स्त्री की जो स्थिति प्राचीन समाज में थी, उसमें अब तक परिवर्तन नहीं हो सका, यह विचित्र सत्य है।

वेदकालीन समाज में पुरुष ने नवीन देश में फैलने के लिए सन्तान की आवश्यकता के कारण और अनाचार को रोकने के लिए विवाह को बहुत महत्व दिया और संतान की जन्मदात्री होने के कारण स्त्री भी अपूर्व गरिमामयी हो उठी। उसे यज्ञ जैसे धर्म–कार्यों में पति का साथ देने के लिए सहधर्मिणीत्व और गृह की व्यवस्था के लिए गृहणीत्व का श्लाघ्य पद भी प्राप्त हुआ, परन्तु धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से उन्नत होने पर भी आर्थिक दृष्टि से वह नितान्त परतंत्र ही रही।

गृह और संतान के लिए द्रव्य–उपार्जन पुरुष का कर्त्तव्य था, अत: धन स्व–भावत: उसी के अधिकार में रहा। गृहिणी गृहपति की आय के अनुसार व्यय कर गृह का प्रबन्ध और सन्तान–पालन आदि कार्य करने की अधिकारिणी मात्र थी।

प्राचीन समाज में पुरुष से भिन्न स्त्री की स्थिति स्पृहणीय मानी ही नहीं गई, इसके पर्याप्त उदाहरण उस समय की सामाजिक व्यवस्था में मिल सकेंगे। प्रत्येक कुमारिका वयस्क होने पर गृहस्थ धर्म में दीक्षित होकर पति के गृह चली जाती थी और फिर पुत्रों के समर्थ होने पर वानप्रस्थ आश्रम में पति की अनुगामिनी बनती थी। पुत्र पिता की समस्त सम्पत्ति का अधिकारी होता था, परन्तु कन्या को विवाह के अवसर पर प्राप्त होने वाले यौतुक के अतिरिक्त और कुछ देने की आवश्यकता ही नहीं समझी गई। जिन कुमारिकाओं ने गृह–धर्म स्वीकार नहीं किया, उन्हें तपस्विनी के समान अध्ययन में जीवन व्यतीत करने की स्वतन्त्रता थी, परन्तु उस स्थिति में गृहस्थ के समान ऐश्वर्य भोग ध्येय नहीं रहता था।

स्त्री को इस प्रकार पिता की सम्पत्ति से वंचित करने में क्या उद्देश्य रहा, यह कहना कठिन है। यह भी संभव है कि स्त्री के निकट वैवाहिक जीवन को अनिवार्य रखने के लिए ऐसी व्यवस्था की गई हो और यह भी हो सकता है कि पुरुष ने इस संघर्षमय जीवन में इस विचार की ओर ध्यान देने का अवकाश ही न पाया हो। कन्या को पिता की सम्पत्ति में स्थान देने पर एक कठिनाई और भी उत्पन्न हो सकती थी। कभी युवतियाँ स्वयंवरा होती थीं और कभी विवाह के लिए बलात् छीनी भी जा सकती थीं। ऐसी दशा में पैतृक सम्पत्ति में उनके उत्तराधिकारी होने पर अन्य परिवारों के व्यक्तियों का प्रवेश भी वंश–परम्परा को अव्यवस्थित कर सकता था। चाहे जिस कारण से हो, परन्तु इस विधान ने पिता के गृह में कन्या की स्थिति को बहुत गिरा दिया, इसमें सन्देह नहीं। विधवा भी पुनर्विवाह के लिए स्वतन्त्र थी, अतएव उसके जीवन –निर्वाह के लिए विशेष प्रबन्ध की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

प्राचीन समाज का ध्यान अपनी वृद्धि की ओर अधिक होने के कारण उसने स्त्री के मातृत्व का विशेष आदर किया, यह सत्य है, परन्तु सामाजिक व्यक्ति के रूप में उसके विशेष अधिकारों का मूल्य आँकना सम्भव न हो सका। उसके निकट स्त्री पुरुष की संगिनी होने के कारण ही उपयोगी थी, उससे भिन्न उसका अस्तित्व चिन्ता करने योग्य ही नहीं रहता था। अपनी सम्पूर्ण सुविधाओं और समस्त सुखों के लिए स्त्री का पुरुष पर निर्भर रहना ही अधिक स्वाभाविक था, अत: समाज ने किसी ऐसी स्थिति की कल्पना ही नहीं की, जिसमें स्त्री पुरुष से बिना सहायता माँगे हुए ही जीवन पथ पर आगे बढ़ सके। पिता, पति, पुत्र तथा अन्य सम्बन्धियों के रूप में पुरुष स्त्री का सदा ही भरण–पोषण कर सकता था। इसलिए उसकी आर्थिक स्थिति पर विचार करने की किसी ने आवश्यकता ही न समझी। स्त्री के प्रति समाज की यह धारणा इतनी पुरानी हो गई

है कि अब अस्वाभाविकता और अनौचित्य को हम एक प्रकार भूल ही गए है। अन्यथा ऐसी स्थिति बहुत काल तक न ठहर सकती।

आरम्भ में प्राय: सभी देशों के समाज ने स्त्री को कुछ स्पृहणीय स्थान नहीं दिया, परन्तु सभ्यता के विकास के साथ-साथ स्त्री की स्थिति में भी परिवर्तन होता गया। वास्तव में स्त्री की स्थिति समाज का विकास नापने का मापदंड कही जा सकती है। नितान्त बर्बर समाज में स्त्री पर पुरुष वैसा ही अधिकार रखता है, जैसा वह अपनी अन्य स्थावर सम्पत्ति पर रखने को स्वतन्त्र है। उसके विपरीत पूर्ण विकसित समाज में स्त्री पुरुष की सहयोगिनी तथा समाज का आवश्यक अंग मानी जाकर माता तथा पत्नी के महिमामय आसन पर आसीन रहती है।

भारतीय स्त्री की स्थिति में आदिम-युग की स्त्री की परवशता और पूर्ण विकसित समाज के नारीत्व की गरिमा का विचित्र सम्मिश्रण है। उसके प्रति समाज की श्रद्धा की मात्रा पर विचार पर कोई उसे पूर्ण संस्कृत समाज का अंग ही समझ सकता है, परन्तु उसके जीवन का व्यावहारिक रूप एक दूसरी की करुण गाथा सुनाता है। सम्भवत: उस धर्मप्राण युग ने स्त्री को धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टि से उन्नत स्थान देकर ही अपने कर्तव्य की इति समझ ली, उसकी व्यावहारिक कठिनाइयों की ओर उसका ध्यान ही नहीं जा सका। मातृत्व की गरिमा से गुरु और पत्नीत्व के सौभाग्य से ऐश्वर्यशालिनी होकर भी भारतीय नारी अपने व्यावहारिक जीवन में सबसे अधिक क्षुद्र और रंक कैसे रह सकी, यही आश्चर्य है। समाज ने उसे पुरुष की सहायता पर इतना निर्भर कर दिया कि उसके सारे त्याग, सारा स्नेह और सम्पूर्ण आत्म-समर्पण बंदी के विवश कर्तव्य के समान जान पड़ने लगे।

शताब्दियाँ की शताब्दियाँ आती-जाती रहीं, परन्तु स्त्री की स्थिति की एकरसता में कोई परिवर्तन नहीं हो सका। किसी भी स्मृतिकार ने उसके जीवन की विषमता पर ध्यान देने का अवकाश नहीं पाया, किसी भी शास्त्रकार ने पुरुष से भिन्न करके उसकी समस्या को नहीं देखा।

अर्थ सामाजिक प्राणी के जीवन में कितना महत्व रखता है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। इस की उच्छृंखल बहुलता में जितने दोष हैं वे अस्वीकार नहीं किए जा सकते, परन्तु इसके नितान्त अभाव में जो अभिशाप हैं वे भी उपेक्षणीय नहीं। विवश आर्थिक पराधीनता अज्ञात रूप में व्यक्ति के मानसिक तथा अन्य विकास पर ऐसा प्रभाव डालती रहती है, जो सूक्ष्म होने पर भी व्यापक तथा परिणामत: आत्मविश्वास के लिए विष के समान है। दीर्घ काल का दासत्व जैसे जीवन की स्फूर्तिमयी स्वच्छन्दता नष्ट करके उसे बोझिल बना देता है, निरन्तर आर्थिक परवशता भी जीवन में उसी प्रकार प्रेरणा-शून्यता उत्पन्न कर देती है। किसी भी सामाजिक प्राणी के लिए ऐसी स्थिति अभिशाप है जिसमें वह स्वावलम्बन का भाव भूलने लगे, क्योंकि इसके अभाव में वह अपने सामाजिक व्यक्तित्व की रक्षा नहीं कर सकता।

समाज में पूर्ण स्वतंत्र तो कोई हो ही नहीं सकता, क्योंकि सापेक्षता ही सामाजिक संबंध का मूल है। प्रत्येक व्यक्ति उसी मात्रा में दूसरे पर निर्भर है, जिस मात्रा में दूसरा उसकी अपेक्षा रखता है। पुरुष स्त्री भी इसी अर्थ में अपने विकास के लिए एक दूसरे के सहयोग की अपेक्षा रखते हैं, इसमें संदेह नहीं। कठिनाइयाँ तब तक उत्पन्न होती हैं जब यह सापेक्ष भाव एक की ओर अधिक घट या बढ़ जाता है। स्त्री और पुरुष यदि अपने सुखों के लिए एक दूसरे पर समान रूप से निर्भर रहते तो उनके संबंध में विषमता आने की सम्भावना ही न रहती, परन्तु वास्तविकता यह है कि भारतीय स्त्री की सापेक्षता सीमातीत हो गई। पुरुष अपने व्यावहारिक जीवन के लिए स्त्री पर उतना निर्भर नहीं जितना स्त्री को होना पड़ता है। स्त्री उसके सुखों के अनेक साधनों में एक ऐसा साधन है जिसके नष्ट हो जाने पर कोई हानि नहीं होती। एक प्रकार से पुरुष ने कभी उसके अभाव का अनुभव करना ही नहीं सीखा, इसी से उसे स्त्री के विषय में विचार करने की आवश्यकता भी कम पड़ी। स्त्री की स्थिति इसके विपरीत है। उसे प्रत्येक पग पर, प्रत्येक साँस के साथ पुरुष से सहायता की भिक्षा माँगते हुए चलना पड़ता है।

जीवन के विकास में दूसरों से सहायता लेना बुरा नहीं, परन्तु किसी को सहायता दे सकने की क्षमता न रखना अभिशाप है। सहयात्री वे कहे जाते हैं, जो साथ चलते हैं, कोई अपने बोझ को सहयात्री कहकर अपना उपहास नहीं करा सकता। भारतीय पुरुष ने स्त्री को या तो सुख के साधन के रूप में पाया या भार रूप में, फलत: वह उसे सहयोगी का आदर न दे सका। उन दोनों का आदान-प्रदान सामाजिक प्राणियों के स्वेच्छा से स्वीकृत सहयोग की गरिमा न पा सका, क्योंकि एक ओर नितान्त परवशता और दूसरी ओर स्वच्छन्द आत्मनिर्भरता थी। उनके कार्यक्षेत्र की भिन्नता तो आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है, परन्तु इससे उनकी सापेक्षता में विषमता आने की सम्भावना नहीं रहती। यह विषमता तो स्थिति वैषम्य से ही जन्म और विकास पाती है।

शब्दार्थ

अर्थ स्वातन्त्र्य	=	आर्थिक रूप से स्वतन्त्र या आत्मनिर्भर			
अर्थ	=	धन	परमुखापेक्षिणी	=	दूसरे पर आश्रित
द्रव्य उपार्जन	=	धन कमाना	गृहिणी	=	घर चलाने वाली स्त्री
स्पृहणीय	=	वांछनीय	यौतुक	=	दहेज
स्थावर	=	स्थायी, अचल			
सापेक्षता	=	परस्पर सम्बन्ध व आदान-प्रदान की स्थिति			
सीमातीत	=	सीमा से परे			

सहयात्री	=	हमसफ़र, एक साथ चलने वाले
नितान्त परवशता	=	पूरी तरह दूसरे पर निर्भर
श्लाघ्य	=	प्रशंसनीय

अभ्यास

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दें :-

1. 'सामाजिक व्यवस्था में स्त्री और पुरुष के अधिकारों में विषमता क्यों नहीं मिट सकी ?' पाठ के आधार पर उत्तर दें ?
2. 'आर्थिक दृष्टि से स्त्री की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हो सका ?' लेखिका के इस विचार से आप कहाँ तक सहमत हैं ? अपने विचार स्पष्ट करें।
3. 'नारी जाति की स्थिति में निरन्तर होने वाले सुधारों का ऐतिहासिक क्रम में उल्लेख करते हुए' वर्तमान स्थिति में लेखिका द्वारा दिए सुझावों से आप कहाँ तक सहमत हैं ? स्पष्ट करें।
4. 'स्त्री के अर्थ स्वातन्त्र्य का प्रश्न' निबंध का सार अपने शब्दों में लिखें।
5. लेखिका निबंध के उद्देश्य को स्पष्ट करने में कहाँ तक सफल रही हैं ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. लेखिका ने समाज की व्यवस्था में साम्य न आ सकने का क्या कारण बताया है ? स्पष्ट करें।
2. वैदिक समाज में स्त्री की उन्नत स्थिति का क्या कारण था ?
3. 'स्त्रो को पिता की सम्पत्ति से वंचित करने में क्या उद्देश्य रहा होगा ?' पाठ के आधार पर उत्तर दें।
4. 'प्राचीन समाज में स्त्री के स्वतन्त्र अस्तित्व की कभी चिन्ता ही नही की गई।' इसका क्या कारण था ?
5. आर्थिक पराधीनता व्यक्ति के व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव डालती है ?
6. सापेक्षता ही सामाजिक संबंध का मूल है - भारतीय समाज में स्त्री-पुरुष का संबंध कहाँ तक सापेक्ष है ? पाठ के आधार पर उत्तर दें।

******

18. लीलाधर शर्मा पर्वतीय

लीलाधर शर्मा पर्वतीय का हिंदी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। राष्ट्रीय समस्याओं को अपने बहुमूल्य विचारों से समाधान करने की चेष्टा करने में वे सदैव लगे रहते हैं। इनका जन्म 1 जनवरी 1919 को अल्मोड़ा (उत्तरांचल) के किसान परिवार में हुआ। मुंशी प्रेमचन्द जी के उपन्यासों का इन पर गहरा प्रभाव रहा है। उनके उपन्यासों को पढ़कर ही ये कांग्रेस के सदस्य बने और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष में जुटे। कई बार इन्हें जेल यात्रा भी करनी पड़ी जिसके कारण इनकी शिक्षा में व्यवधान भी आता रहा किन्तु बाद में इन्होंने काशी विद्यापीठ वाराणसी से शास्त्री की शिक्षा पाई।

पर्वतीय जी ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं का संपादन भी किया और पत्रकारिता के क्षेत्र में सक्रिय भूमिका निभाते हुए नाम कमाया। ये उत्तर प्रदेश सरकार की हिंदी समिति के कई साल तक सचिव भी रहे। बाद में उत्तर प्रदेश शासन के उपसूचना निदेशक पद से 1979 ई० में सेवा-निवृत्त हुए।

इनकी दो प्रमुख रचनाएं संयुक्त राष्ट्र संघ और स्वतंत्रता की पूर्व संध्या उत्तरप्रदेश से पुरस्कृत भी हुईं। इनकी भाषा सरल व सुबोध है। इनकी रचनाओं में कथा और रिपोर्ताज की शैली देखने को मिलती है।

पाठ-परिचय

प्रस्तुत निबंध में लेखक ने देश में बढ़ती जनसंख्या से उत्पन्न होने वाली विकट समस्याओं को उजागर किया है। उन्होंने बताया है कि बेरोज़गारों की बढ़ती भीड़, घटते हुए मकान और खाद्यान्न, अस्पतालों में मरीज़ों की बढ़ती भीड़, रेलों व बसों की भीड़, परिवार में अधिक बच्चे होने से उनकी सही परवरिश न हो पाना तथा बढ़ती दुर्घटनाएं-सब बढ़ती जनसंख्या का ही दुष्परिणाम हैं।

लेखक ने संदेश दिया है कि यदि जनसंख्या इसी प्रकार निरंतर बढ़ती रही तो भविष्य में ये समस्याएँ और भी विकट रूप धारण कर सकती हैं। उन्होंने सीमित परिवार होने के लाभ से भी परिचित करवाने की पूरी चेष्टा की है। यदि व्यक्ति का परिवार सीमित होगा तो संकीर्ण मकानों की समस्या नहीं रहेगी, स्वच्छ जलवायु होगी और भोजन सामग्री भरपूर मिल पाएगी तो बीमारियों से भी बचा जा सकेगा। समय और शक्ति का अपव्यय नहीं होगा व देश का विकास होगा।

प्रस्तुत निबंध संक्षिप्त तथा सारगर्भित है जिससे लेखक की कुशलता का परिचय स्वत: ही हो जाता है। निबंध इतना सहज व स्वाभाविक है कि निबंधकार के साथ पाठक का सीधा संबंध स्थापित हो जाता है। इनकी भाषा सरल एवं सुबोध है जिसके कारण निबंध सरल एवं हृदयस्पर्शी बन गयी है। इसमें किसी प्रकार की भी जटिलता नहीं है।

भीड़ में खोया आदमी

मेरे एक अभिन्न मित्र है – बाबू श्यामलाकांत। सीधे-सादे, परिश्रमी, ईमानदार, किंतु निजी ज़िंदगी में बड़े लापरवाह। उम्र में मुझ से छोटे हैं, पर अपने घर में बच्चों की फौज खड़ी कर ली है।

पिछली गर्मियों में मुझे उनकी लड़की के विवाह में सम्मिलित होने के लिए हरिद्वार जाना था। पंद्रह दिन पहले आरक्षण के लिए स्टेशन पर गया तो वहाँ पहले से ही लोगों की लंबी कतार खड़ी थी। घंटों प्रतीक्षा के बाद मेरी बारी आई तो पता चला कि किसी भी गाड़ी में स्थान खाली नहीं है। जाना आवश्यक था, इसलिए मुझे बिना आरक्षण के ही निकलना पड़ा। जब गाड़ी आई तो क्या देखता हूँ कि उसके अंदर तिल रखने की भी जगह नहीं और प्लेटफार्म पर चढ़ने वालों की भीड़ ज़बरदस्त धक्कम-धक्का करने में लगी है। मेरे पास सामान बहुत कम था, फिर भी कुली की सहायता लेनी पड़ी। यदि उसने खिड़की से मुझे भीतर न धकेला होता तो गाड़ी छूट जाती। लक्सर में मुझे गाड़ी बदलनी थी। किसी तरह खिड़की से बाहर कूदा तो क्या देखता हूँ, पूरी ट्रेन की छत यात्रियों से भरी पड़ी है। सोचता हूँ, अपने प्राणों को भीषण संकट में डाल कर ट्रेन की छत पर यात्रा करने के लिए लोग क्यों मज़बूर हुए? इन लोगों को रेल के नियम, व्यवस्था और अनुशासन का ध्यान क्यों नहीं है ?

हरिद्वार स्टेशन पर श्यामलाकांत जी का बड़ा लड़का दीनानाथ मुझे लेने आया था। उसे अपनी पढ़ाई पूरा किये दो वर्ष हो गये हैं। तभी से नौकरी की तलाश में भटक रहा है। मैंने पूछा – अब तो जगह-जगह रोज़गार कार्यालय खुल गये हैं, उनकी सहायता क्यों नहीं लेते? कहने लगा – 'चाचा जी, वहाँ भी गया था, पूरे दिन लाइन में खड़ा रहने पर जब मेरी बारी आई तो अफसर बोला– ''भाई, नाम तो तुम्हारा लिख लेता हूँ पर जल्दी नौकरी पाने की कोई आशा मत करना। तुम्हारी योग्यता के हज़ारों व्यक्ति पहले से इस कार्यालय में नाम दर्ज करा चुके हैं।'' मैं सोचने लगा जब एक छोटे शहर का यह हाल है तो बड़े शहरों में बेरोजगारों की कितनी भीड़ भटक रही होगी ?

घर पहुँचा तो छोटे से मकान में सामान को ठूसमठास और बच्चों की भीड़ देखकर मेरा दम घुटने लगा। मैंने श्यामलाबाबू से पूछा – 'क्या तुम्हारे पास यही दो कमरे हैं?' 'वे बोले क्या करूँ मित्र। दो वर्ष पहले इस शहर में आया था। तभी से मकान की तलाश में भटक रहा हूँ। शहर में चक्कर काट–काट करे जूते घिस गए। निराश होकर जब थक गया तब साल भर बाद मकान के नाम पर सिर छिपाने के लिये गली के अंदर यह छत मिली है। शहर पहले की तुलना में कोई गुणा फैल चुका है। दूर–दूर तक नई कालोनी बन गई है। फिर भी मेरी तरह न जाने कितने लोग मकानों के लिए भटक रहे हैं। हमारे देश में बढ़ती हुई आबादी का ही यह दुष्परिणाम है। जनसंख्या बढ़ रही है, मकान और खाद्यान्न घट रहे हैं।'

उसी समय श्यामला जी की पत्नी जलपान लेकर आई। उनके पीछे उनकी तीन छोटी लड़कियाँ और पल्ला पकड़े दो छोटे लड़के। मैं उनकी दुर्बल काया और पीला चेहरा देखकर स्तब्ध रह गया। मैंने पूछा – 'कब से अस्वस्थ हैं ? डॉक्टर को दिखा कर इलाज नहीं करा रही हैं क्या ?, वे फीकी मुस्कान मुस्करा दीं। बोलीं – 'भाई साहब, इतने बड़े परिवार में हर रोज कोई न कोई बीमार रहता ही है। डॉक्टर को दिखाने अस्पताल गई थी। पर अस्पतालों में आजकल रोगी और उनके संबंधी मधुमक्खी के छत्ते की तरह डॉक्टर को घेरे रहते हैं। वह भी अच्छी तरह किसी–किस को देखे। आजकल तो ऐसा लगता है, मानो पूरा शहर ही अस्पताल में उमड़ आया है। समझ में नहीं आता, ऐसी भीड़ क्यों हैं?'

अब यहीं देखिये न। मेरी तबीयत भी ढीली ही रहती है। सोचा था विवाह के कपड़े दर्जी से सिलवा लूँगी। बड़े बेटे को दर्जी के यहाँ भेजा। लेकिन वह जिस किसी भी दुकान पर गया, हर दर्जी ने पहले से सिलने आये कपड़ों का ढेर दिखा कर अपनी मजबूरी ज़ाहिर कर दी। पहले ग्राहक का स्वागत होता था, अब उसे भी चिरौरी–सी करनी पड़ती है फिर भी समय पर काम नहीं होता। दुकानें पहले से कहीं अधिक खुल गयी हैं लेकिन ग्राहकों की बढ़ती हुई भीड़ के लिए वे अब भी कम पड़ रही हैं।

तभी बाहर से दूसरे बेटे सुमंत का हारा–थका, झुँझलाया स्वर सुनाई दिया – ''माँ, जल्दी से एक कप चाय बना दो। आज पूरा दिन राशन की दुकान पर लग गया। इतनी भीड़ थी कि लाइन खत्म होने को ही नहीं आती थी। फिर भी पूरा सामान नहीं मिल पाया।''

मैं सोचने लगा आखिर इस सबका कारण क्या है ? मुहल्ले–मुहल्ले दुकानें हैं, मकान पहले से कहीं अधिक बन गये और बनते जाते हैं। रोजगार के अनेक रास्ते निकल आये हैं। रेलगाड़ियों

और बसों की संख्या पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है, चिकित्सा–सुविधाओं का विस्तार हुआ है, फिर भी लोगों की आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पा रही हैं। जहाँ देखिये भीड़ ही भीड़ है। यह भीड़ क्यों बढ़ती जाती है ? क्या आदमी स्वयं इसके लिए उत्तरदायी नहीं है ?

घर बच्चों की भीड़ है। यह भीड़ भले ही हमें अच्छी लगती हो लेकिन जब तक बच्चों के पालन–पोषण की, रहन–सहन की, शिक्षा–दीक्षा की पूरी सुव्यवस्था न हो, यह भीड़ दुःखदायी बन जाती है। अस्पताल में भीड़ क्यों है ? क्या यह भीड़ किसी को सुहाती है ? क्या कोई स्वेच्छा से अस्वस्थ होता है ? नहीं, स्वयं कोई बीमार नहीं होना चाहता। बीमारी, कुपोषण से, गंदे और संकीर्ण मकानों के दूषित वातावरण से होती है। यदि सीमित परिवार हो, स्वच्छ जलवायु हो और खाने के लिए भरपूर भोजन सामग्री हो तो बीमारी से बचा जा सकता है। रेल–बस में भीड़ का कारण भी बढ़ती हुई जनसंख्या है। देश के अनुशासन पर दुष्प्रभाव पड़ता है। सड़क पर दुर्घटनाएं होती हैं। सार्वजनिक स्थानों पर नियम और व्यवस्था का पालन नहीं होता। जिस काम के लिए आदमी दफ्तर, कचहरी, अस्पताल, स्टेशन आदि स्थानों पर जाता है समय, शक्ति और धन व्यय करके भी वह कार्य सिद्ध नहीं कर पाता, वह स्वयं भीड़ में खो जाता है। भीड़ में खोया आदमी शायद यह तो समझ ही जाता है कि यह बढ़ती हुई जनसंख्या का परिणाम है। मुझे अपने मित्र श्यामलाकांत को अब इस भीड़ का रहस्य बताने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे स्वयं इस विपदा को झेल रहे हैं।

ऐसा लगता है कि यदि समय रहते हमारा देश अब भी नहीं चेता और श्यामला बाबू की तरह परिवार बढ़ाता गया तो वह दिन दूर नहीं जब वह स्वयं इस भीड़ में और इससे पैदा होने वाली समस्याओं में पूरा तरह खो जाएगा।

शब्दार्थ

अभिन्न	=	जो अलग न हो
आरक्षण	=	विशेष दृष्टि या विशेष व्यक्ति के लिए पहले से निर्धारित कर देने या करा लेने का कार्य
स्तब्ध	=	आश्चर्यचकित, हैरान
चिरौरी	=	दीनता
स्वेच्छा	=	अपनी इच्छा पूर्वक की जाने वाली प्रार्थना
खाद्यान्न	=	खाने योग्य अनाज

अभ्यास

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दें :-

1. 'भीड़ में खोया आदमी' निबंध में लेखक ने आम आदमी की समस्याओं को उठाया है ? स्पष्ट करें।
2. इस निबंध में लेखक ने सभी समस्याओं का मूल जनसंख्या की वृद्धि बताया है। क्या आप इससे सहमत हैं? अपने विचारों की पुष्टि के लिए उदाहरण दें।
3. निबंध के नामकरण की सार्थकता को स्पष्ट करें।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. रेल में यात्रा करते समय लेखक को किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ा?
2. दीनानाथ को नौकरी न मिलने का क्या कारण था ?
3. श्यामलाकांत ने शहर में मकान न मिलने का मुख्य कारण क्या बताया ?
4. श्यामलाकांत का परिवार अस्वस्थ क्यों रहता था ?
5. लेखक ने अपने इस निबन्ध में बढ़ती हुई भीड़ का समाधान क्या बताया है?

******

19. डॉ० एम. एल. रामनाथन

(जन्म सन् 1927 – निधन सन् 1983)

हिंदी में लेखन अनेक विषयों के आधार पर होता रहा है। इसे हम साहित्यिक विषय तथा साहित्य से हट कर विषयों पर लिखित निबन्धों में बाँट सकते हैं। इसे साहित्य और ज्ञान से संबंधित विषय में भी बाँटा जा सकता है। ज्ञान से जुड़े निबन्धों को विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र, इतिहास, समाज शास्त्र आदि अनेक विषयों में समझा जा सकता है।

श्री एम. एल. रामनाथन एक ऐसे निबन्धकार हैं जिनका सम्बन्ध विज्ञान से रहा है। इन्होंने रसायन और पर्यावरण संबंधी कुछ महत्तवपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश डाला है।

एम. एल. रामनाथन देश के जाने-माने पर्यावरण विशेषज्ञ थे। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा कोचीन (केरल) में हुई। इन्होंने 1949 में बनारस विश्वविद्‌यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त की और जादवपुर विश्वविद्‌यालय से पर्यावरण में पीएच. डी. की उपाधि ली। वे राष्ट्रीय व्यावसायिक स्वास्थ्य संस्थान, अहमदाबाद आ गये और वहाँ रहकर वायु प्रदूषण तथा धातुओं द्वारा पर्यावरण प्रदूषण सम्बंधी अनेक अनुसंधानों (शोधों) का संचालन किया। इन्हें देश-विदेश की अनेक प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्थाओं ने सम्मानित किया। वे भारत सरकार के पर्यावरण विभाग में निदेशक रहे हैं। इन्होंने पर्यावरण अनुसंधान (शोध) समिति के सचिव के रूप में अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। इनकी पर्यावरण में देन को कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। लेखक का मानना है कि हमें सबसे बड़ा खतरा वायु प्रदूषण से है। इससे बचने के भी अनेक साधन इन्होंने बतलाए हैं। स्पष्ट है कि निबंधकार ने हमें पर्यावरण की सभी स्थितियों को ठीक से समझने और उन पर अमल करने के सुझाव दिये हैं। आज बिगड़ते वातावरण को ध्यान में रखते हुए प्रदूषण से बचने के लिए ज़रूरी है कि हम अपने आस-पास को प्रदूषण से रहित बनाएँ। स्वस्थ समाज को प्रदूषण विशेष कर वायु प्रदूषण की सही समझ होना ज़रूरी है।

पाठ परिचय

प्रस्तुत निबंध देश के प्रसिद्ध पर्यावरण विशेषज्ञ डॉ. एम. एल. रामनाथन द्वारा रचित है। लेखक ने यहाँ आधुनिक जीवन में रसायनों के दिन प्रति दिन बढ़ रहे प्रयोग के प्रति मानव को सतर्क किया है। निःसंदेह रसायनों का प्रयोग आज अपरिहार्य है, परंतु हमें उनके प्रयोग में सावधानी बरतते हुए उनके विनाशकारी व हानिकारक प्रभाव से जीवन को अधिक से अधिक सुरक्षित रखना चाहिए। निबंध की भाषा विषयानुकूल है। तत्सम शब्दों के साथ-साथ उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। निबंध आधुनिक जीवन के अत्यंत महत्वपूर्ण विषय के संबंध में मानव समाज को अत्यंत उपयोगी जानकारी देता है। रसायनों के कुप्रभावों के प्रति अति शीघ्र गंभीर कदम उठाने की अत्यंत आवश्यकता युग की माँग है।

रसायन और हमारा पर्यावरण

दुनिया रसायनों से ही चल रही है। जीवन रासायनिक प्रक्रियाओं में गुंथा है। वास्तव में जीवन की प्रक्रियाएं क्रमिक रासायनिक अभिक्रियाओं का ही परिणाम हैं। हर साँस, हर प्रयत्न, पसीने की हर बूँद अथवा पेट में भूख की ऐंठन-सभी का कारण रासायनिक अभिक्रियाएं हैं।

हम रसायनों के युग में रह रहे हैं। हमारे पर्यावरण की सारी वस्तुएँ और हम सब, रासायनिक यौगिकों के बने हैं। हवा, मिट्टी, पानी, खाना, वनस्पति और जीव-जंतु ये सब अजूबे जीवन की रासायनिक सच्चाई ने पैदा किए हैं। प्रकृति में सैकड़ों-हज़ारों रासायनिक पदार्थ हैं। रसायन न होते तो धरती पर जीवन भी नहीं होता। पानी, जो जीवन का आधार है, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से बना एक रासायनिक यौगिक है। मधुर-मीठी चीनी कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से बनी है। कोयला और तेल, बीमारियों से मुक्ति दिलाने वाली औषधियाँ-एंटीबायोटिक्स, एस्प्रीन और पेनेसिलिन, अनाज, सब्जियाँ, फल और मेवे भी तो रसायन हैं।

आज रसायन विज्ञान काफी आगे बढ़ चुका है। जैसे-जैसे हमारी रसायन संबंधी क्षमता बढ़ी है, उनकी जीव वैज्ञानिक प्रभावों के प्रति हमारी चिंता भी बढ़ी है। रसायनों का ज़रूरत से अधिक और गलत उपयोग हमारे पर्यावरण और स्वास्थ्य के लिए विनाशकारी सिद्ध हो सकता है। जीवन के सभी क्षेत्रों में रसायनों के खतरों के प्रति बार-बार प्रश्न उठ रहे हैं। दिन-प्रतिदिन रसायनों के अकल्पित और अप्रत्याशित प्रभाव सामने आ रहे हैं। दिन-प्रतिदिन रसायनों के अकल्पित और अप्रत्याशित प्रभाव सामने आ रहे हैं। इनकी मारक शक्ति तथा आनुवांशिक, अनिष्टकर और क्षयकारी प्रभाव सचमुच में सभी गंभीर चिंता के विषय हैं।

क्या रसायन भी जोखिम उत्पन्न करते हैं ? स्पष्ट है कि कुछ अवश्य करते हैं। उनमें से अनेक बहुत अधिक ज़हरीले हैं, कुछ प्रचंड विस्फोट करते हैं और कुछ अन्य अचानक आग पकड़ लेते हैं। ये रसायनों के कुछ तात्कालिक 'उग्र' खतरे हैं। रसायनों से कुछ दीर्घकालिक खतरे भी होते हैं। कुछ रसायनों के संपर्क में अधिक समय तक रहने पर, चाहे उन रसायनों का स्तर लेशमात्र क्यों न हो, शरीर में बीमारियाँ पैदा हो सकती हैं।

मनुष्य और रसायन-उद्योग ने रसायन के तात्कालिक उग्र खतरे को पहचानने की दिशा में अच्छा काम किया है और जनता तथा उन कर्मचारियों को, जो काम के दौरान रसायनों के संपर्क में रहते हैं, रसायनों के कुप्रभाव से बचने के लिए आवश्यक एहतियाती कदम उठाए गए हैं।

रसायनों के लंबे समय के बाद उजागर होने वाले प्रभाव, दीर्घकालिक खतरे, अभी हाल ही में पहचानी गई समस्या है। कुछ रसायन उस पीढ़ी को तो प्रभावित नहीं करते जो उसके संपर्क में रहती है या उनके प्रति उद्भासित होती है, पर उनके प्रभाव अगली या उससे भी अगली पीढ़ी को झेलने पड़ते हैं। 'थैलीडोमाईड' से हमें इस बारे में सबक मिला है। ऐस्बेस्टॉस ने, जिसे हमने एक सुरक्षित पदार्थ समझा था, जो अग्नि को भी सह सकता है, अपने कैंसर पैदा करने के अवगुण से हमें आश्चर्य में डाल दिया। पौलीक्लोरीनेटिड बाइफेनिल, जो अपने पर विद्युत (डाइइलैक्ट्रिक) गुण के कारण जाने जाते हैं, वातावरण में धीरे-धीरे इकट्ठे होते जाते हैं और एक लंबे समय के बाद जीवों, मछलियों और यहाँ तक कि मनुष्यों के लिए भी खतरा उत्पन्न कर देते हैं। एक अन्य गजब के रसायन, डी. डो. टी. को तब खतरनाक करार दिया गया जब स्चैल कार्सन ने अपनी पुस्तक 'साइलेंट स्प्रिंग' में इसके अवगुण बखाने। कास्टिक सोडे के उत्पादन में काम आने वाली 'मरकरी सेल प्रौद्योगिकी' दो दशक पहले तक बड़े मज़े से इस्तेमाल की जाती रही, जब तक कि विश्व के सामने जापान में मिनामाटा की मछली खाने वाली आबादी में, अपंग बना देने वाला और आमतौर पर घातक सिद्ध होने वाला स्नायुरोग फैलने की घटना सामने नहीं आई। वह रोग पानी से बहि: स्राव के रूप में बहाए जाने वाले मरकरी के कारण फैल रहा था। इसका मैथिल मरकरी में जैविक परिवर्तन हो रहा था और मछलियाँ उसे मनुष्य में पहुँचा रही थीं।

हमारा आधुनिक औद्योगिक अनुभव प्रतिदिन इस्तेमाल होने वाले रसायनों के दीर्घकालिक खतरों से भरा पड़ा है। इन रसायनों में भारी धातुएँ, कार्बनिक विलायक, जहरीले वाष्प और गैसीय उत्सर्जक शामिल हैं। इनमें से उनके प्रदूषण को हम भोजन और पानी के साथ अपने पेट अथवा साँस के साथ अपने फेफड़ों में ले जाते हैं। दुर्भाग्य से वायु -प्रदूषण एक घरेलू शब्द बन गया है। कुछ ऐसे रसायन भी मौजूद हैं, जो हमारी खाल से होते हुए हमारे शरीर में सही सलामत प्रवेश कर जाते हैं।

खेती में इस्तेमाल होने वाले कीटनाशक मनुष्य के लिए किसी हद तक ज़हरीले हैं, इन्हें पर्यावरण में जानबूझ कर छिड़का जाता है, किन्तु इसके लिए इन्हें भली-भाँति परखा जाता है और इस्तेमाल की अनुमति दी जाती है। कारण, इससे फसल की वृद्धि के रूप में अधिक लाभ प्राप्त होता है। रासायनिक कीटनाशकों के इस तरह से नियंत्रित इस्तेमाल के खतरे ग्राह्य जोखिम हैं। लेकिन, जोखिम का मूल्यांकन समय अथवा परिस्थितियों के साथ बदल सकता है। विकसित देशों में सन् 1972 ई. के बाद डी.डी.टी पर प्रतिबंध लगा दिया था, किन्तु विकासशील देश डी.डी.टी के लगातार इस्तेमाल में आज भी लाभ देख रहे हैं।

कुछ रसायन जो अपने आप में सुरक्षित हैं, उस समय हानि पहुँचाते हैं, जब वे अन्य पदार्थों से क्रिया कर लेते हैं या फिर जब वे अन्य पदार्थों के साथ मिलने के बाद अपना ज़हरीलापन छोड़ देते हैं। सोडियम और क्लोरीन दोनों खतरनाक हैं, इन दोनों के मेल से बना सोडियम क्लोराइड अर्थात् साधारण नमक जीवन के लिए ज़रूरी है। दूसरी ओर समुद्र का पानी पीने की दृष्टि से अत्यंत ज़हरीला है और लंबे समय तक नमक का सेवन रक्तचाप बढ़ने का कारण बन सकता है, जो एक दीर्घकालिक जोखिम है। यहाँ पर मात्रा और ज़हरीलापन दोनों तथ्य जोखिम के अर्थ को प्रभावित करते हैं।

कैंसर सबसे भयानक रोग है। कहा जाता है कि कैंसर अधिकतर पर्यावरणीय रसायनों के प्रति उद्भासन के कारण होता है। यह तथ्य है या यूँ ही उड़ाई गई बात ? कैंसर से संबंधित आँकड़े आज भी विश्वसनीय हैं। ऐसी रिपोर्ट भी मौजूद है जो संकेत देती है कि कैंसर के मामले बढ़ रहे हैं। किन्तु एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार कुछ किस्म के कैंसर के मामले कम होते जा रहे हैं। पिछले 25 वर्षों से पेट के कैंसर के मामलों में कमी आई है, किंतु फेफड़ों का कैंसर बढ़ा है।

रसायनों के बारे में, समाज के प्रति उसके लाभों और खतरों के बारे में कौन तय करे? इस संबंध में व्यक्तिगत और सामाजिक दृष्टिकोण हैं। जो आदमी सिगरेट पीता है या शराब का सेवन करता है और अपनी सेहत के प्रति लापरवाह है, जोखिमों के संबंध में वह अपना ही निर्णय ले रहा है। दूसरी ओर सामाजिक निर्णय सरकार को लेने होते हैं किन्तु सरकार विज्ञान से लेकर सामान्य बुद्धि तक, सभी उपलब्ध सूचनाओं का उपयोग करके यह निर्णय किस प्रकार ले? रसायनों के इस्तेमाल पर सरकारी निर्णय, कानून और नियम बढ़ते जा रहे हैं, क्योंकि जनता के स्वास्थ्य की सुरक्षा सरकार का कानूनी उत्तरदायित्व है।

रसायनों के संबंध में सूचनाओं का विश्लेषण आसान नहीं है। आदमियों से लेकर विधिवेत्ताओं तक, सभी प्रकार के लोगों का इस सूचना-संग्रह में योगदान होता है। इनमें अक्सर असहमतियाँ

होती हैं। मोटर गाड़ियों की गति–सीमा कितनी होनी चाहिए? कोई रसायन कारखाना रोज़गार, उत्पादन और अन्य सेवाएँ उपलब्ध करने के लिए बनाया जाना चाहिए या उसे इसलिए नहीं बनाया जाना चाहिए क्योंकि वह प्रदूषण फैलाता है? ये सब रोज के प्रश्न हैं। हमारे निर्णय पर भावनाएँ और आशंकाएँ हावी हो जाती हैं। सही वैज्ञानिक तथ्य अधिकतर मौजूद नहीं होते या पर्याप्त नहीं होते। रसायनों के जोखिम के प्रति निर्णय लेना भी आसान नहीं, किन्तु आवश्यक हमेशा है। जोखिमों और लाभों के बारे में निर्णय लेने वाले तो हम सब ही हैं।

रसायन हमारी आवश्यकता है। ये हमारे पर्यावरण में हमेशा मौजूद हैं। इनकी सूक्ष्म अथवा लेश मात्रा भी 'अर्थपूर्ण' हो सकती है। ऐसे रसायनों के बारे में हमें अधिक जानने की ज़रूरत है। हमें इस बारे में भी जानकारी हासिल करनी है कि इनसे क्या हो सकता है? जब तक कोई रसायन बिना किसी संदिग्धता के गैर–ज़रूरी और हानिकर सिद्ध न हो जाए तब तक उसका इस्तेमाल जारी रहने देना चाहिए। लेकिन यह इस्तेमाल सुरक्षित ढंग से और सुरक्षित मात्रा में होना चाहिए। तात्पर्य यह है कि संभावी लाभकारी पदार्थों का इस्तेमाल, उनके गलत इस्तेमाल से हो सकने वाली सभी हानियों को पूरी तरह जानते–समझते हुए, पूरे विवेक के साथ किया जाना चाहिए। प्रश्न उठता है कि हम ऐसा करने में सफल हो सकते हैं? बहुत से मामलों में ऐसा किया जा चुका है और यदि हम कोशिश करें तो ऐसा अवश्य कर सकते हैं। इसमें शक नहीं, हमें लगातार सतर्क रहना होगा। रासायनिक सुरक्षा को प्रतिदिन का कार्य मान लिया जाना चाहिए।

शब्दार्थ

अपरिहार्य	= जिसे त्यागा न जा सके	अभिक्रिया	= रासायनिक प्रतिक्रियाएं
अप्रत्याशित	= जिसकी आशा न रहे	तात्कालिक	= उसी समय होने वाला
प्रतिबन्ध	= रोक		

अभ्यास

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दें :-

1. रसायन हमारी आवश्यकता हैं। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से उदाहरण देते हुए स्पष्ट करें।

2. ''रसायन का ज़रूरत से अधिक और गलत उपयोग हमारे पर्यावरण और स्वास्थ्य के लिए विनाशकारी सिद्ध हो सकता है।'' पाठ से उदाहरण देकर इस तथ्य को सिद्ध करें।

3. ''रसायन और हमारा पर्यावरण'' निबंध का सार लिखें।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. रसायनों के तात्कालिक खतरे कौन से हैं ?

2. रसायनों के दीर्घकालिक प्रभाव क्या हैं? उदाहरण देकर उत्तर दें ।

3. रसायनों के प्रयोग में नियंत्रण व निर्णय में सरकार की क्या भूमिका हो सकती है? स्पष्ट करें।

4. पर्यावरण को रसायनों से होने वाली हानि से कैसे बचाया जा सकता है ? स्पष्ट करें।

******

20. डॉ० इन्द्रनाथ चावला

(जन्म सन् 1931)

हिंदी में यात्रा साहित्य पर कुछ अधिकारी एवं चर्चित साहित्यकारों ने लिखा है। अब इसे एक पृथक विधा के रूप में- नयी गद्य विधा के रूप में स्थान मिला चुका है। इसमें लेखक अपने निजी प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर अपनी यात्राओं का रोचक ढंग से विवरण-वर्णन प्रस्तुत करता है। इसमें संस्करण, कथा, रेखाचित्र, डायरी आदि का प्रयोग एक साथ रहता है। पंजाब के हिंदी लेखकों में सबसे लोकप्रिय एवं चर्चित लेखक हैं प्रो. इन्द्रनाथ चावला। इन्हें यात्रा-संस्मरण प्रस्तुत करने में अद्‌भुत सफलता मिली है। विद्यार्थी इन्हें पढ़कर विशेष प्रेरणा लेते रहे हैं, ले रहे हैं।

प्रो. इन्द्रनाथ चावला का जन्म 23 अप्रैल, 1931 को हाफिजाबाद-एक तहसील नगर चनाब नदी के दक्षिण में गुजराँवाला (पाक) के पश्चिम में हुआ। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा गोबिन्द सहाय एंग्लो हाई स्कूल हाफिजाबाद से प्राप्त की। बी. ए. आनर्स कैम्प कॉलेज, नई दिल्ली से तथा एम.ए. सरकारी कालेज, लुधियाना से प्राप्त की। इन्होंने अध्यापन कार्य डी.ए.वी. कॉलेज, जालंधर से सन् 1955 से शुरू किया।

यहीं इनका सम्पर्क हिंदी के प्रतिष्ठित कहानीकार-नाटककार मोहन राकेश से हुआ-यहीं हिंदी के नाटककार कवि हरिकृष्ण प्रेमी का साथ भी मिला। इससे इनको हिंदी साहित्य के प्रति विशेष रुचि हुई। वैसे स्कूल में ही इन्हें हिंदी साहित्य पढ़ने की प्रेरणा अध्यापक-पुस्तकालयाध्यक्ष से मिली। जालन्धर के बाद ये सरकारी कॉलेज नारनौल और उसके बाद महेन्द्रा सरकारी कॉलेज, पटियाला में 1989 तक रहे। सन् 1963-69 तक अधिकारी प्रबंधक एन. सी. सी. दिल्ली रहे-यहां रहते हुए इन्हें यात्राओं का विशेष अवसर मिला। प्रो. चावला पंजाबी विश्वविद्‌यालय, पटियाला के एम. ए. भूगोल के संयोजक 1968-74 तक रहे।

इन्हें रमणीय स्थलों-पर्वतीय स्थानों की यात्रा का अवसर बचपन से ही मिलता रहा। सन् 1941 में ये काश्मीर पहली बार गए। फिर अनेक पर्वतीय स्थानों पर जाने का अवसर मिलता रहा। फिर रोहतांग से बाएलाचा की यात्रा, कुल्लू घाटी, लाहुल स्पीति, किन्नर कैलाश, भोर घाट पुरन्धर से फिरकी (पूना) तक पैदल यात्रा, ऋषिकेश से गंगा सागर की अनेक यात्राएँ कीं तथा इन्होंने तीन यात्रा-विवरणों को पुस्तक रूप में प्रस्तुत किया। प्रकाशित पुस्तकें हैं - रोहतांग के पार, किन्नर कैलाश तथा व्यास तीरे। वैसे इन्होंने 25 पुस्तकों की रचना की। पंजाब स्कूल बोर्ड

की पुस्तकों में इनके लेख प्रकाशित हैं। इन्हें 'व्यास तीरे' पर भाषा विभाग पंजाब से सर्वोच्चत्तम सम्मान मिल चुका है। हिंदी सेवी, भारत यात्रा से भी सम्मानित हैं।

इनके यात्रा-लेख (विवरण) बड़े ही मर्मस्पर्शी, रोचक तथा सहज हैं।

पाठ परिचय

'एक मिलियन डालर दृश्य' हिंदी निबंध साहित्य के उत्कृष्ट लेखक प्रो. इन्द्रनाथ चावला की पुस्तक 'किन्नर कैलाश' में संकलित है। प्रस्तुत निबंध को यात्रा साहित्य के अन्तर्गत लिया गया है। यहाँ लेखक ने अत्यन्त सहज व स्वाभाविक रूप में चण्डीगढ़ से शिमला की पर्वतीय यात्रा का वर्णन किया है। चंडीगढ़ से शिमला जाते समय धर्मपुर के पास गाड़ी खराब हो जाना एक बार तो यात्रा का मज़ा किरकिरा कर देता है, लेकिन इस देरी के कारण तारादेवी के पास शिमला नगर की अनेक जल रही बत्तियों का दृश्य रात्रि के इस अनूठे वातावरण को और भी अलौकिक बना देता है। प्रकृति के उस मनोरम दृश्य का काव्यमय वर्णन दृष्टव्य है। इसके साथ ही लेखक ने सोलन नगर के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए वहाँ के जन-जीवन की समस्याओं की ओर भी संकेत किया है।

भाषा शैली में स्वाभाविकता और साहित्यिकता का अत्यन्त सुन्दर सामंजस्य है। उपमा, रूपक, अनुप्रास और मानवीकरण अलंकार का सुन्दर प्रयोग है। लेखक ने 'एक मिलियन डालर दृश्य' से प्रकृति के इस मनोरम दृश्य को अभिहित करके इसे यात्रा का केन्द्र बिन्दु बना दिया है।

एक मिलियन डॉलर दृश्य

कर्नल अंकल बंगले के बरामदे में खड़े हैं। उनकी नज़र अपनी कलाई पर बंधी घड़ी की सुइयों पर टिकी है। हमारा स्कूटर बंगले के गेट पर रुकता है। कर्नल आँख उठाकर एक नज़र हमारी ओर देखते हैं और एक हल्की सी मुस्कान उनके मुख पर दौड़ जाती है। वह पम्मी की अटैची को क्षण भर के लिए देखते हैं। फिर सहसा बोलते हैं, ''बारात में जा रहे हो क्या? अच्छा! अच्छा ! रखो गाड़ी में।'' समझाने के बावजूद भी वह इतना बड़ा अटैची लेकर आया है। पहाड़ में भारी सामान लेकर चलना महंगा और असुविधाजनक होता है। इसलिये सदा हल्के फुल्के रहने से सैर का मजा और भी बढ़ जाता है। ज्ञान पहले से ही गाड़ी में सामान जोड़ रहा था। उसने हमारा सामान भी उठा कर गाड़ी में ठीक से टिका दिया, ताकि बैठने की सुविधा हो सके।

हैरी ने आवाज़ दी। नाश्ता तैयार है। टेबल पर रखा है। जल्दी करो, ठण्डा हो जायेगा। हम लोग खाने की टेबल पर जा बैठते हैं। दही, मक्खन और आलू के परांठे। साथ में अंडे की भुरजी और रसयुक्त मीठे किन्नौरी सेबों का आनन्द ले रहे हैं। हैरी कह रहा है – लद्दाख में गाड़ी रेत में धँस जाया करती थी। उसे निकालने के लिए दूसरी गाड़ी की सहायता की ज़रूरत होती थी। परन्तु किन्नौर में रेत नहीं है। सड़कें बहुत अच्छी हैं। एकदम पक्की। रास्ता ज़रूर टेढ़ा-मेढ़ा है। भूकम्प से कुछ सड़कें टूट गयी हैं। कहीं कहीं पहाड़ों से लुढ़क पर पत्थर और बजरी सड़कों पर इकट्ठे हो गए हैं। एक जगह तो पर्वत से पत्थर और चट्टानें गिरने से एक नदी का जल मार्ग ही रुन्ध गया था और एक छोटी-सी झील बन गई थी। फिर पानी के तेज़ प्रवाह से यह प्राकृतिक बाँध स्वयं ही टूट गया और जलाशय खाली हो गया। शायद हम लोग आने वाले दिनों का रोमांचकारी ट्रेलर देख रहे हैं।

उत्तरी भारत के तीन राज्यों की राजधानी और विख्यात वास्तु कलाशिल्पी कारबूजिए की स्वप्न नगरी चंडीगढ़ की सपाट, चौड़ी और 'ज्यामैट्रीकल' सड़कों को छोड़कर, हम बाइस नंबर राष्ट्रीय राज मार्ग पर आ गये हैं। यह है अम्बाला-कौरिक पाँच सौ किलोमीटर लम्बी सड़क, जो कालका -शिमला होकर भारत की उत्तरी सीमा तक जाती है। परंपरावश इसे हिन्दुस्तान -तिब्बत रोड भी कहते हैं। पहाड़ी सड़क अब कम चौड़ी है। सीधी और सपाट होने की बजाय यह घुमावदार, सर्पीली और ढलवाँ हैं। तीव्र गति से हम अपने मार्ग पर आगे बढ़ रहे हैं। विचार है कि सायंकाल तक रामपुर बुशहर या उस से भी कुछ आगे ज्यूरी तक पहुँच जायेंगे। बैड टी पटियाला में, ब्रेकफास्ट चंडीगढ़ में, लंच शिमला और डिनर ज्यूरी या रामपुर में होगा। अगले दिन सवेरे ही कल्पा पहुँच जायेंगे। इससे छुट्टियों का अधिकांश भाग किन्नौर में व्यतीत करने का अवसर मिलेगा। परन्तु होता वही है जो मंजूरे खुदा होता है। धर्मपुर तक पहुँचते ही हमारी गाड़ी कुछ बिगड़ गई और फिर अगले छह घंटे शहर से पांच सौ मीटर दूर सड़क के किनारे एक मील पत्थर पर बैठकर शिमला जाने वाली गाड़ियाँ गिन कर ही गुजारने पड़े।

शाम तक गाड़ी ठीक हुई और फिर हम अपने मार्ग पर तेज़ी से चल दिये। सोलन में थोड़ी देर के लिए एक प्याला चाय पीने के लिए रुकते हैं। सोलन नगर के बीचों बीच शिमला जाने वाली सड़क है। घर, बाज़ार, कॉलेज, दफ्तर, सिनेमा और होटल सब इसी सड़क के किनारे स्थित हैं। बाज़ार के बीच में ही बस अड्डा भी है। इस लिए हर समय बाज़ार में भीड़ रहती हैं। हम एक होटल की छत पर चाय पी रहे हैं। पीछे खिड़की में से छोटे-छोटे पहाड़ी घर और इनकी ढलवां टीन की छतें दिखाई देती हैं। कृषि-विश्वविद्यालय और ज़िला बनने से सोलन की

आबादी बढ़ गयी है। परिवार एक-एक कमरे में रहते हैं। गन्दगी स्वाभाविक है। वर्षा ही सफाई करती है।

कालका से शिमला जाने के लिए रेल यात्रा का अलग ही अनुभव है। वैसे इसमें समय मोटर की अपेक्षा अधिक लगता है। परन्तु रास्ता दिलकश नज़ारों से भरा है। छोटी पटरी की रेल कई गुफाओं में से गुजर कर जाती है। छोटे-बड़े पुलों पर से निकलती है। घुमावदार लंबे मोड़ काटती हुई सीटी बजाती है। किसी डिज़्नीलैंड सा बच्चों का सा खेल जान पड़ता है। हमारी गाड़ी भी कई बार रेल की पटड़ी के समीप आ जाती है और फिर कभी दूर पीछे हट जाती है। पर्वतीय दृश्य बहुत मनोहर हैं। ढलानें पेड़ों और हरी घास से ढकी हैं और धीरे-धीरें ऊँचाई बढ़ने से वनस्पति और ढलानों की हरीतिमा की चादर के रंगों में भी परिवर्तन आता जाता है। शीशम, आम और शहतूत का स्थान चीड़ और देवदार ग्रहण करने लगे हैं। सड़क के किनारे सेबों और आलू से लदे ट्रकों की लम्बी कतारें हैं। सेबों की पेटियां ट्रकों से बहुत ऊँचे ऊपर तक भरी हुई हैं। इससे संतुलन बिगड़ सकता है और दुर्घटना भी हो सकती है।

गाड़ी बिगड़ जाने से एक दिन यूं ही बेकार नष्ट हो जाने के कारण कैसे - कैसे विचार मन में आ रहे हैं। आज हमें रामपुर बुशहर न पहुँचकर रात शिमला में गुजारनी होगी। फिर शिमला भी तो ठीक वक्त पर नहीं पहुंच सकेंगे। लंच की बजाय मुश्किल से डिनर तक शिमला पहुँच पायेंगे। सारा दोष भाग्य पर ही मढ़ रहे हैं। रात हो चुकी है। टेढ़ा-मेढ़ा पहाड़ी रास्ता है। एक पल भी चूक जाने से कहीं के कहीं पहुँच सकते हैं। डर के मारे आपस में भी अधिक बात-चीत नहीं हो रही। सफर कुछ लंबा दिखाई दे रहा है। सारा रास्ता अंधेरे में एक जैसा ही जान पड़ता है। आखिर तारा देवी पहुँच कर कुछ जान में जान आई। शिमला पहुँचने की कुछ आशा हुई।

तारा देवी के मोड़ से ज्यों ही हम आगे बढ़े कि एक पहाड़ी के कटाव से बाहर निकलने पर शिमला नगर की बिजली की बत्तियाँ सामने आ गईं। नीचे एक खड्ड से लेकर पर्वत की ढलान के साथ-साथ ऊपर तक बने हुए घरों में सहस्त्रों बत्तियाँ जगमगा उठीं। देरी हो जाने का दुःख थोड़ी देर के लिए खत्म हो गया। पलभर के लिए हमने साँस रोक ली। दाँतों तले उँगली दबा ली या फिर मुँह खुले का खुला रह गया। कुछ अविश्वास की सी भावना। ऐसा लगता था कि आज की रात आकाश के सारे सितारे धरती पर उतर आये हों। हमारे इतने समीप। केवल एक खड्ड भर की दूरी थी। अंधेरे में खड्ड भी तो दिखाई नहीं देती। सारी दूरी मिट जाती थी। वे सब में समीप आ गये थे हमारे। जैसे हम उन्हें हाथों से छू सकते थे। दीप्यमान सहस्त्रों सितारे रंगे बिरंगे मोतियां की तरह झिलमिला रहे थे।

क्या आज आकाश लोक में कोई विशेष समारोह है जो धरती से आकाश तक पर्वत की ढलानें सहस्त्रों जगमगाते हीरे-मोतियों, मणियों और मूंगों से जड़ी है। अथवा रात्रि देवी के लम्बे काले केशों में यह कोई रत्न-जड़ित मालाएं हैं जिनके हीरे-मोती जगमगा कर अन्धकार को और भी गहरा कर देते हैं। शायद सभा के मुख्य अतिथि की प्रतीक्षा है। सब सभासद विराजमान हैं। मुख्य अतिथि के आते ही सब दीप जगमगा उठेंगे। अथवा शिमला की हर रात ऐसे ही खूब रंगीन होती है। यहाँ हर रात दीवाली मनाई जाती है। पर्यटकों का मन बहलाने के लिए अथवा देवताओं को प्रसन्न करने के लिए।

वास्तव में एक मिलियन डॉलर दृश्य है जिसे देखने के लिए कोई भी अमेरिकन पर्यटक जीवन भर भटकता रह सकता है। मुँह माँगे दाम चुका सकता है। इसे दिखाने मात्र के वायदे पर कोई भी अमेरिकन कम्पनी पर्यटकों से अपनी मन मरजी के दाम माँग सकती है।

कुछ वर्ष पूर्व मैंने पहले भी एक बार रात्रि में शिमला की यह रंग बिरंगी अनोखी छवि देखी थी। तारा देवी के मोड़ पर से नहीं बल्कि कुछ दूर चैल के एम. ई. एस. रैस्ट हाउस की बाल्कॉनी से। रोशनियाँ कुछ धीमी ज़रूर थीं, परन्तु गिनती में कहीं ज्यादा थीं। वहीं झिलमिल करते तारे किसी हीरे-मोतियों, मणि-मुक्ता जड़ित पर्वत का आभास देते हैं। तब भी इसी तरह अविश्वास हुआ था। धरती पर उतर आये आकाश का मंज़र आँखें निहारते नहीं थकतीं थीं और न हटाये ही हटती थीं।

कुछ देर के लिए यह सब स्वप्न-सा दृश्य एक पर्वतीय भुजा की ओट में छिप गया। हमारी गाड़ी एक अन्य छोटी सड़क के किनारे रुकी। हम लोग गाड़ी से बाहर आए। सामने वर्षा का जल एक छोटे से तालाब में भरा था। एकदम स्थिर और निश्चल। बीच तालाब में बादलों की एक ओट से निकलता हुआ चन्द्रमा का गोल घेरा था। कुछ पीला-सा। ताल के निर्मल जल में सितारों की रोशनियाँ भी थीं। शिमला की बत्तियाँ, रंग-बिरंगी बत्तियाँ। एक कटोरे के निर्मल जल में एक छोटा गोल पीला चाँद थोड़ी देर के लिए बन्दी था।

कुछ दिनों के पश्चात् जब हम शिमला से वापिस चंडीगढ़ लौट रहे थे तो कालका से कुछ मील पहले ढल्ली गाँव के पास हमें शाम हो गयी। वहाँ से नीचे आते हुए कालका नगर बिजली की रोशनी में जगमगाता दिखाई दिया तो फिर शिमला की याद ताजा हो गयी परन्तु यह दूसरे ढंग का अनुभव था। अब हम पर्वत की ऊँचाई से नीचे की ओर बेतरतीब बसे कालका शहर की बत्तियाँ देख रहे थे। रोशनियों की टेढ़ी-मेढ़ी पंक्तियाँ इसकी घुमावदार गलियों और सड़कों की

सूचक हैं। थोड़ी दूर दृष्टि डालने पर चंडीगढ़ की रोशनियाँ भी दीख पड़ती हैं। कालका के विपरीत चंडीगढ़ रात्रि में एक काली मखमली चादर पर जड़ित सितारों-सा दिखाई देता है।

पूर्व से पश्चिम की ओर तथा उत्तर से दक्षिण को जाती रोशनियों की बीसियों ही सीधी कतारें हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि आज देवताओं ने रात्रि को सुखना झील के किनारे एक विशाल जगमगाता चौपड़ बिछाया हो या रात नीला आकाश शिवालिक की गोदी में अपना सिर रख धरती पर सो रहा हो।

देर तो हो चुकी थी। अब शिमला पहुँच कर सैर करने का समय कहाँ था ? माल रोड खाली हो चुकी होगी। हम सीधे होटल पहुँचे। जल्दी से खाना खाया और बिस्तर लगा लिया। अंकल कह रहे थे, हमें विधाता की आज्ञा पर संतोष करना चाहिए। हम लोग जल्दी में न जाने क्या कुछ सोचने लगते हैं? आज की बात ही लें। यदि गाड़ी खराब होने से हमें देर न होती तो हम कब के शिमला पहुँच गये होते। परन्तु इससे तारा देवी के आगे वाले मोड़ से रात्रि में शिमला का अद्‌भुत और चिरस्मरणीय दृश्य देखने से हम वंचित रह जाते। शायद हमारी गाड़ी बिगड़ी ही इसीलिए थी कि हम रात्रि में शिमला की वह अनुपम छवि निहार सकें।

शब्दार्थ

रोमांचकारी = उत्तेजना उत्पन्न करने वाला
दिलकश = दिल को आकर्षित करने वाला
हरीतिमा = हरियाली
दीप्यमान = जगमगाते हुए
सहस्त्रों = हज़ारों
चिरस्मरणीय = सदा याद रहने वाली

अभ्यास

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दें :-

1. 'एक मिलियन डॉलर दृश्य' में पर्वतीय सौन्दर्य का अनूठा वर्णन है, लेख के आधार पर उत्तर दें।
2. 'एक मिलियन डॉलर दृश्य' निबंध का सार लिखें।
3. चंडीगढ़ से शिमला तक की यात्रा का वर्णन प्रस्तुत निबन्ध के आधार पर करें।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. लेखक ने एक मिलियन डॉलर दृश्य किसे कहा है ?

2. कालका से शिमला जाने का रेल यात्रा अनुभव क्या है ?

3. तारा देवी के मोड़ से निकलने पर शिमला नगर को बिजली की बत्तियों के सौन्दर्य का वर्णन लेखक ने किस प्रकार किया है ?

4. शिमला से वापस आते हुए चंडीगढ़ की बत्तियों के दृश्य का वर्णन करें।

******

21. डॉ. रवि कुमार 'अनु'

(जन्म सन् 1958)

डा. 'अनु' का जन्म सन् 1958 में पंजाब के फिरोज़पुर शहर में हुआ। इनकी सारी शिक्षा पटियाला में हुई। हिन्दी में बी. ए. आनर्स के साथ हिन्दी में ही एम. ए., एम. फिल तथा पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की। सन् 1985 में इनकी नियुक्ति पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला के हिंदी विभाग में अध्यापक के रूप में हो गई। घर के साहित्यिक वातावरण ने साहित्य के प्रति विशेष झुकाव पैदा कर दिया तथा फलस्वरूप बचपन से ही लिखना प्रारम्भ कर दिया। इनके पिता जी डा. धर्मेन्द्र कुमार गुप्त संस्कृत के उच्चकोटि के विद्वान थे। डा. रवि के लेखन का मुख्य क्षेत्र कविता रहा है। इनकी अनेक कविताएं पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं तथा आकाशवाणी जालन्धर और दूरदर्शन केन्द्र जालन्धर से समय-समय पर इनकी कविताओं का प्रसारण होता रहा है। अध्यापन के व्यवसाय ने आलोचना को भी इनका विषय बना दिया और इनके अनेक शोध-पत्र व ललित निबंध प्रकाश में आये। 'आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य की सांस्कृतिक चेतना', 'आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों की सांस्कृतिक यात्रा' तथा 'हिंदी उपन्यास: पंजाब का सांस्कृतिक सन्दर्भ'-इनकी आलोचनात्मक पुस्तकें हैं। बाल-साहित्य के अन्तर्गत भाषा विभाग, पंजाब ने इनसे विशेष रूप से दो पुस्तकें लिखवायीं- 'सत्यवादी हरिश्चन्द्र' तथा 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई'। इन्होंने पंजाब की बी. ए. प्रथम वर्ष की कक्षा के लिए 'मध्या' नामक पुस्तक का सम्पादन किया, जिसे पंजाबी विश्वविद्यालय ने प्रकाशित किया।

इनकी कविताएं डा. हुकुमचन्द्र राजपाल की पुस्तक 'हिंदी कविता: बढ़ते चरण' में संकलित हैं। कविता-लेखन में डा. अनु की अपनी पहचान बन चुकी है।

पाठ परिचय

भारत को ब्रिटिश शासन से मुक्त कराने के लिए स्वतन्त्रता के महायज्ञ में हज़ारों रणबाँकुरों ने हँसते हँसते अपने प्राणों की आहुति दे डाली ! 'मेरा रंग दे बसन्ती चोला' के तराने गाते हुए फाँसी के फंदों को चूमने वाले अमर शहीद भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव का नाम भारत का बच्चा बच्चा जानता है। महान शहीद भगत सिंह पर बहुत साहित्य उपलब्ध है। लेकिन, प्रस्तुत

निबन्ध में डॉ० रविकुमार 'अनु' ने शहीद सुखदेव के जीवन की घटनाओं को अत्यन्त भावमय शैली में प्रस्तुत करते हुए अंग्रेज़ी साम्राज्य की नींव को हिलाने में पंजाब के क्रांतिकारियों द्वारा हुए आन्दोलनों के पीछे शहीद सुखदेव की महत्वपूर्ण भूमिका पर प्रकाश डाला है। बचपन से ही सामाजिक कार्यों में अग्रसर रहने वाले सुखदेव ने भगत सिंह, चन्द्रशेखर, बटुकेश्वर दत्त, आदि राष्ट्रभक्तों के साथ अंग्रेज़ों की दमनकारी नीतियों का करारा जवाब देने के लिए बनाई योजनाओं को सफलतापूर्वक अंज़ाम दिया। सरल, सहज व रोचक शैली में लिखा गया निबंध विद्यार्थियों में मानवीय, नैतिक मूल्यों की स्थापना करते हुए राष्ट्रभक्ति की भावनाओं को प्रेरित करेगा।

शहीद सुखदेव

भारत में अंग्रेजी शासन से मुक्ति प्राप्त करने के लिए जो लम्बा संघर्ष चला, उसमें क्रांतिकारी आन्दोलन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस आन्दोलन में देश के भिन्न-भिन्न प्रदेशों के अनेक नवयुवकों ने अपने प्राण न्यौछावर करके जहाँ अपनी देश भक्ति तथा त्याग का परिचय दिया, वहीं अंग्रेज़ों को इस बात का आभास करवा दिया कि भारत में अब उनके दिन लद चुके हैं। इन्हीं क्रांतिकारियों में से एक थे सुखदेव, जिन्होंने भगत सिंह तथा राजगुरु के साथ 23 मार्च 1931 को हँसते-हँसते फाँसी का फंदा चूमा था। सुखदेव के सम्बन्ध में उस समय के प्रसिद्ध क्रांतिकारी यह बतलाते हैं कि पंजाब में जो क्रांतिकारी आन्दोलन चला, सुखदेव उसकी आत्मा थे। क्रांतिकारियों की पार्टी जो भी योजना बनाती थी, उसके पीछे मुख्य रूप से सुखदेव का दिमाग ही कार्य करता था। अत: सुखदेव के महत्व को क्रांतिकारी इतिहास में किसी भी प्रकार कम करके नहीं आँका जा सकता।

सुखदेव का जन्म 15 मई, 1907 को नौघरां लुधियाना में हुआ। इनके पिता श्री राम लाल थापर उन दिनों लायलपुर में व्यापार करते थे। इनकी माता श्रीमती रल्लीदेवी नौघरां (नौ हवेलियों का समूह) में अपने ससुराल की पैतृक हवेली में थीं। नौघरां वास्तव में किसी समय लोधी वंश का किला था, जो 1526 ई. में पानीपत की लड़ाई के बाद थापर वंश के अधिकार में आ गया था। आज तक यह उन्हीं के परिवार के पास है। इसी किले की एक हवेली में सुखदेव का जन्म हुआ था। पुत्र-जन्म की सूचना सुनकर पिता की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा और उन्होंने शीघ्र ही अपनी पत्नी को पुत्र सहित लायलपुर (अब पाकिस्तान) में बुला लिया। दुर्भाग्य वश पिता अधिक दिन तक पुत्र प्राप्ति का सुख नहीं भोग सके और 1910 में, जब सुखदेव मात्र तीन वर्ष के थे, रामलाल जी का देहान्त हो गया। माता रल्ली देवी पर मानो विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। उन्हें आश्रय देने वाला कोई नहीं था। सुखदेव उनकी गोद में और उनका छोटा भाई गर्भ में पल रहा था। ऐसे में लाला चिंता राम थापर, जो रिश्ते में सुखदेव के ताया लगते थे, ने रल्ली देवी को आश्रय दिया और अन्त तक अपने इस दायित्व-निर्वाह में कभी ढील नहीं आने दी।

सुखदेव को पारिवारिक संस्कार मुख्य रूप से अपनी माता के अतिरिक्त अपने ताया चिन्ता राम थापर से मिले। लाला जी आर्य समाज के कट्टर समर्थक थे। वे आर्य समाज के हर आयोजन में भाग लेते या संयोजन के रूप में कार्य करते। जिस समय इस संस्था ने लुधियाना में शुद्धिकरण आन्दोलन के अन्तर्गत निम्न जाति वालों को शुद्ध करके संस्कारित करने का अभियान चलाया, उस समय भी लाला जी उसके मुख्य संयोजक के रूप में व्यस्त रहे। आर्य समाज के प्रभाव के कारण ही वे हिंदू समाज के अन्ध विश्वासों, रूढ़ियों तथा कुरीतियों का विरोध करते थे। आगे चल कर उनका झुकाव राजनीति की ओर भी हो गया और वे कांग्रेस समिति के सदस्य बन गये तथा धीरे-धीरे अपनी निष्ठा और लगन के परिणाम स्वरूप कांग्रेस कमेटी लायलपुर के अध्यक्ष बन गये। बाद में उन्हें पंजाब की प्रान्तीय कमेटी के महासचिव के लिए भी मनोनीत किया गया। कांग्रेस में उनकी उग्रवादी विचारधारा के कारण सभी सदस्य उन्हें 'शेर-ए-लायलपुर' कहा करते थे। भले ही सुखदेव उन दिनों अबोध बालक थे, परन्तु उन पर अपने ताया जी की विचारधारा का गहरा प्रभाव पड़ रहा था। वे लाला जी की प्रत्येक गतिविधि को गहराई से समझने का प्रयास करते। सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक क्षेत्र में ताया जी की राष्ट्रवादी सोच ने सुखदेव में भी उन्हीं विचारों को अंकुरित किया तथा उनकी उग्रवादी सोच ने सुखदेव के भावी क्रान्तिकारी रूप का मार्ग प्रशस्त किया।

सुखदेव की माता जी भी घर के सभी बच्चों को एकत्रित करके उन्हें राष्ट्र प्रेम और देश भक्ति की कहानियाँ सुनाया करती थीं। सुखदेव उन्हें बहुत ध्यान से सुनते थे तथा अक्सर सोचते कि बड़ा होकर मैं भी देश-भक्त बनूँगा। दीपावली पर जब घर के सभी बच्चे पैसे लेकर भिन्न-भिन्न प्रकार के खिलौने लेते थे, सुखदेव सारे बाज़ार में झाँसी की रानी की तस्वीर खोजते थे। तस्वीर देखते ही उनका चेहरा चमकने लगता और घर लौटकर माँ को बहुत उत्साह से बताते- ''देख माँ रानी लक्ष्मीबाई की तस्वीर ! इसने अंग्रेज़ों से लोहा लिया था न ? इसकी बहादुरी तो देखो ? एक हाथ में तलवार और एक हाथ में घोड़े की लगाम संभाले, पीठ पर बच्चा बाँधकर यह कितनी बहादुरी से लड़ी होगी? मैं भी ऐसा ही बनूँगा।''

सुखदेव बचपन से दृढ़ स्वभाव के थे। जो एक बार सोच लिया, वह किसी भी कीमत पर करने की ठान लेते थे। एक बार घर से किसी बात पर नाराज़ होकर निकल गये। गली के नुक्कड़ पर भड़भूंजन के पास सारा दिन काम करते रहे, परन्तु घर नहीं लौटे। रात को बहुत मुश्किल से घर वाले मनाकर लाये। जितने वे जिद्दी थे, उतने ही कोमल स्वभाव के थे। किसी के दर्द को नहीं सह सकते थे। एक बार कश्मीर में एक रिक्शे वाले को अंग्रेज़ के हाथों पिटता देखकर बहुत क्रोधित हुए। तब ताया जी ने उन्हें बहुत कठिनाई से शांत किया। रंग-भेद अथवा जाति-भेद को वे नहीं स्वीकार करते थे। इस दृष्टि से ताया जी के आर्य समाजी विचारों ने उन पर गहरा प्रभाव

डाला था। जब वे सनातन धर्म स्कूल के विद्यार्थी थे, तो उन्हें पता चला कि हरिजन बच्चों को सरकारी व धार्मिक स्कूलों में प्रवेश नहीं दिया जाता। सुखदेव को यह जानकार बहुत पीड़ा हुई और परिणाम स्वरूप उन्होंने स्वयं ही लायलपुर के पास की हरिजन बस्तियों में जाकर बच्चों को पढ़ाना शुरू कर दिया। उन्हें जितना भी जेब-खर्च मिलता, सब इसी कार्य में लग जाता। उनके कोमल हृदय और सेवा-भाव का एक किस्सा यह भी है कि जब सन् 1918 में चारों ओर महामारी फैली और सर्वत्र उसके प्रकोप के कारण लोग मरने लगे, तो उन्होंने सनातन धर्म तथा आर्यसमाज स्कूल के बच्चों के साथ मिलकर एक सेवा समिति बनाई। इसका काम दवाइयाँ इकट्ठा करना और घर-घर बाँटना था। उन दिनों सुखदेव ने अपनी चिंता न करके दिन-रात लोगों की सेवा की।

अंग्रेज़ों की दमनकारी नीतियों को देखते हुए सुखदेव के मन में उनके प्रति नफरत की भावना निरंतर बढ़ती गई। उन्हीं दिनों अमृतसर में जलियांवाला बाग की घटना घटी थी, जिसमें जनरल डायर के आदेश से हज़ारों निहत्थे लोगों को गोलियों से भून दिया गया था। देश-भर में इसकी तीखी प्रतिक्रिया हो रही थी। सुखदेव का भी खून खौलता था। परन्तु पारिवारिक बंधनों के कारण विवश थे। तभी सरकार ने देश-भर में हिंसात्मक घटनाओं को देखते हुए मार्शल लॉ लागू कर दिया। सभी दफ्तरों, स्कूलों आदि में सेनाधिकारी तैनात कर दिये गये। सनातन धर्म स्कूल में भी एक अंग्रेज अफसर तैनात किया गया। उसके स्वागत के लिए स्कूल की ओर से आदेश जारी किया गया कि स्कूल के सभी बच्चे परेड में शामिल होकर उस अधिकारी को सलामी देंगे। सुखदेव भी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने अंग्रेज़ को सलामी देने से इंकार कर दिया। अंग्रेज़ अफसर ने बौखलाकर उन्हें खूब पीटा, परन्तु सुखदेव टस से मस न हुए। उन्होंने स्पष्ट रूप से घोषणा की, ''मैं अंग्रेज़ को किसी भी कीमत पर सलामी नहीं दूँगा।''

बड़े होने पर सुखदेव के स्वभाव में दृढ़ता तथा अंग्रेज़ी सत्ता के प्रति नफरत और भी बढ़ती चली गई। वे स्वभाव से दबंग हो गये और वाद-विवाद में हिस्सा लेने लगे। सन् 1922 में लायलपुर स्कूल से हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त सुखदेव ने जिद्द पकड़ ली कि वे लाहौर के नेशनल कॉलेज में दाखिला लेंगे। लाला जी को उनकी जिद्द के सामने झुकना पड़ा। यहाँ सुखदेव को अनेक महत्वपूर्ण लोगों का साथ मिला। लाला लाजपत राय स्वयं उस कॉलेज के संस्थापकों में से थे। अत: कॉलेज का एक मात्र लक्ष्य था कि उस भावी पीढ़ी को तैयार किया जाए जो आगे चलकर देश-सेवा का प्रण लें। प्रिंसिपल जुगल किशोर, भाई परमानंद, जयचन्द विद्यालंकार आदि कुछ ऐसे अध्यापक थे, जो स्वयं तो राष्ट्र सेवा में जुटे हुए थे, साथ ही कॉलेज के विद्यार्थियों में देश-प्रेम की भावना जागृत करने का प्रयास कर रहे थे। मित्रों में सुखदेव का साथ भगत सिंह के साथ था। दोनों एक साथ रहते और घंटों समाजवाद तथा

देश की स्थिति पर चर्चा करते रहते। अपने पाठ्य-क्रम की पढ़ाई तो सुखदेव कक्षा में ही करते थे। घर आकर तो वे अन्य साहित्य पढ़ते, जिसमें विश्व इतिहास, विभिन्न देशों की क्रांतियों तथा महापुरुषों की जीवनियों से सम्बंधित पुस्तकें समाहित थीं। सामाजिक कुप्रथाओं, आडम्बरों तथा सड़ी-गली राजनैतिक विचाराधाराओं से उन्हें नफरत थी। सुखदेव के दृष्टिकोण में निरन्तर आ रहे परिवर्तन को लाला चिंता राम भी अनुभव करने लगे थे। कॉलेज के दिनों में सुखदेव जब भी देर रात गये लाहौर से आते, तो कारखाने में सोने का बहाना करके रात भर गायब रहते। तब लाला जी अक्सर कहते, ''यह लड़का दूसरे रास्ते गया। अब अपना नहीं रहा।''

जिस समय सुखदेव नेशनल कॉलेज में थे, उन्हीं दिनों उनका सम्पर्क क्रांतिकारियों से स्थापित हो गया था। वास्तव में कॉलेज में इतिहास के अध्यापक जयचन्द विद्यालंकार के पास बंगाल के कुछ क्रांतिकारी प्रायः आया करते थे। सुखदेव सर्वप्रथम उन्हीं के माध्यम से क्रांतिकारियों के सम्पर्क में आये। परन्तु उनके सम्पर्क का सुखदेव तथा उसके साथियों को अधिक लाभ नहीं हो रहा था, क्योंकि अधिकतर इन लोगों से गुप्त पर्चे आदि बँटवाने का ही काम लिया जाता था। इन्हें किसी गुप्त बैठक की कार्यवाही में शामिल नहीं किया जाता था। इससे सुखदेव आदि नवयुवकों को बुरा लगता था। अतः उन्होंने 1926 में भगत सिंह तथा भगवतीचरण वर्मा से मिलकर लाहौर में 'नौजवान भारत सभा' का गठन किया। इसका वास्तविक उद्देश्य इश्तहारों, वक्तव्यों और सभाओं के द्वारा अपने विचारों को जन-साधारण तक पहुँचाना तथा उग्र राष्ट्रीय भावना जागृत करना था। इस मंच के द्वारा ये लोग उन नौजवान लोगों के लिए मार्ग खोलना चाहते थे, जो देश भक्ति के मार्ग में आगे बढ़ने के लिए उत्सुक थे। इन्होंने लोगों में राष्ट्र-चेतना जागृत करने के लिए सभा की ओर से करतार सिंह सराभा का शहीदी दिवस बड़ी धूम-धाम से मनाया। सुखदेव आदि के इस प्रकार के प्रयासों को देखते हुए उस युग के कुछ प्रमुख क्रांतिकारियों ने 'नौजवान भारत सभा'को अपना समर्थन भी दिया, परन्तु इसके बावजूद भी 1926-27 तक अधिक सफलता नहीं मिल पाई।

इस बीच भगत सिंह देश के अन्य क्रांतिकारी संगठनों से संबंध स्थापित करने के लिए कानपुर, दिल्ली आदि शहरों में घूम आये थे और सुखदेव निरंतर लायलपुर और लाहौर के बीच भागते हुए इस सभा के भावी कार्यक्रम बनाने में व्यस्त रहे। उनके प्रयासों का शुभ परिणाम यह हुआ कि ये लोग 8-9 सितम्बर, 1928 दिल्ली के फिरोज़शाह कोटला के किले के खण्डहरों में उत्तर भारत के क्रांतिकारियों की एक गुप्त बैठक बुलाने में सफल हो गये इसमें देश के विभिन्न प्रान्तों से अनेक मुख्य क्रांतिकारियों ने भाग लिया। यद्यपि इस बैठक में चन्द्रशेखर आज़ाद नहीं आ सके थे, उन्होंने अपने एक साथी शिव वर्मा के माध्यम से बैठक में लिये जाने वाली सभी प्रस्तावों के लिए अपनी पूर्व सहमति भेज दी थी। इस बैठक कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों पर सर्वसम्मति

से फैसले लिये गए, जिनमें सबसे पहला फैसला सुखदेव, भगत सिंह आदि के सुझाव पर यह लिया गया कि सभी क्रांतिकारी संगठनों की एक केन्द्रीय समिति निर्मित की गई तथा दल को नया नाम दिया गया – 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी'। इसका उद्देश्य केवल आज़ादी की लड़ाई तक ही सीमित न मानकर आज़ादी के बाद समाज से शोषण की प्रक्रिया को समाप्त करना भी स्वीकार किया गया। चन्द्रशेखर आज़ाद को पार्टी का कमाण्डर-इन-चीफ बनाया गया। इसी प्रकार सुखदेव को पंजाब प्रांत का प्रमुख संगठनकर्त्ता घोषित किया गया तथा भगत सिंह और विजय कुमार सिन्हा को संगठन की ओर से विभिन्न प्रान्तों के कार्यकर्त्ताओं में परस्पर सम्पर्क स्थापित करने का कार्य भार सौंपा गया। एक अन्य महत्तवपूर्ण प्रस्ताव के अंतर्गत वहां पर यह फैसला भी लिया गया कि उन दिनों भारत का दौरा कर रहे साइमन कमीशन पर बम फेंक कर अपना विरोध प्रकट किया जाए।

पंजाब को 'नौजवान भारत सभा' को संगठन की केन्द्रीय समिति ने निर्देश दिया कि पंजाब का दौरा कर रहे साइमन कमीशन के सदस्यों के विरोध में प्रदर्शन करें। फलस्वरूप 20 अक्तूबर, 1928 को लाहौर स्टेशन पर बहुत भारी संख्या में प्रदर्शनकारी एकत्रित हुए। इनका नेतृत्व बुजुर्ग नेता पंजाब केसरी लाला लाजपतराय के हाथ में था। उल्लेखनीय है कि उन दिनों 'नौजवान भारत सभा' की क्रांतिकारी गतिविधियां गुप्त रूप में कार्य करती थीं। इसीलिए कांग्रेसी नेता इस प्रदर्शन का नेतृत्व कर रहे थे। सुखदेव, भगवतीचरण आदि लाला लाजपतराय के साथ खड़े थे। जनता की भारी भीड़ देखकर पुलिस सुपरिंटेंडेंट स्कॉट बौखलाए हुए थे। उन्होंने जब देखा कि जन-समूह को पीछे धकेलना असंभव है, तो उन्होंने लाठी प्रहार का हुक्म दे दिया। डी. एस. पी. सांडर्स ने स्वयं लाठी द्वारा लाला लाजपतराय पर बहुत क्रूरता से प्रहार किये। लाला जी घायल होकर गिर पड़े और उन्होंने लाठी प्रहार का विरोध करते हुए प्रदर्शन को स्थगित करने का आदेश दे दिया। लाला जी की इस घोषणा ने सुखदेव तथा उनके साथियों को हतोत्साहित कर दिया। परंतु साथ ही उन्हें उन अंग्रेज़ी अफसरों पर भी क्रोध आया जो इस घटना के लिए ज़िम्मेवार थे। कुछ भी हो, लाला लाजपतराय थे तो भारतीय नेता ही, जिन पर प्रहार का अर्थ था – पूरे राष्ट्र का अपमान। अत: क्रांतिकारियों ने उसी दिन इस राष्ट्रीय अपमान का बदला लेने का मन बना लिया। सुखदेव को इस कार्य की योजना बनाने का काम सौंपा गया।

सुखदेव इस कार्य को इस ढंग से करना चाहते थे कि जनता की सहानुभूति भी उन्हें प्राप्त हो सके। वे इस बात के लिए बहुत सतर्क रहते थे कि क्रांतिकारियों को जनता आतंकवादी न समझ ले और न ही सामान्य लूट-मार करने वाले अपराधी। इसीलिए वह 'प्रोपेगंडा एक्शन्स' में विश्वास रखते थे। वह उसी एक्शन में हाथ डालना उचित समझते थे, जिससे जनता के बीच अच्छा प्रचार हो सके और लोग जान सकें कि क्रांतिकारियों का असल उद्देश्य देश को आज़ाद

कराना है, न कि व्यर्थ का आतंक फैलाना। 20 अक्तूबर के प्रदर्शन में लाला जी पर लाठी प्रहार ने सारे देश को विचलित किया था और जनता अंदर ही अंदर सुलग रही थी। अचानक उन्हीं दिनों घायल लाला जी 17 नवम्बर को चल बसे। इससे जनता का क्रोध और भी भड़क उठा। क्रांतिकारियों के लिए कार्यवाही का यही उपयुक्त समय था। अत: सुखदेव ने सारी योजना बना कर पुलिस सुपरिंटेंडेंट स्कॉट की दिनचर्या पर दृष्टि रखने के लिए जय गोपाल नामक साथी को तैनात कर दिया। इसी के आधार पर चन्द्रशेखर, भगत सिंह, राजगुरु और जयगोपाल 17 दिसम्बर 1928 को योजनानुसार स्कॉट का वध करने के लिए निकले, परन्तु जयगोपाल की गलती के कारण सांडर्स को स्कॉट समझकर गोली मार दी गई। यद्यपि क्रांतिकारियों की दृष्टि में यह अक्षम्य अपराध था, परन्तु क्योंकि सांडर्स ने ही स्कॉट के आदेश की पालना करते हुए उस दिन लाला जी पर क्रूर प्रहार किये थे, अत: उसके वध को ईश्वरीय न्याय मानकर स्वीकार कर लिया गया। इस सारी कार्यवाही के दौरान सुखदेव को पीछे से अपने ठिकाने पर से सभी हथियारों को दूसरी जगह पहुँचाना था, क्योंकि हत्याकाण्ड के बाद पुलिस के छापे का भय था। यह एक महत्वपूर्ण कार्य था, जिसे उन्होंने अकेले ही ज़िम्मेदारी से पूर्ण किया।

सांडर्स वध ने देश में हलचल पैदा कर दी। अंग्रेज़ों के लिए यह किसी तमाचे से कम नहीं था। उधर भारतीय जनता ने अपने क्रांतिकारी भाइयों के इस कार्य पर गर्व अनुभव किया। अंग्रेज़ों से भारत के अपमान का बदला ले लिया गया था। चारों ओर पुलिस के छापे पड़ने लगे। भगतसिंह तथा राजगुरु भेष बदलकर दो दिन बाद आगरा के लिए निकल गये तथा चन्द्रशेखर आज़ाद और पं. किशोरी लाल को सुखदेव ने अपने माता जी के साथ कुछ दिन बाद दिल्ली भेज दिया। पीछे सुखदेव को बहुत से काम अकेले ही पूरे करने थे। उन्होंने भाग-दौड़ करके हथियार तथा बम बनाने की सामग्री एकत्रित करनी प्रारम्भ कर दी। उन्हें भी लगता था कि अब बड़ी लड़ाई लड़नी होगी। इस बीच मार्च 1929 में दल की केन्द्रीय समिति की बैठक हुई। इसमें दिल्ली असेम्बली में बम फेंकने का निर्णय लिया गया, क्योंकि इस असेम्बली में सरकार दो दमनकारी कानून पास करने वाली थी। इनमें से एक के द्वारा सरकार कानून बनाकर मज़दूरों से हड़ताल करने का अधिकार छीनना चाहती थी तथा दूसरे के द्वारा समस्त राष्ट्रीय आन्दोलनों को कुचलना चाहती थी। संभावना थी कि असेम्बली के सदस्यों द्वारा विरोध किये जाने की सूरत में वायसराय अपने विशेष अधिकारों का उपयोग करते हुए इन्हें पास कर देंगे। अत: एक ही मार्ग शेष बचा था। कि बम गिराकर असेम्बली की कार्यवाही को बीच में ही रोक दिया जाये। इस कार्य के लिए सुखदेव के विशेष अनुग्रह से भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त को चुना गया। वास्तव में सुखदेव चाहते थे कि बम गिराने के बाद जब क्रांतिकारियों की गिरफ्तारी हो तो पुलिस और जनता के सम्मुख अपने तर्क को वज़नदार बना कर प्रस्तुत कर सकने वाला आदमी ही इस

कार्यवाही में भाग ले और भगत सिंह से बढ़कर उनकी दृष्टि में अन्य कोई साथी ऐसा नहीं था। अतः उन्होंने अनुग्रह करके भगत सिंह के लिए यह कार्य निश्चित करवाया। परिणाम भी सुखदेव को ही इच्छानुरूप सामने आया। 8 अप्रैल, 1929 को असेम्बली में बम गिराकर भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त ने अपनी गिरफ्तारी दे दी। इस सन्दर्भ में उन्होंने अपने बयानों में जिस तर्क-पूर्ण ढंग से अपने कृत्य को उचित व आवश्यक ठहाराया, उसे पढ़कर देश एक बार फिर उनके इस कार्य से गौरवान्वित अनुभव करने लगा। उधर सुखदेव अपने सबसे प्रिय मित्र से बिछुड़ने के कारण उदास तो थे, परन्तु अपनी योजना के सफल होने पर संतुष्ट भी थे।

असेम्बली बम काण्ड के कुछ ही दिन बाद 15 अप्रैल, 1929 को सुखदेव भी अपने कुछ साथियों सहित लाहौर बम फैक्टरी पर डाले गये छापे के दौरान पकड़े गये। जिस समय पुलिस ने फैक्टरी पर छापा मारा, उस समय सुखदेव के पास कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण दस्तावेज थे, जिन्हें उन्होंने तुरन्त मुँह में डाल कर निगल लिया और महत्वपूर्ण जानकारी अंग्रेज़ी पुलिस के हाथों में जाने से बच गई।

सुखदेव को कैद करके लाहौर भेज दिया गया। वहाँ उन पर मुकद्दमा चलाते हुए यह सिद्ध किया गया कि सुखदेव सारे क्रांतिकारी षड्यन्त्रों के सरगना थे, जबकि भगतसिंह उनका दायां हाथ। इसी अपराध के लिए अदालत ने उन्हें 7 अक्तूबर 1930 को फाँसी की सज़ा सुना दी। उनके साथ भगत सिंह और राजगुरु को भी फाँसी देने का फैसला सुनाया गया। 23 मार्च 1931 को अंग्रेज़ सरकार ने जनता के कड़े विरोध के बावजूद इन तीनों देश भक्तों को फाँसी दे दी। सुखदेव, भगत सिंह और राजगुरु ने अपनी शहीदी द्वारा अंग्रेज़ सरकार की नींव हिला दी। परिणामस्वरूप, वह सरकार अधिक दिन तक भारत में राज्य नहीं कर सकी और 15 अगस्त, 1947 को भारत को आज़ाद करना पड़ा।

अभ्यास

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दें :-

1. 'क्रांतिकारी इतिहास में सुखदेव का महत्त्व किसी भी प्रकार कम करके नहीं आँका जा सकता।' लेखक के इस कथन के आधार पर सुखदेव के गुण लिखें।
2. सुखदेव की राष्ट्रवादी सोच पर किन-किन व्यक्तियों ने अपना गहरा प्रभाव दिखाया। पाठ के आधार पर उत्तर दें।
3. 'शहीद सुखदेव' निबन्ध का सार लिखें।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. सुखदेव का बचपन कहाँ बीता ? उन्होंने कहाँ-कहाँ शिक्षा प्राप्त की ?
2. दीपावली पर झाँसी की रानी की तस्वीर खरीदने पर उन्होंने अपनी माँ से क्या कहा ? इससे उनके चरित्र की किस विशेषता का पता चलता है ?
3. निबन्ध के आधार पर उनके द्वारा किये गये सामाजिक कार्यों का उल्लेख करें।
4. स्कूल से आये अंग्रेज़ अफसर को उन्होंने सलामी क्यों नहीं दी?
5. लाहौर के नेशनल कॉलेज में पढ़ते हुए सुखदेव का सम्पर्क किन-किन क्रांतिकारियों से हुआ ? इससे उनके दृष्टिकोण में क्या परिवर्तन आया ?
6. 'नौजवान भारत सभा' की स्थापना का क्या उद्देश्य था ?
7. क्रांतिकारियों की बैठक में कौन-कौन से महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए गए ?
8. लाला लाजपत राय की मृत्यु का बदला लेने में सुखदेव की भूमिका क्या थी ?
9. दिल्ली असेम्बली में बम फेंकने की योजना क्यों बनाई गई ?
10. सुखदेव की गिरफ़्तारी कैसे हुई? उन्हें फाँसी क्यों दी गई ?

******

22. मोहन राकेश

पंजाब के बहुमुखी प्रतिभा के धनी लेखकों में मोहन राकेश का नाम महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने साहित्य की जिस भी विधा में पदार्पण किया, उसमें अभूतपूर्व सफलता पाई। इनका जन्म जनवरी 8, 1925 ई० को अमृतसर में हुआ था। इन्होंने 1944 में संस्कृत में एम. ए. तथा 1952 में हिंदी में प्रथम श्रेणी में एम. ए. पास किया। प्रारम्भ में इन्होंने विभिन्न कॉलेजों में अध्यापन का कार्य किया। फिर ये सारिका नामक कहानी की पत्रिका के संपादक बन गये। सन् 1962 ई० से ये स्वतंत्र लेखन करने लगे। सन् 1973 ई० में अचानक हृदयगति रुक जाने से इनका देहावसान हो गया।

रचनाएँ :- इनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं :-

कहानी संग्रह :- 'नये बादल', 'जानवर और जानवर', 'एक और ज़िंदगी', 'मेरी प्रिय कहानियाँ'।

नाटक :- आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, आधे अधूरे, अंडे के छिलके।

उपन्यास :- अंधेरे बन्द कमरे में, न आने वाला कल, स्याह और सफैद, काँपता हुआ दरिया, अंतराल, नीली रोशनी की बाँहें, कई एक अकेले, गुंझल।

निबंध :- परिवेश (इसमें इनके द्वारा लिखित 21 निबंध हैं।)

संस्मरण :- आखिरी चट्टान, ऊँची झील, पतझड़।

मोहन राकेश ने अपने जीवन में जो विडम्बनाएँ, उतार-चढ़ाव देखे, उनका प्रभाव उनके साहित्य में साफ देखा जा सकता है। इनकी भाषा सरल, सुबोध एवं स्पष्ट है व विषय के अनुरूप रही है। उनकी अद्वितीय देन का हिंदी जगत सदैव ऋणी रहेगा।

पाठ-परिचय

'विज्ञापन युग' मोहन राकेश का एक व्यंग्य निबंध है। निबंध लेखक के गहन चिन्तन, सूक्ष्म निरीक्षण और पैने अनुभव का परिचायक है। मोहन राकेश ने इस निबंध में बताया है कि आज विज्ञापन कला इतनी विकसित हो गई है कि कोई भी चीज़ ऐसी नहीं है जो किसी न किसी चीज़ का विज्ञापन न हो। महत्त्व की कलाकृत्तियाँ, साहित्य, सौंदर्य और यहाँ तक कि व्यक्तिगत ज़िन्दगी भी व्यक्तिगत नहीं रह गई है। लेखक को लगता है कि भविष्य में शिक्षा, विज्ञान,

संस्कृति और साहित्य का उपयोग केवल विज्ञापन के लिए ही रह जायेगा। जो क्षेत्र विज्ञापन से अछूते हैं, विज्ञापन कला आने वाले समय में उन पर भी साधिकार छा जायेगी।

विज्ञापन युग

मेरे पड़ोसियों की मुझपर ऐसी कृपा है कि रात को सोने तक और सुबह उठने के साथ ही मुझे गज़लें, भजन और गीत तथा उनके साथ-साथ चाय, तेल और सिरदर्द की टिकियों के विज्ञापन सुनने पड़ते हैं। अब तो मुझे ये विज्ञापन सुनने की ऐसी आदत हो गई है कि अन्यत्र भी कहीं मैं ग़ालिब की गज़ल सुनता हूँ, या सूरदास का भजन सुनता हूँ, या कोई अच्छा-सा गीत सुनता हूँ, तो साथ मेरे दिमाग में अपने-आप ये शब्द गूँजने लगते हैं - क्या आपके सिर में दर्द रहता है? सिर-दर्द से छुटकारा पाइए ...... की एक गोली लीजिए-सिर-दर्द गायब ।

परिणाम यह है कि अब मेरे लिए कोई ग़ज़ल ग़ज़ल नहीं रही, कोई गीत गीत नहीं रहा, सब किसी-न-किसी चीज़ का विज्ञापन बन गए हैं। दिन-भर ये गीत और विज्ञापन मेरा पीछा करते रहते हैं। पहले बहुत मीठे गले से 'रहना नहिं देश बिराना है' की लय और उसके तुरंत बाद-क्या आपके शरीर में खुजली होती है ? खुजली का नाश करने के लिए एक ही रामबाण औषधि है .... कर लें भगत कबीर क्या करते हैं। खुजली कंपनी उनकी जिस रचना पर चाहे अपनी मोहर चस्पा कर सकती है।

और बात गीतों -गज़लों तक ही सीमित नहीं है। मुझे लगता है कि मेरे चारों ओर हर चीज़ का एक नया मूल्य उभर रहा है, जो उस के आज तक के मूल्य से सर्वथा भिन्न है और जो उसके रूप को मेरे लिए बिल्कुल बदले दे रहा है। कोई चीज़ ऐसी नहीं जो किसी-न-किसी चीज़ का विज्ञापन न हो। अजंता के चित्र और एलोरा की मूर्तियाँ कभी अछूती कला का उदाहरण रही होंगी, परंतु आज उस कला को एक नई सार्थकता प्राप्त हो गई है। उन मूर्तियों का केश-सौन्दर्य आज मुझे एक तेल की शीशी की याद दिलाता है, उनकी आँखें एक फार्मेसी का विज्ञापन प्रतीत होती हैं, और उनका समूचा कलेवर एक-पेट्रोल कंपनी की कलाभिरुचि को प्रमाणित करता है। जिन हाथों ने उन कलाकृतियों का निर्माण किया था, वे हाथ भी आज एक बिस्कुट कंपनी की विकास-योजना के विज्ञापन के रूप में सार्थक हो रहे हैं।

देश के कोने-कोने में बिखरे हुए जितने मंदिर हैं, जितने पुराने किले और खंडहर हैं, जितने स्तंभ और स्मारक हैं, वे सब इसीलिए हैं कि लोगों में यातायात की रुचि जाग्रत हो, पर्यटन-व्यवसाय को प्रोत्साहन मिले, विदेश से लोग आकर उनकी तस्वीरें लें और अपनी प्रियमताओं के पास भेजें। मीनाक्षी और रामेश्वरम् के शिखर और खजुराहो के कक्ष इस दृष्टि से भी उपयोगी हैं

कि वे एक विशेष ब्रांड के सीमेंट की मज़बूती को व्यक्त करने के प्रतीक बन सकें। कश्मीर की सारी पार्वत्य सुषमा, वहाँ की नवयुवतियों का भाव-सौन्दर्य और वहाँ के कारीगरों की दिन-रात की मेहनत, ये सब इस बात को विज्ञापित करने के लिए हैं कि सफेद रंग का वह शहद जो बंद डिब्बों में मिलता है, सबसे अच्छा शहद है। बर्नार्ड शा के नाटक हमें यह बताने के लिए छापे जाते हैं कि ब्रिटेन के किस प्रेस में छपाई सबसे अच्छी होती है, प्रशांत सागर में अणुबम हमें इस बात की चेतावनी देने के लिए गिराए जाते हैं कि जब तक हम अपने लिए जीवन बीमे की पालिसी न ले लें तब तक हमारे बच्चों का भविष्य सुरक्षित नहीं है और भारत और पाकिस्तान में कश्मीर के लिए लड़ाई सिर्फ इसलिए होती है कि वहाँ के सेबों का मुरब्बा बहुत अच्छा होता है, जिसे सिर्फ एक ही कपंनी तैयार करती है।

विधाता ने इतनी बारीकबीनी से यह जो धरती बनाई है और मनुष्य ने विज्ञान के आश्रय से उसमें जो चार चाँद लगाए हैं, वे इसलिए कि विज्ञापन-कला के लिए उपयुक्त भूमि प्रस्तुत की जा सके। उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक कोई कोना ऐसा न बचा होगा जिसका किसी-न-किसी चीज़ के विज्ञापन के लिए उपयोग न किया जा रहा हो। हर चीज़, हर जगह अपने अलावा किसी भी चीज़ और किसी भी जगह का विज्ञापन हो सकती है। गेहूँ की फसल एक कपड़े की मिल का विज्ञापन है, क्योंकि नई फसल से प्राप्त हुए नए पैसे का एक ही उपयोग है कि उससे कपड़ा खरीदा जाए। कपड़े की मिल डबल रोटी की बेकरी का विज्ञापन है, क्योंकि मिल में काम करने वाले तभी काम पर जा सकते हैं जब वे डबल रोटी खा चुकें और बेकरी, वाटर प्रूफ जूतों का विज्ञापन है। क्योंकि जब तक वाटर प्रूफ जूते न होंगे, तब तक बारिश में इंसान डबल रोटी जैसी साधारण चीज़ भी प्राप्त नहीं कर सकता। बहुत-सी चीज़ें एक-दूसरे का विज्ञापन हैं। फूल इत्र की शीशी का विज्ञापन है, इत्र की शीशी फूलों का विज्ञापन है। पत्र लेखक का विज्ञापन है, लेखक पत्र का विज्ञापन है। सौन्दर्य शृंगार-प्रसाधनों का विज्ञापन है, और शृंगार-प्रसाधन सौन्दर्य के विज्ञापन हैं।

मतलब यह कि जहाँ जाएँ, जिधर जाएँ, जहां-जहां रहें, जैसे रहें, इन विज्ञापनों की लपेट से नहीं बच सकते। घर में बंद होकर बैठ जाएँ तो विज्ञापन रोशनदानों के रास्ते हवा में तैरते आते हैं -क्या आज आपने दाँत साफ किए हैं? सवेरे उठते ही सबसे पहले क्लोरोफिल वाले टूथपेस्ट से दाँत साफ कीजिए। याद रखिए दाँतों को रोगों से बचाने के लिए यही एक साधन है। घर से निकलें, तो हर दोराहे, चौराहे और सड़क के खंभे पर विज्ञापन-खतरे से सावधान, धोखे से बचिए-इसके पढ़ने से बहुतों का भला होगा। अखबार उठाएँ, विज्ञापन। पुस्तक उठाएँ, विज्ञापन।

बस में बैठें, विज्ञापन। क्या आपका दिल कमज़ोर है ? क्या आपका जिस्म टूटता रहता है ? क्या आपके सिर के बाल झड़ रहे हैं? क्या आपके घर में झगड़ा रहता है ? गोया कि आपकी व्यक्तिगत जिंदगी बिल्कुल अपनी नहीं है – उसे केवल इन विज्ञापनदाताओं के परामर्श से ही जिया जा सकता है।

विज्ञापन-कला जिस तेज़ी से उन्नति कर रही है, उससे मुझे भविष्य के लिए और भी अंदेशा है। लगता है, ऐसा युग आने वाला है जब शिक्षा, विज्ञान, संस्कृति और साहित्य, इनका केवल विज्ञापन-कला के लिए ही उपयोग रह जाएगा। वैसे तो आज भी इस कला के लिए इनका खासा उपयोग होता है। मगर आनेवाले युग में यह कला, दो कदम और आगे बढ़ जाएगी। विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय के दीक्षांत महोत्सव पर जो डिग्रियाँ दी जायेगी उनके निचले कोने में छपा रहेगा – ''आपकी शिक्षा के उपयोग का एक ही मार्ग है। आज ही आयात-निर्यात का धंधा प्रारंभ कीजिए। मुफ्त सूची के लिए लिखिए'' हर ने आविष्कारक का चेहरा मुस्कराता हुआ टेलीविज़न पर आकर कुछ इस तरह निवेदन करेगा -''मुझे यह कहते हुए हार्दिक प्रसन्नता है कि मेरे प्रयत्न की सफलता का सारा श्रेय रबड़ के टायर बनाने वाली कंपनी को है, क्योंकि उन्हीं के प्रोत्साहन और प्रेरणा से मैंने इस दिशा में कदम बढ़ाया था'' विष्णु के मंदिर खड़े होंगे, जिनमें संगमरमर की सुंदर प्रतिमा के नीचे पट्टी लगी होगी - ''याद रखिए, इस मूर्ति और इस भवन के निर्माण का श्रेय लाल हाथी के निशान वाले निर्माताओं को है। वास्तुकला संबंधी अपनी सभी आवश्यकताओं के लिए लाल हाथी का निशान कभी मत भूलिए।''

और ऐसे-ऐसे उपन्यास हाथ में आया करेंगे जिनकी सुंदर चमड़े की जिल्द पर एक ओर बारीक अक्षरों में छपा होगा - ''साहित्य में अभिरुचि रखने वालों को इक्का मार्का साबुन बनाने वालों की एक और तुच्छ भेंट।'' और बात बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक पहुँच जाएगी कि जब एक दूल्हा बड़े अरमान से दुल्हन ब्याहकर घर लाएगा और घूँघट हटाकर उसके रूप की प्रशंसा में पहला वाक्य कहेगा, तो दुल्हन मधुर भाव से आँख उठाकर हृदय का सारा दुलार शब्दों में उँड़ेलती हुई कहेगी - ''बताऊँ, मैं इतनी सुंदर क्यों दिखाई देती हूँ ? यह इसलिए कि मैं रोज प्रात: उठकर नौ सौ इक्यावन नंबर के साबुन से नहाती हूँ। कल से आप भी घर में नौ सौ इक्यावन नंबर का साबुन रखिए। इसकी सुमधुर गंध सारा दिन दिमाग को ताज़ा रखती है और इसके मुलायम झाग से त्वचा बहुत कोमल रहती है। इसकी बड़ी टिकिया खरीदने से पैसे की भी किफायत होती है।''

जहाँ तक विज्ञापन के लिए जगह का सवाल है, बहुत-सी जगहें हैं जिनका अभी तक उपयोग नहीं किया जा सका है। विज्ञापन-कला की दृष्टि से सब चीज़ों का आपस में अन्योन्याश्रित संबंध है, इसलिए दवा की शीशियों में मक्खन के डिब्बों के विज्ञापन होने चाहिएँ और मक्खन के डिब्बों में दवा की शीशियों के। चित्र-गैलरियों में चित्रों के अतिरिक्त तेल के इश्तहार टाँगे जाने चाहिए और तेल की बोतलों पर चित्रकला प्रदर्शनियों की सूचनाएँ चिपकाई जानी चाहिए। कंबलों और दुशालों में चाय और कोको के इश्तहार बुने जा सकते हैं। नमदे और गलीचे रबड़सोल के जूतों के विज्ञापन के आदर्श साधन हो सकते हैं। बैंकों की दीवारों पर लाटरी और रेस-कोर्स के विज्ञापन लिखे जा सकते हैं। रेस-कोर्स में बचत की स्कीमों का विज्ञापन दिया जा सकता है। रेल और हवाई जहाज के टिकटों पर बीमा कंपनियों का विज्ञापन हो सकता है और अस्पतालों की दीवारों पर वैवाहिक विज्ञापन लगाए जा सकते हैं।

यह तो आने वाले कल की बात है, पर आज भी स्थिति यह है कि मुझे हर जगह विज्ञापन-ही-विज्ञापन दिखाई देता है। जहाँ विज्ञापन हो वहाँ भी, और जहाँ न हो वहाँ भी। मेरा दिमाग हर चेहरे, हर आवाज़ और हर नाम का संबंध किसी-न-किसी विज्ञापन के साथ जोड़ देता है। सुबह उठकर सामने की दुकान के लड़के को चाय लाने के लिए कहता हूँ, तो चाय का नाम लेते ही मुझे नीलगिरि की सुंदरी का ध्यान हो आता है जिसका चेहरा मैं रोज़ अखबार में देखता हूँ। नीलगिरि के नाम से मुझे तुरंत कॉफी-प्रदेश की ढलानें याद आ जाती हैं। साथ ही एक बुड्ढे राजपूत का चेहरा मेरी आँखों के सामने उभरने लगता है और मैं अनायास अपने को बुदबुदाते पाता हूँ – ''यह अच्छी कॉफी और यह अच्छा चेहरा दोनों भारतीय हैं।''

खैर, लड़का दो मिनट में चाय की प्याली लेकर मुस्कराता हुआ मेरे सामने आ खड़ा होता है। उसके अधखुले होंठों के बीच उसके पतले सफेद दाँतों को देखकर मुझे लगता है कि वह शुद्ध क्लोरोफिल मुस्कराहट मुस्करा रहा है। अमरीकी मुहावरे में इसे मिलियन डालर स्माइल कहते हैं और वह लड़का है कि रोज़ छह पैसे की चाय मुझे पकड़ाता हुआ, मिलियन डालर की मुस्कराहट मुस्करा जाता है। मेरी कई बार इच्छा होती है कि लड़के को किसी क्लोरोफिल कंपनी के हवाले कर दूँ, जिससे उसकी मुस्कराहट का सही मूल्य दुनिया के सामने आ सके और जब मैं यह सोच रहा होता हूँ, तो ईथर में तैरती हुई स्त्रीकंठ की सुमधुर आवाज़ सुनाई देती है – ''क्या आपका लिवर ठीक काम नहीं करता? आपका लिवर ठीक रखने के लिए आज से ही लिवर-इमल्शन लीजिए।''

मुझे ठीक मालूम नहीं कि मेरा लिवर ठीक काम करता है या नहीं, पर मैं किसी बच्चे को किलकारी मारकर हँसते देखता हूँ, तो मुझे लाल डिब्बे में बंद बेबी मिल्क की याद हो जाती है, किसी सुंदर दृश्य को देखता हूँ तो उनतीस रुपए वाला कैमरा मेरी आँखों के आगे घूमने लगता है। विवाह-मंडप के पास खड़े होकर मुझे राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्र की याद ज़रूर आती है। दफ्तर की नई टाइपिस्ट रोज़ी का समूचा व्यक्तित्व मुझे लाल रंग की लिपस्टिक का विज्ञापन प्रतीत होता है और किसी से कहिएगा नहीं, पर हालत यहाँ तक पहुँच गई है कि अब मैं खुद आइने के सामने खड़ा होता हूँ तो लगता है कि अपना चेहरा नहीं सिल्वर सॉल्ट का विज्ञापन देख रहा हूँ।

शब्दार्थ

चस्पा	=	चिपकाना, अधिकार कर लेना
पार्वत्य सुषमा	=	पर्वतों का प्राकृतिक सौन्दर्य
विधना	=	विधाता, ईश्वर
दीक्षांत महोत्सव	=	विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित किया जाने वाला समागम जिसमें उत्तीर्ण विद्यार्थियों को डिग्रियाँ दी जाती हैं।
अन्योन्याश्रित	=	एक दूसरे पर निर्भर

अभ्यास

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दें :-

1. 'विज्ञापन युग' निबंध में लेखक ने विज्ञापन कला पर करारा व्यंग्य किया है निबंध के आधार पर उत्तर दें।
2. 'विज्ञापन युग' निबंध का सार लिखें।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. विज्ञापन ने व्यक्तिगत जीवन में किस प्रकार प्रवेश कर लिया है ? पाठ के आधार पर उत्तर दें ।
2. लेखक के अनुसार ऐतिहासिक महत्त्व की कलाकृतियों को नयी सार्थकता कैसे प्राप्त हुई है ?

3. हर चीज़, हर जगह अपने अलावा किसी भी चीज़ और किसी भी जगह का विज्ञापन हो सकती है। लेखक के इस कथन में निहित व्यंग्य को स्पष्ट करें।

4. शिक्षा, विज्ञान, संस्कृति और साहित्य जैसे क्षेत्रों में विज्ञापन कला ने अपनी धाक किस प्रकार जमा ली है ?

******

कहानी भाग

23. मुंशी प्रेमचन्द
(जन्म सन् 1880-निधन 1936)

मुंशी प्रेमचन्द हिंदी कथा-लेखन में एक सम्राट लेखक के रूप में जाने जाते हैं। हिंदी कथा-साहित्य को एक नवीन दिशा प्रदान करने का श्रेय इन्हें प्राप्त हुआ। इसीलिए हिंदी कथा विकास में प्रेमचन्द युग का अपना महत्त्व है। हिंदी को लोकप्रिय बनाने में प्रेमचन्द के कथा-लेखन की विशेष भूमिका है। इनकी रचनाओं के अनुवाद अनेक भाषाओं में हो चुके हैं।

प्रेमचंद इनका उपनाम है। इनका वास्तविक नाम धनपत राय था। प्रेमचन्द जी का जन्म 31 जुलाई सन् 1880 ई० को बनारस के निकट लमही ग्राम में हुआ था। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा अपने गाँव में ही प्राप्त की और इंटर तक की शिक्षा क्वींस कॉलेज, काशी में ली। इन्होंने साहित्य लेखन सबसे पहले उर्दू में किया। उसके बाद वे हिंदी में आये। हिंदी तथा उर्दू के लेखक प्रेमचन्द से ही हिंदी कथा साहित्य का यथार्थ विकास होता है। इन्होंने हिंदी में आधुनिक उपन्यास कला का बीज बोया। इनके उपन्यासों में रंगभूमि, कर्मभूमि, सेवा सदन, निर्मला, गबन और गोदान आदि उल्लेखनीय हैं। इन्होंने लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखी हैं। इनमें नव जागरण, राष्ट्रीय भावना, समाज सुधार और रूढ़ि विरोध आदि को देखा जा सकता है। इनकी कहानियों की सर्वप्रमुख विशेषता मानव स्वभाव के सूक्ष्म भावों को चित्रित करना है। शिल्प की दृष्टि से इनकी कहानियां सरल तथा मर्मस्पर्शी हैं। कफन, पंच-परमेश्वर, पूस की रात, शतरंज के खिलाड़ी, बूढ़ी काकी, बड़े भाई साहब आदि कहानियाँ इनकी उत्कृष्ट कहानियों में से हैं। कहानी-लेखन में प्रेमचंद जी को अद्भुत सफलता मिली है। इनकी कहानियाँ 'मान सरोवर' आठ भागों में संकलित हैं।

प्रेमचन्द की पहली रचना सन् 1907 ई० में उर्दू मासिक 'ज़माना' में छपी थी। हिंदी में सन् 1916 में उनकी पंच परमेश्वर कहानी छपी।

अंग्रेज़ी शासन काल में धनपतराय नवाब राय के नाम से लिखते थे। बाद में इन्होंने प्रेमचन्द नाम अपनाया। इनको यह इसलिए करना पड़ा था, चूंकि ये सरकारी नौकर थे। सरकारी नौकरी के अपने नियम थे। कुछ भी लिखने के लिए अनुमति लेनी पड़ती थी। नौकरी करते हुए प्रेमचन्द ने 'सोज-ए-वतन' नामक संग्रह की कहानियाँ लिखीं और छपवाई थीं, जिन्हें अंग्रेज़ सरकार ने जब्त किया था। बाद में इन्होंने नौकरी छोड़ दी और स्वतंत्र रूप से लेखन का कार्य शुरू किया।

प्रेमचन्द जी ने साहित्य छापने और जीवन निर्वाह के लिए एक प्रेस खोल लिया था। इन्होंने कई महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं का प्रकाशन और सम्पादन भी किया।

प्रेमचन्द के सम्पूर्ण कथा-साहित्य की विशेषता यह है कि इन्होंने आम आदमी के दु:ख दर्द और उनकी अन्य समस्याओं को विस्तार से प्रस्तुत किया है। इन्होंने स्वयं अभाव का जीवन व्यतीत किया था और अपने आसपास आम आदमी की बेबसी को एक भावुक कथा-लेखक के रूप में समझा था। इसीलिए प्रेमचन्द का कथा-साहित्य आम आदमी-शहर और गाँव के जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति करता है।

पाठ-परिचय

'प्रेरणा' कहानी में मानवीय स्वभाव की विचित्रता और अनिश्चितता को अभिव्यक्ति दी गई है। प्राय: कहा जाता है कि व्यक्ति समाज के महामानवों से, नायकों से, गुरुजनों से, अभिभावकों से प्रेरणा पाता है, उनके चरित्र व व्यक्तित्व की उदात्तता उसे जीवन में अनुशासित बनने व ऊँचा उठने के लिए प्रेरित करती है। परन्तु यही अंतिम सत्य नहीं है। मानवीय मनोविज्ञान का एक सत्य यह भी है जब व्यक्ति पर कोई दायित्व आ जाता है, तब उसके भीतर से ही एक ऐसी प्रेरणा प्रस्फुटित होती है जो उसके जीवन की दिशा को बदल देती है। इस कहानी में भी सूर्यप्रकाश को प्रेरित करने में, उसको सुधारने में उसके अध्यापक असफल हो जाते हैं। प्यार, उपेक्षा, मार-फटकार, अपमान-किसी भी उपाय से वह बिगड़ा हुआ बालक सुधरता नहीं है। लेकिन जैसे ही उस पर छोटे-से मोहन को संभालने का दायित्व आ जाता है, वह खुद-ब-खुद सही रास्ते पर आ जाता है। अब वह अपने व्यक्तित्व को ऐसा बनाना चाहता था कि मोहन उससे प्रेरणा ले सके। वह मोहन का आदर्श बनना चाहता था। जब मनुष्य पर कोई जिम्मेदारी आ जाती है तो उसे अपने आप ही इस बात अहसास हो जाता है कि उसे इसे निभाना है, इसमें सफल होना है। तब व्यक्ति अपनी प्रेरणा स्वयं बनता है और जीवन में सफल हो जाता है। भीतर से प्रस्फुटित होने वाली प्रेरणा कभी मरती नहीं। कहानी में सूर्यप्रकाश का अध्यापक उसे सही राह पर लाने में प्रयत्नशील रहता है मगर जीवन की राह में वह अध्यापक खुद गलत मोड़ पर मुड़ जाता है और अपने कैरियर का त्रासद अंत कर बैठता है। शायद अपने सिद्धांतों, अपने मूल्यों में उसकी निष्ठा दृढ़ न थी, शायद उसके व्यक्तित्व में ही कोई कमी थी, तभी तो वह न तो सूर्यप्रकाश की प्रेरणा बन सका और न ही अपने जीवन को संभाल सका। दूसरी ओर, सूर्यप्रकाश मोहन की प्रेरणा भी बनता है और अपने जीवन को भी सफल बना लेता है। वास्तविक प्रेरणा यही है, इसकी सफलता निश्चित है, असंदिग्ध है।

प्रेरणा

मेरी कक्षा में सूर्य प्रकाश से ज्यादा उधमी कोई लड़का न था। बल्कि यों कहो कि अध्यापन-काल के दस वर्षों में मुझे ऐसी विषम प्रकृति के शिष्य से साबका न पड़ा था। कपट-क्रीड़ा में उसकी जान बसती थी। अध्यापकों को बनाने और चिढ़ाने,उद्योगी बालकों को छेड़ने और रुलाने में ही उसे आनंद आता था। ऐसे-ऐसे षड्यंत्र रचता, ऐसे-ऐसे फंदे डालता,ऐसे-ऐसे मनसूबे बाँधता कि देखकर आश्चर्य होता था। गिरोहबंदी में अभ्यस्त था।

खुदाई फ़ौजदारों की एक फ़ौज बना ली थी और उसके आतंक से शाला पर शासन करता था। मुख्य अधिष्ठाता की आज्ञा टल जाए, मगर क्या मजाल कि कोई उसके हुक्म की अवज्ञा कर सके। स्कूल के चपरासी और अर्दली उससे थर-थर काँपते थे। इंस्पेक्टर का मुआइना होने वाला था। मुख्य अधिष्ठाता ने हुक्म दिया कि लड़के निर्दिष्ट समय से आधा घंटा पहले आ जाएँ।मतलब यह था कि लड़कों को मुआइने के बारे में कुछ ज़रूरी बातें बता दी जाएँ। मगर दस बज गए, इंस्पेक्टर साहब आकर बैठ गए और मदरसे में एक लड़का भी नहीं। ग्यारह बजे सब छात्र इस तरह निकल पड़े, जैसे पिंजड़ा खोल दिया हो। इंस्पेक्टर साहब ने कैफियत में लिखा- डिसिप्लिन बहुत खराब है। प्रिंसिपल साहब की किरकिरी हुई, अध्यापक बदनाम हुए और यह सारी शरारत सूर्यप्रकाश की थी। मगर बहुत पूछताछ करने पर किसी ने सूर्यप्रकाश का नाम तक नहीं लिया। मुझे अपनी संचालन-विधि पर गर्व था। ट्रेनिंग कॉलेज में इस विषय में मैंने ख्याति प्राप्त की थी। मगर यहाँ मेरा सारा संचालन-कौशल मोर्चा खा गया था। कुछ अक्ल ही काम नहीं करती कि शैतान को कैसे मार्ग पर लाएँ। कई बार अध्यापकों की बैठक हुई, पर यह गिरह न खुली। नई शिक्षा विधि के अनुसार मैं दंड-नीति का पक्षपाती न था, मगर हम यहाँ इस नीति से केवल विरक्त थे कि कहीं उपचार रोग से भी असाध्य न हो जाए। सूर्यप्रकाश को स्कूल से निकाल देने का प्रस्ताव भी किया गया, पर इसे अपनी अयोग्यता का प्रमाण समझकर हम इस नीति का व्यवहार करने का साहस न कर सके। बीस-बाईस अनुभवी और शिक्षण-शास्त्र के आचार्य एक बारह-तेरह साल के उद्दंड बालक का सुधार न कर सके, यह विचार बहुत ही निराशाजनक था, यों तो सारा स्कूल उससे त्राहि-त्राहि करता था, मगर सबसे ज्यादा संकट में मैं था। क्योंकि वह मेरी कक्षा का छात्र था और उसकी शरारतों का कुफल मुझे भोगना पड़ता था। मैं स्कूल आता तो हरदम यही खटका लगा रहता था कि देखें आज क्या विपत्ति आती है। एक दिन मैंने अपनी मेज की दराज खोली, तो उसमें एक बड़ा-सा मेढक निकल पड़ा। मैं चौंककर पीछे हटा, तो कक्षा में शोर मच गया। उसकी ओर सरोष नेत्रों से देखकर रह गया। सारा घंटा

उपेदश में बीत गया और वह पट्ठा सिर झुकाए नीचे मुस्करा रहा था। मुझे आश्चर्य होता था कि यह नीचे की कक्षाओं में कैसे पास हुआ एक दिन मैंने गुस्से से कहा – 'तुम इस कक्षा से उम्र भर नहीं पास हो सकते। 'सूर्यप्रकाश ने अविचलित भाव से कहा – 'आप मेरे पास होने की चिंता न करें। मैं हमेशा पास हुआ हूँ और अब भी हो जाऊँगा।'

'असंभव' ।

'असंभव संभव हो जाएगा।'

मैं आश्चर्य से उसका मुँह देखने लगा। ज़हीन-से-ज़हीन लड़का भी अपनी सफलता का दावा इतने निर्विवाद रूप से न कर सकता था। मैंने सोचा, वह प्रश्न-पत्र उड़ा लेता होगा। मैंने प्रतिज्ञा की, अबकी इसकी एक चाल भी न चलने दूँगा। देखूँ, कितने दिन इस कक्षा में पड़ा रहता है। आप घबराकर निकल जाएगा।

वार्षिक परीक्षा के अवसर पर मैंने असाधारण देखभाल से काम लिया, मगर जब सूर्यप्रकाश का उत्तर-पत्र देखा, तो मेरे विस्मय की सीमा न रही। मेरे दो पर्चे थे, दोनों में ही उसके नबंर कक्षा में सबसे अधिक थे। मुझे खूब मालूम था कि वह मेरे किसी पर्चे का कोई भी प्रश्न हल नहीं कर सकता। मैं इसे सिद्ध कर सकता था, मगर उसके उत्तर-पत्रों का क्या करता ? लिपि में इतना भेद न था, जो कोई संदेह उत्पन्न कर सकता। मैंने प्रिंसिपल से कहा, तो वह भी चकरा गए, मगर उन्हें भी जान-बूझकर मक्खी निगलनी पड़ी। मैं कदाचित् स्वभाव से ही निराशावादी हूँ। अन्य अध्यापकों को मैं सूर्यप्रकाश के विषय में जरा भी चिंतित न पाता था। मानो ऐसे लड़कों का स्कूल में आना कोई नई बात नहीं, मगर मेरे लिए वह एक विकट रहस्य था अगर यही ढंग रहे, तो एक दिन वह या तो जेल में होगा या पागलखाने में।

उसी साल मेरा तबादला हो गया। यद्यपि यहाँ की जलवायु मेरे अनुकूल थी, प्रिंसिपल और अन्य अध्यापकों से मैत्री हो गई थी मगर मैं अपने तबादले से खुश हुआ, क्योंकि सूर्यप्रकाश मेरे मार्ग का काँटा न रहेगा। लड़कों ने मुझे विदाई की दावत दी, और सबके सब स्टेशन तक पहुँचाने आए। उस वक्त सभी लड़के आँखों में आँसू भरे हुए थे। मैं भी अपने आँसुओं को न रोक पाया। सहसा मेरी निगाह सूर्यप्रकाश पर पड़ी, जो सबसे पीछे लज्जित खड़ा था। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि उसकी आँखें भी भीगी थीं। मेरा जी बार-बार चाहता था कि चलते-चलते उससे दो-चार बात कर लूँ। शायद वह भी मुझे से कुछ कहना चाहता था, मगर न मैंने पहले बातें की, न उसनें, हालाँकि मुझे बहुत दिनों तक इसका खेद रहा। उसकी झिझक तो क्षमा योग्य थी, पर मेरा अवरोध अक्षम्य था। संभव था, उस करुणा और ग्लानि की दशा में मेरी दो-चार निष्कपट बातें

उसके दिल पर असर कर जातीं, मगर इन्हीं खोए हुए अवसरों का नाम तो जीवन है। गाड़ी मंद गति से चली। लड़के कई कदम उसके साथ दौड़े। मैं खिड़की से बाहर सिर निकाले खड़ा था। कुछ देर तक मुझे अनेक हिलते हुए रूमाल नज़र आए। फिर वे रेखाएँ आकाश में विलीन हो गईं, मगर एक अल्पकाय मूर्ति अब भी प्लेटफार्म पर खड़ी थी। मैंने अनुमान किया, वह सूर्यप्रकाश है। उस समय मेरा हृदय किसी विकल कैदी की भाँति घृणा, मालिन्य और उदासीनता के बंधनों को तोड़-तोड़कर उससे गले मिलने के लिए तड़प उठा।

नए स्थान की नई चिंताओं ने बहुत जल्दी मुझे अपनी ओर आकर्षित कर लिया। पिछले दिनों की याद एक हसरत बनकर रह गई। न किसी का कोई खत आया, न मैंने कोई खत लिखा। शायद दुनिया का यही दस्तूर है। वर्षा के बाद वर्षा की हरियाली कितने दिनों रहती है ? संयोग से मुझे इंग्लैंड में विद्याभ्यास करने का अवसर मिल गया। वहाँ तीन साल लग गए। वहाँ से लौटा, तो एक कॉलेज का प्रिंसिपल बना दिया गया। यह सिद्धि मेरे लिए बिल्कुल आशातीत थी। मेरी भावना स्वप्न में भी इतनी दूर नहीं उड़ी थी, किंतु पद-लिप्सा अब किसी और भी ऊँची डाली पर आश्रय लेना चाहती थी। शिक्षामंत्री से रब्त-ज़ब्त पैदा किया। मंत्री महोदय मुझ पर कृपा रखते थे, मगर वास्तव में शिक्षा के मौलिक सिद्धांतों का उन्हें ज्ञान न था। मुझे पाकर उन्होंने सारा भार मेरे ऊपर डाल दिया। घोड़े पर सवार वह थे, लगाम मेरे हाथ में थी। फल यह हुआ कि उनके राजनीतिक विपक्षियों से मेरा विरोध हो गया। मुझ पर जा-बेजा आक्रमण होने लगे। मैं सिद्धांत रूप से अनिवार्य शिक्षा का विरोधी हूँ। मेरा विचार है कि हर एक मनुष्य को उन विषयों में ज़्यादा स्वाधीनता होनी चाहिए, जिसका उससे निज का संबंध है। मेरा विचार है कि यूरोप में अनिवार्य शिक्षा की ज़रूरत है, भारत में नहीं। भौतिकता पश्चिमी सभ्यता का मूल तत्व है। वहाँ किसी काम की प्रेरणा आर्थिक लाभ के आधार पर होती है। ज़िंदगी की ज़रूरतें ज़्यादा है, इसलिए जीवन-संग्राम भी अधिक भीषण है। माता-पिता भोग के दास होकर बच्चों को जल्द-से-जल्द कुछ कमाने पर मजबूर करते हैं। इसकी वजह है कि वह मद का त्याग करके एक शिलिंग रोज़ बचत कर लें, वे अपने कमसीन बच्चे को एक शिलिंग की मज़दूरी करने के लिए दबाएँगे। भारतीय जीवन में सात्विक सरलता है। हम उस वक्त तक अपने बच्चों से मज़दूरी नहीं कराते, जब तक परिस्थिति हमें विवश न कर दे। दरिद्र-से-दरिद्र हिंदुस्तानी मज़दूर भी शिक्षा के उपकारों का कायल है। उसके मन में यह अभिलाषा होती है कि मेरा बच्चा चार कक्षा पढ़ जाएं। इसलिए नही कि उसे कोई अधिकार मिलेगा, बल्कि केवल इसलिए कि विद्या मानवी शील का शृंगार है। अगर यह जानकर भी वह अपने बच्चे को मदरसे नहीं भेजता, तो समझ लेना चाहिए कि वह मजबूर है। ऐसी दशा में उस पर कानून का प्रहार करना मेरी दृष्टि में न्याय-संगत

नहीं है। इसके सिवाय मेरे विचार में अभी हमारे देश में योग्य शिक्षकों का अभाव है। अद्‌र्धशिक्षित और अल्प वेतन पाने वाले अध्यापकों से आप यह आशा नहीं कर सकते हैं कि वह कोई ऊँचा आदर्श अपने सामने रख सकें। अधिक-से-अधिक इतना ही होगा कि चार-पाँच वर्ष में बालक को अक्षर का ज्ञान हो जाएगा। मैं इसे पर्वत खोदकर चुहिया निकालने के तुल्य मानता हूँ। वयस प्राप्त हो जाने पर यह मामला एक महीने में आसानी से तय किया जा सकता है। मैं अनुभव से कह सकता हूँ कि युवावस्था में हम जितना ज्ञान एक महीने में प्राप्त कर सकते हैं, उतना बाल्यकाल में तीन साल में भी नहीं कर सकते, फिर खामख्वाह बच्चों को मदरसे में कैद करने से क्या लाभ ? मदरसे के बाहर रहकर स्वच्छ वायु तो मिलती है, प्राकृतिक अनुभव तो प्राप्त होते। पाठशाला में बंद करके तो आप उसके मानसिक और शारीरिक दोनों विधानों की जड़ काट देते हैं। इसलिए जब प्रांतीय व्यवस्थापिका सभा में अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव पेश हुआ, तो मेरी प्रेरणा से मिनिस्टर साहब ने उसका विरोध किया। नतीजा यह हुआ कि प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। फिर क्या था? मिनिस्टर साहब और मेरी वह ले-दे हुई कि कुछ न पूछिए। व्यक्तिगत आक्षेप किए जाने लगे। मैं ग़रीब की बीवी था, मुझे ही सबकी भाभी बनना पड़ा। देशद्रोही, उन्नति का शत्रु और नौकरशाही का गुलाम कहा गया। मेरे कॉलेज में जरा-सी भी कोई बात होती तो कॉउन्सिल में मुझ पर वर्षा होने लगती। मैंने चपरासी को पृथक किया। सारी कॉउन्सिल पंजे झाड़कर मेरे पीछे पड़ गई। आखिर मिनिस्टर को मजबूर होकर उस चपरासी को बहाल करना पड़ा। यह अपमान मेरे लिए असह्य था। शायद कोई भी इसे सहन न कर सकता। मिनिस्टर साहब से मुझे शिकायत नहीं। वह मजबूर थे। हाँ, इस वातावरण में काम करना मेरे लिए दुःसाध्य हो गया। मुझे अपने कॉलेज के आंतरिक संगठन का भी अधिकार नहीं। अमुक क्यों नहीं परीक्षा में भेजा गया ? अमुक के बदले अमुक को क्यों नहीं छात्रवृत्ति दी गई? अमुक अध्यापक को अमुक कक्षा क्यों नहीं दी जाती है ? इस तरह सारहीन आक्षेपों ने मेरी नाक में दम कर दिया। इस नई चोट ने कमर तोड़ दी। मैंने इस्तीफा दे दिया।

मुझे मिनिस्टर साहब से इतनी आशा अवश्य थी कि वह कम-से-कम इस विषय में न्याय-परायणता से काम लेंगे। मगर उन्होंने न्याय की जगह नीति को मान्य समझा और मुझे कई साल की भक्ति का यह फल मिला कि मैं पदच्युत कर दिया गया। संसार का ऐसा कटु अनुभव मुझे अब तक न हुआ था। ग्रह भी कुछ बुरे आ गए थे। उन्हीं दिनों पत्नी का देहांत हो गया। अंतिम दर्शन भी न कर सका। संध्या समय नदी-तट पर सैर करने गया था। वह कुछ अस्वस्थ थीं लौटा तो उनकी लाश मिली। कदाचित हृदय की गति बंद हो गई। इस आघात ने कमर तोड़ दी। जो

कुछ हुआ, पत्नी के प्रसाद और आशीर्वाद से हुआ। वह मेरे भाग्य की विधात्री थीं। कितना अलौकिक त्याग था, कितना विशाल धैर्य। उनके माधुर्य में तीक्ष्णता का नाम भी न था। मुझे याद नहीं आता कि मैंने कभी उनकी भृकुटि संकुचित देखी हो। निराश होना तो जानती ही न थीं। मैं कई बार सख्त बीमार पड़ा हूँ। वैद्य भी निराश हो गए, पर वह अपने धैर्य और शांति से अणुमात्र भी विचलित नहीं हुई। उन्हें विश्वास था कि वह अपने पति के जीवनकाल में मरेंगी और वही हुआ भी। मैं जीवन में अब तक उन्हीं के सहारे खड़ा था। जब वह अवलंब ही न रहा, तो जीवन कहाँ रहता। खाने और सोने का नाम जीवन नहीं है। जीवन नाम है सदैव आगे बढ़ते रहने की लगन का। यह लगन गायब हो गई। मैं संसार से विरक्त हो गया और एकांतवास में जीवन के दिन व्यतीत करने का निश्चय करके एक छोटे से गाँव में जा बसा। चारों तरफ ऊँचे-ऊँचे टीले थे, एक ओर गंगा बहती थी। मैंने नदी के किनारे एक छोटा-सा घर बना लिया और उसी में रहने लगा।

मगर काम करना तो मानवीय स्वभाव है। बेकारी में, जीवन कैसे कटता ? मैंने एक छोटी-सी पाठशाला खोल ली। एक वृक्ष की छाँह में गाँव के लड़कों को जमा कर कुछ पढ़ाया करता था। उसकी यहाँ इतनी ख्याति हुई कि आस-पास के गाँवों के छात्र भी आने लगे।

एक दिन मैं अपनी कक्षा को पढ़ा रहा था कि पाठशाला के पास एक मोटर आकर रुकी और उसमें से ज़िले के डिप्टी कमिश्नर उतर पड़े। मैं उस समय केवल एक कुरता और धोती पहने हुए था। इस वेश में एक हाकिम से मिलते हुए शर्म आ रही थी। डिप्टी कमिश्नर मेरे समीप आए तो मैंने झेंपते हुए हाथ बढ़ाया, मगर वह मुझसे हाथ मिलाने के बदले मेरे पैरों की ओर झुके और उन पर सिर रख दिया। मैं कुछ ऐसा सिटपिटा गया कि मेरे मुँह से एक शब्द भी न निकला। मैं अंग्रेज़ी अच्छा लिखता हूँ, दर्शनशास्त्र का भी आचार्य हूँ, व्याख्यान भी अच्छे दे लेता हूँ ; मगर इन गुणों में एक भी श्रद्धा के योग्य नहीं। श्रद्धा तो ज्ञानियों और साधुओं ही के अधिकार की वस्तु है। अगर मैं ब्राह्मण होता, तो एक बात थी। हालाँकि एक सिविलियन का किसी ब्राह्मण के पैरों पर सिर रखना भी अतिचिंतनीय है।

मैं अभी इसी विस्मय में पड़ा हुआ था कि डिप्टी कमिश्नर ने सिर उठाया और मेरी तरफ देखकर कहा, 'आपने शायद मुझे पहचाना नहीं।'

इतना सुनते ही मेरे स्मृति-नेत्र खुल गए, बोला, 'आपका नाम सूर्यप्रकाश तो नहीं है?'

'जी हाँ, मैं आपका वही अभागा शिष्य हूँ।'

'बारह-तेरह वर्ष हो गए।'

सूर्यप्रकाश ने मुस्कराकर कहा, 'अध्यापक लड़कों को भूल जाते हैं, पर लड़कें उन्हें हमेशा याद करते हैं।'

मैंने उसी विनोद के भाव से कहा, 'तुम जैसे लड़कों को भूलना असंभव है !'

सूर्यप्रकाश ने विनीत स्वर से कहा – उन्हीं अपराधों को क्षमा कराने के लिए सेवा में आया हूँ। मैं सदैव आपकी खबर लेता रहता था। जब आप इंग्लैंड गए, तो मैंने आपके लिए कई बार बधाई पत्र लिखा, पर उसे भेज न सका। जब आप प्रिंसिपल हुए, मैं इंग्लैंड जाने को तैयार था। वहाँ मैं पत्रिकाओं में आपके लेख पढ़ता रहता था। जब लौटा तो मालूम हुआ कि आपने इस्तीफा दे दिया और कहीं देहात में चले गए। इस ज़िले में आए मुझे एक वर्ष से अधिक हुआ, पर इसका जरा भी अनुमान न था कि आप यहाँ एकांत सेवा कर रहे हैं। इस उजाड़ गाँव में आपका जी कैसे लगता है? इतनी सी अवस्था में आपने वानप्रस्थ ले लिया ?

मैं नहीं कह सकता कि सूर्यप्रकाश की उन्नति देखकर मुझे कितना आश्चर्यचकित आनंद हुआ। अगर वह मेरा पुत्र होता, तो भी इससे अधिक आनंद न होता। मैं उसे अपने झोंपड़े में लाया और अपनी रामकहानी कह सुनाई।

सूर्यप्रकाश ने कहा, 'तो कहिए कि अपने ही एक भाई के विश्वासघात के शिकार हुए। मेरा अनुभव को बहुत कम है, मगर इतने ही दिनों में मुझे मालूम हो गया है कि हम लोग सभी अपनी ज़िम्मेदारियों को पूरा करना नहीं जानते। मिनिस्ट साहब से भेंट हुई, तो पूछँगा कि क्या यही उनका धर्म था ?'

मैंने जवाब दिया, 'भाई, उनका दोष नहीं। संभव है, इस दशा में मैं भी वही करता, जो उन्होंने किया। मुझे अपनी-स्वार्थ-लिप्सा की स ा मिल गई और उसके लिए मैं उनका कहता हूँ कि यहाँ मुझे जो शांति है, वह और कहीं न थी। इस एकांत जीवन में मुझे जीवन के तत्त्वों का वह ज्ञान हुआ, जो संपत्ति और अधिकार की दौड़ में किसी तरह संभव न था। इतिहास और भूगोल के पोथे चाटकर यूरोप के विद्यालयों की शरण जाकर भी मैं अपनी ममता को न मिटा सका। बल्कि यह रोग दिन-दिन और असाध्य होता जाता था। आप सीढ़ियों पर पाँव रखे बगैर छत की ऊँचाई तक नहीं पहुँच सकते। संपत्ति की अट्टालिका तक पहुँचने में दूसरी ज़िंदगी ही जीनों का काम देती है। आप उन्हें कुचलकर ही लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। वहाँ सौजन्य और सहानुभूति का स्थान ही नहीं। मुझे ऐसा मालूम होता है कि उस वक्त मैं हिंसक जंतुओं से घिरा हुआ था और मेरी सारी शक्तियाँ अपनी आत्मरक्षा में लगी रहती थीं। यहाँ मैं अपने चारों ओर संतोष और

सरलता देखता हूँ। मेरे पास जो लोग आते हैं, कोई स्वार्थ लेकर नहीं आते और न मेरी सेवाओं में प्रशंसा या गौरव की लालसा है।'

यह कहकर मैंने सूर्यप्रकाश के चेहरे को ओर गौर से देखा। कपट-मुस्कान की जगह ग्लानि का रंग था। शायद यह दिखाने आया था कि आप जिसकी तरफ से इतने निराश हो गए थे, वह अब इस पद को सुशोभित कर रहा है। वह मुझसे अपने सदुद्योग का बखान चाहता था। मुझे अब अपनी भूल मालूम हुई-एक संपन्न आदमी के सामने समृद्धि की निंदा उचित नहीं। मैंने तुरंत बात पलटकर कहा, 'मगर तुम अपना हाल तो कहो। तुम्हारी यह कायापलट कैसे हुई? तुम्हारी शरारतों को याद करता हूँ, तो अब भी रोएँ खड़े हो जाते हैं। किसी देवता के वरदान के सिवा और कहीं यह विभूति न प्राप्त हो सकती थी।'

सूर्यप्रकाश ने मुस्कराकर कहा, 'आपका आशीर्वाद था।'

मेरे बहुत आग्रह करने पर सूर्यप्रकाश ने अपना वृत्तांत सुनाना शुरू किया। आपके चले जाने के कई दिन बाद मेरा ममेरा भाई स्कूल में दाखिल हुआ। उसकी उम्र आठ-नौ साल से ज़्यादा न थी। प्रिंसिपल साहब उसे होस्टल में न लेते थे और न मामा साहब उसके ठहरने का प्रबंध कर सकते थे। उन्हें इस संकटकाल में देखकर मैंने प्रिंसिपल साहब से कहा - उसे मेरे कमरे में ठहरने दीजिए। प्रिंसिपल साहब ने इसे नियम-विरुद्ध बतलाया। इस पर मैंने बिगड़कर उसी दिन होस्टल छोड़ दिया, और एक किराये का मकान लेकर मोहन के साथ रहने लगा। उसकी माँ कई साल पहले मर चुकी थी। इतना दुबला-पतला, कमजोर और गरीब लड़का था कि पहले ही दिन से मुझे उस पर दया आने लगी। कभी उसके सिर में दर्द होता, कभी ज्वर हो जाता। आये दिन कोई-न-कोई बीमारी खड़ी रहती थी। इधर साँझ हुई और उसे झपकियाँ आने लगीं। बड़ी मुश्किल से भोजन करने उठाता। दिन चढ़ते तक सोया करता और जब तक मैं गोद में उठाकर बिठा न देता, उठने का नाम न लेता। रात को बहुधा चौंककर मेरी चारपाई पर आ जाता और मेरे गले लिपटकर सोता। मुझे उस पर कभी क्रोध न आता। कह नहीं सकता, क्यों मुझे उससे प्रेम हो गया। मैं जहाँ पहले नौ बजे सोकर उठता था, अब तड़के उठ बैठता और उसके लिए दूध गरम करता। फिर उसे उठाकर आँख-मुँह धुलाता और नाश्ता कराता। उसके स्वास्थ्य के विचार से नित्य वायु-सेवन को ले जाता। मैं जो कभी किताब लेकर न बैठता था, इसे घंटों पढ़ाया करता। मुझे अपने दायित्व का इतना ज्ञान कैसे हो गया, इसका मुझे आश्चर्य है। उसे कोई शिकायत हो जाती तो मेरे प्राण नखों में समा जाते। डॉक्टर के पास दौड़ता, दवाएँ लाता और मोहन को खुशामद करके दवा पिलाता।

सदैव यही चिंता रहती थी कि कोई बात उसकी इच्छा के विरूद्ध न हो जाए। उस बेचारे का यहाँ मेरे सिवा दूसरा कौन था ? मेरे चंचल मित्रों में से कोई उसे चिढ़ाता या छेड़ता तो मेरी त्योरियाँ बदल जाती थीं। कई लड़के मुझे बूढ़ी दादी कहकर चिढ़ाते थे। पर मैं हँसकर टाल देता था। मैंने उसके सामने एक भी अनुचित शब्द मुँह से नहीं निकाला। यह शंका होती थी कि वहीं मेरी देखा-देखी यह भी खराब न हो जाए।

मैं उसके सामने इस तरह रहना चाहता था कि मुझे अपना आदर्श समझे और इसके लिए यह मानी हुई बात थी कि मैं अपना चरित्र सुधारूँ। वह मेरा नौ बजे तक सोकर उठना, बारह बजे तक और अध्यापकों की आँख बचाकर स्कूल से उड़ जाना, सब आप-ही-आप जाता रहा। स्वास्थ्य और चरित्र-पालन के सिद्धांतों का मैं शत्रु था, पर अब मुझसे बढ़कर उन नियमों का रक्षक दूसरा न था। मैं ईश्वर का उपहास किया करता था, मगर अब पक्का आस्तिक हो गया था। वह बड़े सरल भाव से पूछता – ''परमात्मा सब जगह रहते हैं, तो मेरे साथ भी रहते होंगे?'' इस प्रश्न का मजाक उड़ाना मेरे लिए असंभव था, मैं कहता, ''हाँ! परमात्मा तुम्हारे, हमारे, सबके पास रहते हैं और हमारी रक्षा करते हैं।'' यह आश्वासन पाकर उसका चेहरा आनंद से खिल उठाता था। कदाचित् वह परमात्मा की सत्ता का अनुभव करने लगता था। साल ही भर में मोहन कुछ-से-कुछ हो गया। मामा साहब दो बार आए, तो उसे देखकर चकित रह गए। आँखों में आँसू भरकर बोले-बेटा ! तुमने इसको जिला दिया, नहीं तो मैं निराश हो चुका था। इसका पुनीत फल तुम्हें ईश्वर देंगे। इसका माँ स्वर्ग में बैठी हुई आशीर्वाद दे रही है। सूर्यप्रकाश की आँखें उस वक्त भी सजल हो गई थीं।

मैंने पूछा – 'मोहन तुम्हें बहुत प्यार करता होगा ?'

सूर्यप्रकाश के सजल नेत्रों में हसरत से भरा हुआ आनंद चमक उठा, बोला – वह मुझे एक मिनट के लिए भी न छोड़ता था। मेरे साथ उठता, मेरे साथ खाता, साथ सोता। मैं ही उसका सब कुछ था। आज वह संसार में नहीं है, मगर मेरे लिए वह अब भी उसी तरह जीता-जागता है। मैं जो कुछ हूँ, उसी का बनाया हुआ हूँ। अगर वह दैवी विधान की भाँति मेरा पथ-प्रदर्शक न बन जाता, तो शायद आज मैं किसी जेल में पड़ा होता। एक दिन मैंने कह दिया-अगर तुम रोज नहा न लिया करोगे, तो मैं तुमसे न बोलूँगा। नहाने से वह न जाने क्यों जी चुराता था। मेरी धमकी का फल यह हुआ कि वह नित्य प्रात: काल नहाने लगा। कितनी ही सर्दी क्यों न हो, कितनी ही ठंडी हवा चले, लेकिन वह स्नान अवश्य करता था।

देखता रहता था, मैं किस बात से खुश होता हूँ। एक दिन मैं कई मित्रों के साथ थियेटर देखने चला गया, ताकीद कर गया कि तुम खाना खाकर सो जाना। तीन बजे रात को लौटा तो देखा, वह बैठा हुआ है। मैंने पूछा–तुम सोये नहीं? बोला – नींद नहीं आई। उसी दिन से मैंने थियेटर जाने का नाम न लिया । बच्चों में प्यार की जो भूख होती है, दूध मिठाई और खिलौने से भी ज़्यादा मादक– जो माँ की गोद के सामने संसार की निधि की भी परवाह नहीं करती, मोहन की वह भूख कभी संतुष्ट न होती थी। पहाड़ों से टकराने वाली सारस की आवाज़ की तरह वह सदैव उसकी नसों में गूँजा करती थी। जैसे भूमि पर फैली हुई लता कोई सहारा पाते ही उससे चिपट जाती है, वही हाल मोहन का था। वह मुझसे चिपट गया था कि पृथक् किया जाता तो उसकी कोमल बेली के टुकड़े–टुकड़े हो जाते। वह मेरे साथ तीन साल रहा और तब जीवन में प्रकाश की एक रेखा डालकर अंधकार में विलीन हो गया। उस जीर्ण काया में कैसे–कैसे अरमान भरे हुए थे। कदाचित् ईश्वर ने मेरे जीवन में एक अवलंबन की सृष्टि करने के लिए उसे भेजा था। उद्देश्य पूरा हो गया, तो वह क्यों रहता ?

गर्मियों की तातील थी। दो तातीलों में मोहन मेरे ही साथ रहा था। मामा जी के आग्रह करने पर भी घर न गया। अब की कॉलेज के छात्रों ने कश्मीर–यात्रा करने का निश्चय किया और मुझे उसका अध्यक्ष बनाया। कश्मीर–यात्रा की अभिलाषा मुझे चिरकाल से थी। इस अवसर को गनीमत समझा। मोहन को मामा जी के पास भेजकर मैं कश्मीर चला गया। दो महीने के बाद लौटा तो मालूम हुआ कि मोहन बीमार है। कश्मीर में मुझे बार–बार मोहन की याद आती थी और जी चाहता था लौट आऊँ, मुझे उस पर इतना प्रेम है, इसका अंदाजा मुझे कश्मीर जाकर हुआ, लेकिन मित्रों ने पीछा न छोड़ा। उसकी बीमारी की खबर पाते ही मैं अधीर हो उठा और दूसरे ही दिन उसके पास जा पहुँचा। मुझे देखते ही उसके पीले और सूखे हुए चेहरे पर आनंद की स्फूर्ति झलक पड़ी। मैं दौड़कर उसके गले से लिपट गया। उसकी आँखों में वह दूरदृष्टि और चेहरे पर वह अलौकिक आभा थी, जो मँडराती हुई मृत्यु की सूचना देती है। मैंने आवेश से काँपते हुए स्वर में पूछा – ''यह तुम्हारी क्या दशा है मोहन ? दो ही महीने में यह नौबत पहुँच गई।'' मोहन ने सरल मुस्कान के साथ कहा – ''आप कश्मीर की सैर करने गए थे, मैं आकाश की सैर करने जा रहा हूँ।''

मगर यह दुःख कहानी कहकर मैं रोना और रुलाना नहीं चाहता। मेरे चले जाने के बाद मोहन इतना परिश्रम से पढ़ने लगा, मानो तपस्या कर रहा हो। उसे यह धुन सवार हो गई कि साल–भर की पढ़ाई दो महीने में समाप्त कर ले और स्कूल खुलने के बाद मुझसे इस श्रम का

प्रशंसा –रूपी उपहार प्राप्त करे। मैं किस तरह उस की पीठ ठोकूँगा। शाबासी दूँगा, अपने मित्रों से बखान करूँगा, इन भावनाओं ने अपने सारे बालोचित उत्साह और तल्लीनता के साथ उसे वशीभूत कर लिया। मामा जी को दफ्तर के कामों से इतना अवसर कहाँ कि उसके मनोरंजन का ध्यान रखें। शायद उसे प्रतिदिन कुछ–न–कुछ पढ़ते देखकर वह दिल में खुश होते थे। उसे खेलते न देखकर भला क्या कहते । फल यह हुआ कि मोहन को हलका–हलका ज्वर आने लगा, किंतु उस दशा में भी ज्वर कुछ हलका हो जाता तो किताब देखने लगता था। उसके प्राण मुझमें ही बने रहते थे। ज्वर कुछ हलका हो जाता तो किताब देखने लगता था। उसके प्राण मुझमें ही बने रहते थे। ज्वर की दशा में भी नौकरों से पूछता – ''भैया का पत्र आया ? वह कब आएँगे?'' इसके सिवा और कोई दूसरी अभिलाषा न थी। अगर मुझे मालूम होता कि मेरी कश्मीर–यात्रा इतनी महँगी पड़ेगी तो उधर जाने का नाम न लेता। उसे बचाने के लिए मुझसे जो कुछ हो सकता था, वह मैंने सब किया, किंतु बुखार टायफ़ायड था, उसकी जान लेकर ही उतरा। उसके जीवन का स्वप्न मेरे लिए किसी ऋषि का आशीर्वाद बनकर मुझे प्रोत्साहित करने लगा और यह उसी का शुभ फल है कि आज आप मुझे इस दशा में देख रहे हैं। मोहन की बाल–अभिलाषाओं को प्रत्यक्ष रूप में लाकर मुझे यह संतोष होता है कि शायद उसकी पवित्र आत्मा मुझे देखकर प्रसन्न होती हो। यही प्रेरणा थी कि जिसने कठिन–से–कठिन परीक्षाओं में भी मेरा बेड़ा पार लगाया, नहीं तो मैं आज भी वहीं मंदबुद्धि सूर्यप्रकाश हूँ, जिसकी सूरत से आप चिढ़ते थे।

उस दिन से मैं कई बार सूर्यप्रकाश से मिल चुका हूँ। जब वह इस तरफ आ जाता है, तो बिना मुझसे मिले नहीं जाता है। मोहन को अब भी वह अपना इष्टदेव समझता है। मानव–प्रकृति का यह एक ऐसा रहस्य है, जिसे मैं आज तक नहीं समझ सका।

अभ्यास

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दें :-

1. 'प्रेरणा' कहानी मानव-मन की सूक्ष्म वृत्तियों का खुलासा करती है – कैसे? तर्कसम्मत उत्तर दीजिए ?
2. 'प्रेरणा' कहानी में समकालीन व्यवस्था में फैली भ्रष्टता का अमानवीय चेहरा दिखाया गया है – कैसे ? युक्तियुक्त उत्तर दीजिए।

3. 'प्रेरणा' कहानी के आधार पर सूर्यप्रकाश और उसके अध्यापक (कथा-वाचक) का चरित्र-चित्रण कीजिए।

4. 'प्रेरणा' कहानी के शीर्षक के औचित्य पर विचार कीजिए।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. सूर्यप्रकाश ने मोहन की देखभाल के लिए क्या-क्या प्रयास किए ?
2. कथा-वाचक (अध्यापक) को गाँव में रहने पर कैसा अनुभव हुआ ?
3. इस कहानी में शिक्षा से होने वाले कौन-कौन से लाभों का उल्लेख किया गया है ?
4. कथा-वाचक ने इस्तीफा क्यों दिया ?
5. कहानी के आधार पर सूर्यप्रकाश द्वारा की गई शरारतों की सूची बनाइए।

******

24. पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'

हिंदी साहित्य में पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' जी कहानीकार एवं उपन्यासकार के रूप में जाने जाते हैं। इनका जन्म उत्तरप्रदेश के ज़िला मिर्ज़ापुर के चुनार नामक कस्बे में सन् 1900 में हुआ था। इनके पिता की मृत्यु इनकी बाल्यावस्था में ही हो गयी थी जिसके फलस्वरूप इनकी पढ़ाई अधिक नहीं हो पाई। इन्होंने प्रारंम्भिक शिक्षा चुनार के चर्च मिशन स्कूल और वाराणसी के सेंट्रल हिन्दू स्कूल से पाई। बचपन में उन्होंने रामलीला मंडलियों के साथ पंजाब, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश आदि क्षेत्रों का भ्रमण किया और उन्हें इस भ्रमण से जीवन के अनेक अनुभव प्राप्त हुए। ये स्वभाव से अलमस्त व फक्कड़ थे। सन् 1920 में इन्होंने बनारस के दैनिक 'आज' के लिए लिखना शुरू किया तथा नाम कमाया। इनका मुंबई के सिनेमा जगत के साथ भी संबंध रहा। सन् 1967में दिल्ली में इनका देहावसान हो गया।

रचनाएं :- इनकी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ इस प्रकार हैं :-

कहानी संग्रह :- 'रेशमी', 'कला का पुरस्कार', 'पोली इमारत', 'पंजाब की महारानी', 'यह कंचन सी काया', 'चित्र-विचित्र', 'फागुन के दिन चार', 'काल कोठरी', 'ऐसी होली खेलो लाल'।

उपन्यास :- 'बुधुआ की बेटी', 'मनुष्यानंद', 'चंद हसीनों के ख़तूत', 'दिल्ली का दलाल'।

'उग्र' जी ने 'अपनी खबर' नामक आत्मकथा भी लिखी जिसमें उन्होंने अपने जीवन और परिवेश का वास्तविकता के साथ चित्रण किया। इसके अतिरिक्त इनका 'महात्मा ईसा' नामक नाटक भी प्रसिद्ध है।

'उग्र' जी के साहित्य की एक विशेषता रही है कि इन्होंने अपनी रचनाओं में अंधविश्वासों और सामाजिक रूढ़ियों का डटकर विरोध किया। वे भ्रष्टाचार, अनैतिकता के खिलाफ थे। वे राष्ट्रीयता को महत्त्व देते थे इसीलिए उनकी अधिकतर रचनाओं में देश भक्ति की भावना दृष्टिगोचर होती है। इनकी भाषा सरल व स्वाभाविक है। छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग उनकी शैली का मुख्य गुण है। उनकी कहानियों में संवाद योजना भी बेजोड़ रही है। हिंदी साहित्य उनके द्वारा दिए गए साहित्य योगदान को सदैव स्मरण रखेगा।

पाठ-परिचय

'उसकी माँ' कहानी पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' जी की महत्त्वपूर्ण कहानियों में से एक है। यह कहानी राष्ट्रीय भावना से पूर्णत: ओतप्रोत है। पाठक के सामने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की तस्वीर स्पष्ट रूप से घूमने लगती है। कुछ क्रांतिकारी नौजवानों द्वारा देश को आज़ाद करवाने के लिए किए गए बलिदान का बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। ये नौजवान भारत देश में किसी पराए की हुकूमत को बर्दाश्त नहीं करते। देश की आज़ादी के लिए इन्होंने हँसते-हँसते अपना बलिदान दे दिया। लेखक ने लाल की माँ को वास्तव में भारत माता के प्रतीक के रूप में दर्शाया है। उसमें माँ की असीम ममता और अबोध विश्वास है।

इसकी कथावस्तु बहुत ही प्रभावशाली है एवं लक्ष्य की ओर तीव्र गति से बढ़ती है। कहानी के संवाद संक्षिप्त, रोचक, सटीक एवं पात्रानुकूल हैं। संवाद-योजना में नाटकीयता का गुण भी विद्यमान है जिससे पाठक के मन में कहानी पढ़ने की उत्सुकता बढ़ती है। कहानी की भाषा सरल, व्यावहारिक और सहज है। अंग्रेज़ी, फारसी शब्दों का प्रयोग भी बड़े ही स्वाभाविक ढंग से किया गया है। बक-बक करना, हवाई किले उठाना, गद्‌गद्‌ हो उठना, अंट-संट बकना, सन्नाटा नज़र आना, सूखकर काँटा होना, कमर झुकना, कमर टूटना, पीला पड़ना आदि मुहावरों के प्रयोग से उनकी शैली और भी सुंदर बन गयी है। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, पुनरुक्तिप्रकाश अलंकारों का प्रयोग भी बखूबी किया है। कहीं-कहीं संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग भी द्रष्टव्य है। प्रस्तुत कहानी की विशेषता है कि वह शिक्षाप्रद है। लेखक ने लाल और उसके साथियों के माध्यम से आज के नवयुवकों को शिक्षा दी है कि हमें भी संकट पड़ने पर देश की स्वाधीनता व उन्नति की खातिर बलिदान देने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

उसकी माँ

दोपहर को ज़रा आराम करके उठा था। अपने पढ़ने-लिखने के कमरे में खड़ा-खड़ा धीरे-धीरे सिगार पी रहा था और बड़ी-बड़ी अलमारियों में सजी पुस्तकों की ओर निहार रहा था। किसी महान् लेखक की कोई महान् कृति उनमें से निकालकर देखने की बात सोच रहा था। मगर पुस्तकालय के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक मुझे महान्-ही-महान् नजर आए। कहीं गेट, कहीं रूसों, कहीं मेज्जिनी, कहीं नीत्शे, कहीं शेक्सपियर, कहीं टाल्सटाय, कहीं ह्यूगो, कहीं मोपासाँ, कहीं डिकेन्स, स्पेन्सर, मेकाले, मिल्टन, मोलियर उफ ! इधर से उधर तक एक-से-एक महान् ही तो थे। आखिर मैं किसके साथ चंद मिनट मन बहलाव करूँ, यह निश्चय ही न हो सका, महानों के नाम ही पढ़ते-पढ़ते परेशान -सा हो गया।

इतने में मोटर की पों-पों सुनाई पड़ी। खिड़की से झाँका तो सुरमई रंग की कोई 'फिएट' गाड़ी दिखाई पड़ी। मैं सोचने लगा-शायद कोई मित्र पधारे हैं, अच्छा ही है। महानों से जान बची।

जब नौकर ने सलाम कर आने वाले का कार्ड दिया, तब मैं कुछ घबराया। उस पर शहर के पुलिस सुपरिंटेंडेंट का नाम छपा था। ऐसे बेवक्त वे कैसे आए?

पुलिस-पति भीतर आए। मैंने हाथ मिलाकर, चक्कर खाने वाली एक गद्दीदार कुरसी पर उन्हें आसन दिया। वे व्यापारिक मुस्कराहट से लैस होकर बोले, ''अचानक आगमन के लिए आप मुझे क्षमा करें।''

''आज्ञा हो !'' मैंने भी नम्रता से कहा।

उन्होंने पाकेट से डायरी निकाली, डायरी से एक तस्वीर। बोले, ''देखिए इसे, ज़रा बताइए तो, आप पहचानते हैं इसको?'' ''हाँ पहचानता तो हूँ।'' ज़रा सहमते हुए मैंने बताया।

''इसके बारे में मुझे आपसे कुछ पूछना है।''

''पूछिए।''

''इसका नाम क्या है।''

''लाल! मैं इसी नाम से बचपन ही से इसे पुकारता आ रहा हूँ। मगर यह पुकारने का नाम है। एक नाम कोई और हैं, सो मुझे स्मरण नहीं।''

''कहाँ रहता है यह ?'' सुपरिंटेंडेंट ने पुलिस की धूर्त दृष्टि से मेरी ओर देखकर पूछा।

''मेरे बंगले के ठीक सामने एक दो मंजिला, कच्चा-पक्का घर है, उसी में वह रहता है। वह है और उसकी बूढ़ी माँ।''

''बूढ़ी का नाम क्या है?''

''जानकी''

''और कोई नहीं है क्या इसके परिवार में ? दोनों का पालन-पोषण कौन करता है?''

''सात-आठ वर्ष हुए, लाल के पिता का देहांत हो गया। अब उस परिवार में वह और उसकी माता ही बचे हैं। उसका पिता जब तक जीवित रहा, बराबर मेरी ज़मींदारी का मुख्य मैनेजर रहा। उसका नाम रामनाथ था। वहीं मेरे पास कुछ हज़ार रुपए जमा कर गया था, जिससे अब तक उनका खर्चा चल रहा है। लड़का कॉलेज में पढ़ रहा है। जानकी को आशा है, वह साल-दो-साल बाद कमाने और परिवार को सँभालने लगेगा। मगर क्षमा कीजिए, क्या मैं यह पूछ सकता हूँ कि आप उसके बारे में क्यों इतनी पूछताछ कर रहे हैं?''

''यह तो मैं आपको नहीं बता सकता, मगर इतना आप समझ लें, यह सरकारी काम है। इसीलिए आज मैंने आपको इतनी तकलीफ दी है।''

''अजी, इसमें तकलीफ की क्या बात है। हम तो सात पुश्त से सरकार के फरमादार है। और कुछ आज्ञा ....''

''एक बात और'' पुलिस-पति ने गंभीरतापूर्वक धीरे से कहा,''मैं मित्रता से आपसे निवेदन करता हूँ, आप इस परिवार से ज़रा सावधान और दूर रहें। फ़िलहाल इससे और अधिक मुझे कुछ कहना नहीं।''

''लाल की माँ!'' एक दिन जानकी को बुलाकर मैंने समझाया,''तुम्हारा लाल आजकल क्या पाजीपन करता है? तुम उसे केवल प्यार ही करती हो न! हूँ! भोगोगी!''

''क्या है, बाबू?'' उसने कहा।

''लाल क्या करता है?''

''मैं तो उसे कोई भी बुरा काम करते नहीं देखती।''

'' बिना किए ही तो सरकार किसी के पीछे पड़ती नहीं। हाँ, लाल की माँ! बड़ी धर्मात्मा, विवेकी और न्यायी सरकार है यह। ज़रूर तुम्हारा लाल कुछ करता होगा।''

''माँ! माँ!'' पुकारता हुआ उसी समय लाल भी आया- लंबा, सुडौल, सुन्दर, तेजस्वी।

''माँ!!'' उसने मुझे नमस्कार कर जानकी से कहां,''तू यहाँ भाग आई है। चल तो ! मेरे कई सहपाठी वहाँ खड़े हैं, उन्हें चटपट कुछ जलपान करा दे, फिर हम घूमने जाएँगे।''

''अरे!'' जानकी के चेहरे की झुर्रियाँ चमकने लगीं, काँपने लगीं, उसे देखकर बोली,''तू आ गया लाल! चलती हूँ, भैया! पर, देख तो, तेरे चाचा क्या शिकायत कर रहे हैं? तू क्या पाजीपन करता है बेटा!''

''क्या है, चाचा जी?'' उसने सविनय, सुमधुर स्वर में मुझसे पूछा,''मैंने क्या अपराध किया हैं?''

''मैं तुमसे नाराज़ हूँ लाल!'' मैंने गंभीर स्वर में कहा।

''क्यों, चाचा जी?''

''तुम बहुत बुरे होते जा रहे हो, जो सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र करने वाले के साथी हो। हाँ, तुम हो! देखो लाल की माँ, इसके चेहरे का रंग उड़ गया, यह सोचकर कि यह खबर मुझे कैसे मिली।''

सचमुच एक बार उसका खिला हुआ रंग जरा मुरझा गया, मेरी बातों से। पर तुरन्त ही वह सँभला।

''आपने गलत सुना, चाचा जी। मैं किसी षड्यंत्र में नहीं हाँ, मेरे विचार स्वतंत्र अवश्य हैं, मैं ज़रूरत-बेज़रूरत जिस-तिस के आगे उबल अवश्य उठता हूँ देश की दुरवस्था पर, उबल उठता हूँ इस पशु-हृदय परतंत्रता पर।''

''तुम्हारी ही बात सही, तुम षड्यंत्र में नहीं, विद्रोह में नहीं, पर यह बक-बक क्यों? इससे फायदा? तुम्हारी इस बक-बक से न तो देश की दुर्दशा दूर होगी और न उसकी पराधीनता। तुम्हारा काम पढ़ना है, पढ़ो। इसके बाद कर्म करना होगा, परिवार और देश की मर्यादा बचानी होगी। तुम पहले अपने घर का उद्धार तो कर लो, तब सरकार के सुधार का विचार करना।''

उसने नम्रता से कहा,''चाचा जी, क्षमा कीजिए। इस विषय में मैं आपसे विवाद करना नहीं चाहता।''

''चाहना होगा, विवाद करना होगा। मैं केवल चाचा जी नहीं, तुम्हारा बहुत-कुछ हूँ। तुम्हें देखते ही मेरी आँखों के सामने रामनाथ नाचते लगते हैं, तुम्हारी बूढ़ी माँ घूमने लगती है। भला मैं तुम्हें बेहाथ होने दे सकता हूँ! इस भरोसे न रहना।''

''इस पराधीनता के विवाद में चाचा जी, मैं और आप दो भिन्न सिरों पर हैं। आप कट्टर राजभक्त मैं कट्टर राजविद्रोही। आप पहली बात को उचित समझते हैं- कुछ कारणों से, मैं दूसरी को- दूसरे कारणों से- आप अपना पथ छोड़ नहीं सकते - अपनी प्यारी कल्पनाओं के लिए- मैं अपना भी नहीं छोड़ सकता।''

''तुम्हारी कल्पनाएँ क्या हैं, सुनूँ तो? ज़रा मैं भी जान लूँ कि अबके लड़के कॉलेज की गर्दन तक पहुँचते-पहुँचते कैसे-कैसे हवाई किले उठाने के सपने देखने लगते हैं। जरा मैं भी तो सुनूँ बेटा।''

''मेरी कल्पना यह है कि जो व्यक्ति समाज या राष्ट्र के नाश पर जीता हो, उसका सर्वनाश हो जाए।''

जानकी उठकर बाहर चली,''अरे! तू तो जमकर चाचा से जूझने लगा। वहाँ चार बच्चे बेचारे दरवाज़े पर खड़े होंगे। लड़ तू, मैं जाती हूँ।'' उसने मुझ से कहा,''समझा दो बाबू, मैं तो आप ही कुछ नहीं समझती, फिर इसे क्या समझाऊँगी!'' उसने फिर लाल की ओर देखा,''चाचा जो कहें, मान जा बेटा। यह तेरे भले ही की कहेंगे।''

वह बेचारी कमर झुकाए, उस साठ बरस की वय में भी घूँघट सँभाले चली गई। उस दिन उसने मेरी और लाल की बातों की गंभीरता नहीं समझी।

''मेरी कल्पना यह है कि,'' उत्तेजित स्वर में लाल ने कहा,''ऐसे दुष्ट, व्यक्ति-नाशक राज के सर्वनाश में मेरा भी हाथ हो।''

''तुम्हारे हाथ दुर्बल हैं उनसे जिनसे तुम पंगा लेने जा रहे हो, चर्र-मर्र हो उठेंगे, नष्ट हो जाएँगे।''

''चाचा जी, नष्ट हो जाना तो यहाँ का नियम है। जो सँवारा गया है, वह बिगड़ेगा ही। हमें दुर्बलता के डर से अपना काम नहीं रोकना चाहिए। कर्म के समय हमारी भुजाएँ दुर्बल नहीं, भगवान की सहस्र भुजाओं की सखियाँ हैं।''

''तो तुम क्या करना चाहते हो?''

''जो भी मुझसे हो सकेगा, करूँगा।''

''षड्यंत्र?''

''ज़रूरत पड़ी तो ज़रूर।''

''विद्रोह?''

''हाँ, अवश्य।''

''हत्या?''

''हाँ, हाँ, हाँ!''

''बेटा, तुम्हारा माथा न जाने कौन-सी किताब पढ़ते-पढ़ते बिगड़ रहा है। सावधान!''

मेरी धर्मपत्नी और लाल की माँ एक दिन बैठी हुई-बातें कर रही थीं कि मैं पहुँच गया। कुछ पूछने के लिए कई दिनों से मैं उसकी तलाश में था।

''क्यों लाल की माँ, लाल के साथ किसके लड़के आते हैं तुम्हारे घर में?''

''क्या जानूँ बाबा!'' उसने सरलता से कहा,''मगर वे सभी मेरे लाल ही की तरह प्यारे मुझे दिखते हैं। सब लापरवाह। वे इतना हँसते, गाते और हो-हल्ला मचाते हैं कि मैं मुग्ध हो जाती हूँ।''

मैंने एक ठंडी साँस ली,''हूँ, ठीक कहती हो। वे बातें कैसी करते हैं, कुछ समझ पाती हो?''

''बाबू, वे लाल की बैठक में बैठते हैं। कभी-कभी जब मैं उन्हें कुछ खिलाने-पिलाने जाती हूँ, तब वे बड़े प्रेम से मुझे 'माँ' कहते हैं।'' मेरी छाती फूल उठती है मानो वे मेरे ही बच्चे हैं।

''हूँ'' मैंने फिर साँस ली।

''एक लड़का उनमें बहुत ही हँसोड़ है। खूब तगड़ा और बली दिखता है। लाल कहता था, वह डंडा लड़ने में, दौड़ने में, घूँसेबाजी में, छेड़खानी करने और हो-हो, हा-हा कर हँसने में समूचे कॉलेज में फर्स्ट है। उसी लड़के ने एक दिन, जब मैं उन्हें हलवा परोस रही थी, मेरे मुँह की ओर देखा कहा,'माँ! तू तो ठीक भारत माता-सी लगती है। तू बूढ़ी, वह बूढ़ी। उसका उजला हिमालय है, तेरे केश। हाँ, नक्शे से साबित करता हूँ, तू भारत माता है। सिर तेरा हिमालय माथे की दोनों गहरी बड़ी रेखाएँ गंगा और यमुना, यह नाक विन्ध्याचल ठोड़ी कन्याकुमारी तथा छोटी-बड़ी झुर्रियाँ-रेखाएँ भिन्न-भिन्न पहाड़ और नदियाँ हैं। जरा पास आ मेरे। तेरे केशों को पीछे से आगे बाएँ कँधे पर लहरा दूँ, वह बर्मा बन जाएगा। बिना उसके भारत माता का श्रृंगार शुद्ध न होगा।''

जानकी उस लड़के की बातें सोच गद्‌गद् हो उठी,''बाबू, ऐसा ढीठ लड़का! सारे बच्चे हँसते रहे और उसने मुझे पकड़, मेरे बालों को बाहर कर अपना बर्मा तैयार कर लिया!''

उसकी सरलता मेरी आँखों में आँसू बनकर छा गई। मैंने पूछा,''लाल की माँ, और भी वे कुछ बातें करते हैं? लड़ने की, झगड़ने की, गोली या बन्दूक की?''

''अरे बाबू'' उसने मुस्कराकर कहा,''वे सभी बातें करते हैं। उनकी बातों का कोई मतलब थोड़े ही होता है। सब जवान हैं, लापरवाह हैं। जो मुँह में आता है, बकते हैं। कभी-कभी तो पागल-सी बातें करते हैं। महीना-भर पहले एक दिन लड़के बहुत उत्तेजित थे। न जाने कहाँ, लड़कों को सरकार पकड़ रही है। मालूम नहीं, पकड़ती भी है या वे यों ही गप हाँकते थे। मगर उस दिन वे यही बक रहे थे, 'पुलिसवाले केवल संदेह पर भले आदमियों के बच्चों को त्रास देते हैं, मारते हैं, सताते हैं। यह अत्याचारी पुलिस की नोचता है। ऐसी नीच शासन-प्रणाली को स्वीकार करना अपने धर्म को, कर्म को, आत्मा को, परमात्मा को भुलाना है। धीरे-धीरे घुलाना-मिटाना है।'

''एक ने उत्तेजित भाव से कहा,'अजी, ये परदेसी कौन लगते हैं हमारे, जो बरबस राजभक्त बनाए रखने के लिए हमारी छाती पर तोप का मुँह लगाए अड़े और खड़े हैं। उफ! इस देश के लोगों के हिये की आँखें मुँद गई हैं। तभी तो इतने जुल्मों पर भी आदमी आदमी से डरता है। ये

लोग शरीर की रक्षा के लिए अपनी-अपनी आत्मा की चिता सँवारते फिरते हैं। नाश हो इस परतंत्रतावाद का!'

दूसरे ने कहा, ''लोग ज्ञान न पा सकें, इसलिए इस सरकार ने हमारे पढ़ने-लिखने के साधनों को अज्ञान से भर रखा है। लोग वीर और स्वाधीन न हो सकें, इसलिए अपमानजनक और मनुष्यताहीन नीति-मर्दक कानून गढ़े हैं। गरीबों को चूसकर, सेना के नाम पर पले हुए पशुओं को शराब से, क़बाब से, मोटा-ताजा रखती है यह सरकार। धीरे-धीरे जोंक की तरह हमारे देश का धर्म, प्राण और धन चूसती चली जा रही है यह शासन-प्रणाली!''

''ऐसे ही अंट-संट ये बातूनी बका करते हैं बाबू। जब भी चार छोकरे जुटे, तभी यही चर्चा। लाल के साथियों का मिज़ाज भी उसी-सा अल्हड़-बिल्हड़ मुझे मालूम पड़ता है। ये लड़के ज्यों-ज्यों पढ़ते जा रहे हैं, त्यों-त्यों बक-बक में बढ़ते भी जा रहे हैं।''

''यह बुरा है, लाल की माँ!'' मैंने गहरी साँस ली।

जमींदारी के कुछ ज़रूरी काम से चार-पाँच दिनों के लिए बाहर गया था। लौटने पर बंगले में घुसने के पूर्व लाल के दरवाज़े पर जो नज़र पड़ी तो वहाँ एक भयानक सन्नाटा सा नज़र आया- जैसे घर उदास हो, रोता हो।

भीतर-आने पर मेरी धर्मपत्नी मेरे सामने उदास मुख खड़ी हो गई।

''तुमने सुना?''

''नहीं तो, कौन-सी बात?''

''लाल की माँ पर भयानक विपत्ति टूट पड़ी है।''

मैं कुछ-कुछ समझ गया, फिर भी विस्तृत विवरण जानने को उत्सुक हो उठा,''क्या हुआ? ज़रा साफ़-साफ़ बताओ।''

''वही हुआ जिसका तुम्हें भय था। कल पुलिस की एक पलटन ने लाल का घर घेर लिया था। बारह घंटे तक तलाशी हुई। लाल, उसके बारह-पन्द्रह साथी, सभी पकड़ लिए गए हैं। सभी लड़कों के घरों की तलाशी हुई है। सबके घरों से भयानक-भयानक चीज़ें निकली हैं।''

''लाल के यहाँ?''

''उसके यहाँ भी दो पिस्तौल, बहुत-से कारतूस और पत्र पाए गए हैं। सुना है, उन पर हत्या, षड्यंत्र, सरकारी राज्य उलटने की चेष्टा आदि अपराध लगाए गए हैं।''

''हूँ'' मैंने ठंडी साँस ली,''मैं तो महीनों से चिल्ला रहा था कि वह लौंडा धोखा देगा। अब यह बूढ़ी बेचारी मरी। वह कहाँ है? तलाशी के बाद तुम्हारे पास आई थी?''

''जानकी मेरे पास कहाँ आई! बुलवाने पर भी कल नकार गई। नौकर से कहलाया,'परौंठे बना रही हूँ, हलवा तरकारी अभी बनाना है, नहीं तो, वे बिल्हड़ बच्चे हवालात में मुरझा न जाएँगे। जेलवाले और उत्साही बच्चों की दुश्मन यह सरकार उन्हें भूखों मार डालेगी। मगर मेरे जीते-जी यह नहीं होने का।''

''वह पागल है, भोगेगी,'' मैं दुख से टूटकर चारपाई पर गिर पड़ा। मुझे लाल के कर्मों पर घोर खेद हुआ।

इसके बाद प्राय: एक वर्ष तक वह मुकद्मा चला। कोई भी अदालत के कागज उलटकर देख सकता है सी.आई.डी. ने और उसके प्रमुख सरकारी वकील ने उन लड़कों पर बड़े-बड़े दोषारोपण किए। उन्होंने चारों ओर गुप्त समितियाँ कायम कीं थीं, खर्चे और प्रचार के लिए डाके डाले थे, सरकारी अधिकारियों के यहाँ रात में छापा मारकर शस्त्र एकत्र किए थे, पलटन में उन्होंने बगावत फैलाने का प्रयत्न किया था। उन्होंने न जाने किस पुलिस के दारोगा को मारा था और न जाने कहाँ, न जाने किस पुलिस सुपरिंटेंडेंट को। ये सभी बातें सरकार की ओर से प्रमाणित की गई।

इधर उन लड़कों की पीठ पर कौन था! प्राय: कोई नहीं। सरकार के डर के मारे पहले तो कोई वकील ही उन्हें नहीं मिल रहा था, फिर एक बेचारा मिला भी, तो 'नहीं' का भाई। हाँ, उनकी पैरवी में सबसे अधिक परेशान वह बूढ़ी रहा करती। वह लोटा, थाली, जेवर आदि बेच-बेचकर सुबह-शाम उन बच्चों को भोजन पहुँचाती। फिर वकीलों के यहाँ जाकर दाँत निपोरती, गिड़गिड़ाती, कहती,''सब झूठ है। न जाने कहाँ से, पुलिसवालों ने ऐसी-ऐसी चीज़ें हमारे घरों से पैदा कर दी हैं। वे लड़के केवल बातूनी हैं। हाँ, मैं भगवान का चरण छूकर कह सकती हूँ, तुम जेल में जाकर देख आओ, वकील बाबू। फूल-से बच्चे हत्या कर सकते हैं?''

उसका तन सूखकर काँटा हो गया, कमर झुककर धनुष-सी हो गई, आँखें निस्तेज, मगर उन बच्चों के लिए दौड़ना,'हाय-हाय' करना उसने बंद न किया। कभी-कभी सरकारी नौकर, पुलिस या वार्डर झुँझलाकर उसे झिड़क देते, धकिया देते।

उसको अन्त तक यह विश्वास कहा कि यह सब पुलिस की चालबाजी है। अदालत में जब दूध का दूध और पानी का पानी किया जाएगा तब वे बच्चे ज़रूर बेदाग छूट जाएँगे। वे फिर उसके घर में लाल के साथ आएँगे। उसे 'माँ' कहकर पुकारेंगे।

मगर उस दिन उसकी कमर–टूट गई, जिस दिन ऊँची अदालत ने भी लाल को, उस बंगड़ लठैत को तथा दो और लड़कों को फाँसी और दस को दस वर्ष से सात वर्ष तक की कड़ी सज़ाएँ सुना दीं।

वह अदालत के बाहर झुकी खड़ी थी। बच्चे बेड़ियाँ बजाते, मस्ती से झूमते बाहर आए। सबसे पहले उस बंगड़ की नज़र उस पर पड़ी।

''माँ!'' वह मुस्कराया,''अरे, हमें तो हलवा खिला–खिलाकर तूने गधे–सा तगड़ा कर दिया है, ऐसा कि फाँसी की रस्सी टूट जाए और हम अमर के अमर बने रहें। मगर तू स्वयं सूख कर काँटा हो गई है! क्यों पगली, तेरे लिए घर में खाना नहीं है क्या?''

''माँ!'' उसके लाल ने कहा,''तू भी जल्द वहीं आना जहाँ हम लोग जा रहे हैं। यहाँ से थोड़ी ही देर का रास्ता है, माँ!'' एक साँस में पहुँचेगी। वहीं हम स्वतन्त्रता से मिलेंगे, तेरी गोद में खेलेंगे। तुझे कंधे पर उठाकर इधर से उधर दौड़ते फिरेंगे। समझती है? वहाँ बड़ा आनन्द है!''

''आएगी न माँ!'' बंगड़ ने पूछा!

''आएगी न माँ!'' लाल ने पूछा।

''आएगी न माँ!'' फाँसी–दंड–प्राप्त दो दूसरे लड़कों ने भी पूछा।

और वह टुकुर–टुकुर उनका मुँह ताकती रही। ''तुम कहाँ जाओगे पगलो?''

जब से लाल और उसके साथी पकड़े गए, तब से शहर या मुहल्ले का कोई भी आदमी लाल की माँ से मिलने से डरता था। उसे रास्ते में देखकर जाने–पहचाने बगलें झाँकने लगते। मेरा स्वयं अपार प्रेम था उन बेचारी बूढ़ी पर, मगर मैं भी बराबर दूर ही रहा। कौन अपनी गर्दन मुसीबत में डालता, विद्रोही की माँ से सम्बन्ध रखकर?

उस दिन ब्यालू करने के बाद कुछ देर के लिए पुस्तकालय वाले कमरे में गया किसी महान् लेखक की कोई महान् कृति क्षण–भर देखने के लालच से। मैंने मेज़िनी की एक जिल्द निकालकर उसे खोला। पहले पन्ने पर पेंसिल की लिखावट देखकर चौंका। ध्यान देने पर पता चला, वे लाल के हस्ताक्षर थे। मुझे याद पड़ गई। तीन वर्ष पूर्व उस पुस्तक को मुझसे माँगकर उस लड़के ने पढ़ा था।

एक बार मेरे मन में बड़ा मोह उत्पन्न हुआ उस लड़के के लिए। उसके पिता रामनाथ की दिव्य और स्वर्गीय तस्वीर मेरी आँखों के आगे नाच गई। लाल की माँ पर उसके सिद्धांतों,

विचारों या आचरणों के कारण जो वज्रपात हुआ था उसकी एक ठेस मुझे भी, उसके हस्ताक्षर को देखते ही लगी। मेरे मुँह से एक गंभीर, लाचार, दुर्बल साँस निकलकर रह गई।

पर, दूसरे ही क्षण पुलिस सुपरिंटेंडेंट का ध्यान आया। उसकी भूरी, डरावनी, अमानवी आँखें मेरी 'आप सुखी तो जग सुखी' आँखों में वैसे ही चमक गईं, जैसे ऊजड़ गाँव के सिवान में कभी-कभी भुतही चिंगारी चमक जाया करती है। उसके रूखे फौलादी हाथ, जिनमें लाल की तस्वीर थी, मानो मेरी गर्दन नापने लगे। मैं मेज़ पर से रबर (इरेज़र) उठा कर उस पुस्तक पर से उसका नाम उधेड़ने लगा।

उसी समय मेरी पत्नी के साथ लाल की माँ वहाँ आई। उसके हाथ में एक पत्र था।

''अरे!'' मैं अपने को रोक न सका,''लाल की माँ! तुम तो बिल्कुल पीली पड़ गई हो। तुम इस तरह मेरी ओर निहारती हो, मानो कुछ देखती ही नहीं हो। यह हाथ में क्या हैं।''

उसने चुपचाप पत्र मेरे हाथ में दे दिया। मैंने देखा, उस पर जेल की मुहर थी। सजा सुनाने के बाद वह वहीं भेज दिया गया, यह मुझे मालूम था।

मैं पत्र निकालकर पढ़ने लगा, वह उसकी अंतिम चिट्ठी थी। मैंने कलेजा थाम कर उसे ज़ोर से पढ़ दिया:

''माँ!

जिस दिन तुम्हें यह पत्र मिलेगा उसके ठीक सवेरे में बाल अरुण के किरण-पथ पर चढ़कर उस ओर चला जाऊँगा। मैं चाहता तो अंत समय तुमसे मिल सकता था, मगर इससे क्या फ़ायदा। मुझे विश्वास है, तुम मेरी जन्म-जन्मांतर की जननी ही रहोगी। मैं तुमसे दूर कहाँ जा सकता हूँ! माँ! जब तक पवन साँस लेता है, सूर्य चमकता है, समुद्र लहराता है, तब तक कौन मुझे तुम्हारी करूणामयी गोद से दूर खींच सकता है?

दिवाकर थमा रहेगा, अरुण रथ लिए जमा रहेगा! मैं, बंगड़ वह यह- सभी तेरी इंतज़ार में रहेंगे।

हम मिले थे, मिले हैं, मिलेंगे। हाँ माँ!

तेरा लाल''

पढ़ने के बाद पत्र को काँपते हाथ से मैंने उस भयानक लिफ़ाफे में भर दिया। मेरी पत्नी की विफलता हिचकियों पर चढ़कर कमरे को करुणा से कँपाने लगी। मगर, वह जानकी ज्यों-की-

त्यों, लकड़ी पर झुकी, पूरी खुली और भावहीन आँखों में मेरी ओर देखती रही, मानो वह उस कमरे में थी ही नहीं।

क्षण-भर बाद हाथ बढ़ाकर मौन भाषा में उसने पत्र माँगा। और फिर, बिना कुछ कहे कमरे के फाटक के बाहर हो गई, डुगुर-डुगुर लाठी टेकती हुई।

इसके बाद शून्य-सा होकर मैं धम्-से कुरसी पर गिर पड़ा। माथा चक्कर खाने लगा। उस पाजी लड़के के लिए नहीं, इस सरकार की क्रूरता के लिए भी नहीं, उस बेचारी भोली, बूढ़ी जानकी- लाल की माँ के लिए। आह! वह कैसी स्तब्ध थी। उतनी स्तब्धता किसी दिन प्रकृति को मिलती तो आँधी आ जाती। समुद्र पाता तो बौखला उठता।

जब एक का घंटा बजा, मैं ज़रा सगबगाया। ऐसा मालूम पड़ने लगा मानो हरारत पैदा हो गई माथे में, छाती में, रग-रग में। पत्नी ने आकर कहा,''बैठे ही रहोगे? सोओगे नहीं?'' मैंने इशारे से उन्हें जाने को कहा।

फिर मेज्जिनी की जिल्द पर नज़र गई। उसके ऊपर पड़े रबर पर भी। फिर अपने सुखों की, जमींदारी को, धनिक जीवन की और उस पुलिस अधिकारी की निर्दय, नीरस, निस्सार आँखों की स्मृति कलेजे में कंपन भर गई। फिर रबर उठाकर मैंने उस पाजी का पेंसिल-खचित नाम पुस्तक की छाती पर से मिटा डालना चाहा।

''माँ.......!''

मुझे सुनाई पड़ा। ऐसा लगा, गोया लाल की माँ कराह रही है। मैं रबर हाथ में लिए दहलते दिल से, खिड़की की ओर बढ़ा। लाल के घर की ओर कान लगाने पर कुछ सुनाई न पड़ा। मैं सोचने लगा, भ्रम होगा। वह अगर कराहती होती तो एकाध आवाज़ और अवश्य सुनाई पड़ती। वह कराहने वाली औरत है भी नहीं। रामनाथ के मरने पर भी उस तरह नहीं घिघियाई जैसे साधारण स्त्रियाँ ऐसे अवसरों पर लड़पा करती हैं।

मैं पुन: सोचने लगा। वह उस नालायक के लिए क्या नहीं करती थी। खिलौने की तरह, आराध्य की तरह, उसे दुलारती और सँवारती फिरती थी। पर आह रे छोकरे!
''माँ.......!''

फिर वही आवाज़। ज़रूर जानकी रो रही है, वैसे ही जैसे कुर्बानी के पूर्व गाय रोए। ज़रूर वही विकल, व्यथित, विवश बिलख रही है। हाय री माँ! अभागिनी वैसे ही पुकार रही है जैसे वह पाजी गाकर, मचलकर, स्वर को खींचकर उसे पुकारता था।

अँधेरा धूमिल हुआ, फीका पड़ा। मिट चला। उषा पीली हुई, लाल हुई। रवि रथ लेकर वहाँ क्षितिज के उस छोर पर आकर पवित्र मन से खड़ा हो गया। मुझे लाल के पत्र की याद आ गई।

''माँ.......!''

मानो लाल पुकार रहा था, मानो जानकी प्रतिध्वनि की तरह उसी पुकार को गा रही थी। मेरी छाती धक्-धक् करने लगी। मैंने नौकर को पुकार कर रहा,''देखो तो, लाल की माँ क्या कर रही है?''

जब वह लौटकर आया, तब मैं एक बार पुन: मेज और मैज्ज़िनी के सामने खड़ा था। हाथ में रबर लिए उसी उद्देश्य से। उसने घबराए स्वर में कहा,''हुजूर, उनकी तो अजीब हालत है। घर में ताला पड़ा है और वे दरवाजे पर पाँव पसारे, हाथ में कोई चिट्ठी लिए, मुँह खोले, मरी बैठी है। हाँ सरकार, विश्वास मानिए, वे मर गई हैं। साँस बंद है, आँखें खुलीं।''

अभ्यास

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दें:-

1. 'उसकी माँ' कहानी का सार लिखें।
2. सरलता, ममता, त्याग और तपस्या की सजीव मूर्ति के आधार पर लाल की माँ का चरित्र चित्रण कीजिए।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें:-

1. पुलिस सुपरिंटेंडेंट के पूछने पर लेखक ने लाल के परिवार के बारे में उन्हें क्या बताया?
2. पुलिस सुपरिंटेंडेंट ने लेखक को लाल से सावधान और दूर रहने का सुझाव क्यों दिया?

3. लाल और उसके साथियों को पैरवी करने के लिए कोई भी वकील क्यों नहीं मिला?
4. लाल की माँ सभी युवकों को लाल की तरह ही क्यों मानती थी?
5. लड़कों ने माँ से अपनी फाँसी की सजा की बात क्यों छिपाई?
6. प्रस्तुत कहानी में लाल और उसके साथियों से आज के नवयुवकों को क्या प्रेरणा मिलती है?
7. 'उसकी माँ' कहानी के शीर्षक की सार्थकता को स्पष्ट कीजिए।

****

25. सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

'अज्ञेय' उपनाम से प्रसिद्ध महान् लेखक का पूरा नाम 'सच्चिदानन्द वात्स्यायन' है। आपके पिता जी का नाम साथ लगाये जाने के कारण तथा उपनाम जोड़ने के कारण आपको सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' कहा जाता है।

अज्ञेय जी का जन्म मार्च सन् 1914 ई० में कसिया, जिला गोरखपुर उत्तरप्रदेश में हुआ था। आपके पिता डॉ० हीनानन्द शास्त्री पुरातत्व विभाग में एक उच्च पदाधिकारी थे। उनका स्थानान्तरण प्राय: होता रहता था। अत: अज्ञेय जी की शिक्षा भी एक स्थान पर न हो सकी। सन् 1930 में आप एम०ए० की तैयारी कर रहे थे, परन्तु देश-प्रेम के कारण आप क्रान्तिकारियों के क्रिया-कलापों में सहयोग देने लगे। फलत: आपको बंदी बना कर जेल में डाल दिया गया। इस प्रकार आपकी देशभक्ति और साहित्य-सेवा का समन्वय हुआ।

आपकी पहली कहानी 1924 में सेवा-पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। इस प्रकार विद्यार्थी काल से ही आप साहित्य सेवा में लग गये थे।

आप कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार और कवि भी हैं। आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ निम्नलिखित हैं:-

कहानी-संग्रह- परम्परा, विपथगा, जयदोल, कोठरी की बात।

उपन्यास-शेखर- एक जीवनी, नदी के द्वीप।

कविताएँ- चिन्ता, भग्नदूत, हरी घास पर क्षण भर इत्यादि।

आपकी रचनाओं में विद्रोह का स्वर प्राय: रहता है और मानव को प्रेरित करता है कि वह अपने अन्दर भी झाँक कर देखे कि उसमें कौन-कौन सी त्रुटि है।

भाषा- अज्ञेय जी की भाषा भावों के अनुरूप है। अज्ञेय जी प्रयोगवादी साहित्यकार कहे जाते हैं। इस दृष्टि से इनकी भाषा में कुछ नये प्रयोग भी देखने को मिलते हैं।

पाठ-परिचय

'अज्ञेय' द्वारा रचित 'सेब और देव' कहानी एक उत्कृष्ट रचना है। अज्ञेय जी की रचनाओं में अधिकतर विद्रोह स्वर का चित्रण रहता है जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य को प्रेरणा मिलती है कि वह अपने मन के अंदर भी झाँक कर देखे कि उसमें कौन-कौन से दोष हैं। प्रस्तुत

कहानी 'सेब और देव' में भी उन्होंने विद्रोही स्वर का चित्रण बड़े ही स्वाभविक ढंग से किया है। प्रोफेसर गजानन पंडित एक तरफ सेब की चोरी करते हुए बालक पर एकाएक भड़क उठते हैं, उसके मुँह पर तमाचा भी मारते हैं, उसे नसीहत भी देते हैं, ईमान धर्म की बातें करते हैं वहीं दूसरी तरफ वे स्वयं एक देवमूर्ति को चुराने की कुचेष्टा करते हैं और अंततः आत्मग्लानि के फलस्वरूप उस देवमूर्ति को यथास्थान रखकर सुख का अनुभव करते हैं। कहानी के कथानक के विकास की चारों अवस्थाओं- आरम्भ, आरोह, चरम-सीमा व अवरोह का समुचित और सम्यक् विकास हुआ है। कहानी के पात्र सजीव एवं स्वाभाविक प्रतीत होते हैं। प्रस्तुत कहानी के संवाद संक्षिप्त व सटीक हैं। प्रोफेसर गजानन के संवाद उनके मनोभावों को सजीवता प्रदान करते हैं। कहानी में वातावरण का चित्रण भी सजीव है। कुल्लू के पहाड़, चीड़ के वृक्ष, लोगों की सादगी, जगत प्रसिद्ध सेबों का पेड़ों पर लदा होना, झाड़ियों, पगडण्डियाँ आदि का चित्रण पाठक को विशेष रूप से प्रभावित करता है। कहानी का नामकरण अतीव सार्थक है। कहानी की भाषा सरल व स्वाभाविक है तथा भावों के अनुरूप है। कहानी शिक्षाप्रद है। यह हमें सीख देती है कि दूसरों के दोष देखने से पूर्व हमें अपने दोषों को भी देखना चाहिए।

सेब और देव

प्रोफैसर गजानन पण्डित ने अपना चश्मा पोंछ कर फिर आंखों पर लगाया और देखते रह गए।

मोटर पर से उतर कर और सामान डाक-बंगले में भिजवा कर उन्होंने सोचा था- ''अभी आराम करने की ज़रूरत तो है नहीं, जरा घूम-घामकर पहाड़ी सौंदर्य देख लें'' और इसीलिए मोटर के अड्डे के धक्कम-धक्के से अलग होकर वे इस पहाड़ी रास्ते पर हो लिए थे। छाया में जब चश्मे का काँच ठण्डा हो गया और उस पर उनके गर्म बदन से उठी हुई भाप जमने लगी, तब उन्होंने चश्मा उतार कर रूमाल से मुँह पोंछा। फिर चश्मा साफ करके आँखों पर चढ़ाया और देखते रह गये।

पहाड़ी रास्ता आगे एकाएक खुल गया था; चीड़ के वृक्ष समाप्त हो गये। रास्ते को पार करता हुआ एक झरना बह रहा था; उसका जितना अंश समतल भूमि में था, उस पर तो छाया थी लेकिन जहाँ वह मार्ग के एक ओर नीचे गिरता था वहाँ प्रपात के फेन पर सूर्य की किरणें पड़ रही थीं। ऐसा जान पड़ता था कि अन्धकार के कोख से चाँदी का प्रवाह फूट पड़ा है या प्रकृति-नायिका की कजरारी आँखों से स्नेह-गदगद आँसुओं की झड़ी .... और उसके पार चट्टान

के सहारे एक पहाड़ी राजपूत बाला खड़ी थी। उसकी चौंकी हुई भोली शक्ल से साफ दिखता था कि प्रोफैसर साहब का वहाँ अकस्मात् आ जाना उसे एक दम अनधिकार-प्रवेश मालूम हो रहा है।

प्रोफैसर साहब दिल्ली के एक कॉलेज में प्राचीन इतिहास और पुरातत्व के अध्यापक हैं। वे उन थोड़े लोगों में से हैं, जिनका पेशा और मनोरंजन एक ही है- मनोरंजन के लिए भी वे पुरातत्व की ओर ही जाते हैं। यहाँ कुल्लू पहाड़ की सुरम्य उपत्यकाओं में भी वे यही सोचते हुए आए हैं कि यहाँ भारत की प्राचीनतम सभ्यता के अवशेष उन्हें मिलेंगे और हिन्दूकाल की शिल्पकला के नमूने और धातु या प्रस्तर की मूर्तियाँ और जाने क्या-क्या .... लेकिन इतना सब होते हुए भी सौन्दर्य के प्रति .... जीते-जागते स्पन्दनयुत क्षणभंगुर सौन्दर्य के प्रति ..... उनकी आँखें अन्धी नहीं हैं। बाला को वहाँ खड़े देखकर उसके पैरों के पास बहते झरने का शब्द सुनते हुए उन्हें पहले तो एक हंसिनी का ख्याल आया, फिर सरस्वती का। यद्यपि बाला के हाथ में वीणा नहीं, एक छोटी सी छड़ी थी। उन्होंने अपने स्वर को यथासम्भव कोमल बनाकर पूछा- ''तुम कहाँ रहती हो?''

बाला ने उत्तर नहीं दिया। ससम्भ्रम दृष्टि से उनकी ओर देखकर जल्दी-जल्दी पहाड़ी पर चलने लगी।

प्रोफैसर साहब मुस्करा कर आगे चल दिए। बालिका का भोलापन उन्हें अच्छा लगा। सोचने लगा- ''कितने सीधे-सादे सरल स्वभाव के होते हैं यहाँ के लोग! प्रकृति की सुखद गोद में खेलते हुए इन्हें न फिक्र है, न खटका है, न लोभ-लालच है। अपने खाने-पीने, ढोर चराने, गाने नाचने में दिन बिता देते हैं। तभी तो बाहर से आने वाले आदमी को देखकर संकोच होता है। अपने आप में लीन रहने वाले इन भोले प्राणियों को बाहर वालों से क्या सरोकार!''

आगे बढ़ते-बढ़ते प्रोफैसर साहब सोचने लगे- ''ऐसे भले लोग न होते तो प्राचीन सभ्यता के जो अवशेष बचे हैं, ये भी क्या रह जाते? खुदा-न-खास्ता ये लोग यूरोपियन सभ्यता को सीखे हुए होते तो एक दूसरे को नोच-नोच कर खा जाते; उसकी राख भी न बची रहने देते, लेकिन यहाँ तो फाहियान के जमाने का ही आदर्श है। सब को अपने काम से मतलब है। दूसरों के काम में दखल देना, दूसरों के मुनाफे की ओर दृष्टि डालना महा-पाप है। लोग ढोर चरने छोड़ देते हैं, सायं को ले आते हैं। कभी चोरी नहीं, कभी शिकायत नहीं। खेती खड़ी है, कोई पहरेदार नहीं। मजाल क्या कि एक भट्ठा भी चोरी हो जाए। मेरे ख्याल में तो मैं एक चवन्नी यहाँ राह में फैंक दूँ तो कोई उठायेगा भी नहीं कि न जाने किस की है और कौन लेने आए।''

रास्ता अब फिर घिर गया था, लेकिन चीड़ के दीर्घकाय वृक्षों से नहीं, अब उनके दोनों ओर सेब के छोटे-छोटे लचीले गात वाले पेड़ डार-डार पर लदे फलों के कारण मानो विनय से झुके हुए – क्योंकि जहाँ सार होता है, वहाँ विनय भी अवश्य होता है; क्षुद्र व्यक्ति ही अविनयी हो सकता है- और कभी-कभी हवा से झूम-से जाते हुए। कुल्लू के जगत प्रसिद्ध सेबों की प्रशंसा प्रोफ़ैसर साहब ने सुन ही रखी थी। कई बार मँगवा कर खाए भी थे, लेकिन आज इस प्रकार पेड़ों पर लगे हुए असंख्य फलों को देखकर उनकी तबीयत खुश हो गई और और इससे भी अधिक खुश हुई इस बात से कि गन्ध, स्वाद और रस की उस विपुल राशि को न कोई रक्षक देखने आता है और न बचाव के लिए बाड़ तक लगाई गई है। पहाड़ी सभ्यता के प्रति उनका आदरभाव और भी बढ़ गया। क्या शहर में इस तरह बाग रह सकता? फलों के कभी पकने की नौबत न आती। और नहीं तो स्कूल-कालिजों के लड़के ही टिड्डी दल की तरह आकर सब साफ कर देते और जितना खाते नहीं, उतना बिगाड़ देते। वहाँ कोई बाग लगाए तो दस एक भोजपुरिए लठैत पहरेदार रखे और फिर भी चारों ओर जेल की-सी दीवारें खड़ी करे कि कोई लुक-छिप कर न ले भागे, तब कहीं चैन से रह सके। और यहाँ-यहाँ बाग की सीमा बनाने के लिए एक तार का जंगला तक नहीं है। पेड़ों के नीचे जो लम्बी-लम्बी पहाड़ी घास लग रही है, वहीं रास्ते के पास आकर रुक आती है। वहीं तक बाग की सीमा समझ लो, तो समझ लो। नहीं तो ....।

प्रोफ़ैसर साहब के पास ही धम्म से कुछ गिरा। उन्होंने चौंक कर देखा। उन्हें आते देखकर एक लड़का पेड़ पर से कूदा है और उसकी अपर्याप्त आड़ में छिपने की कोशिश कर रहा है। उसके हाथ में सेब हैं, जिन्हें वह अपने फटे हुए भूरे कोट में किसी तरह छिपा लेना चाहता है।

उसकी झेंपी हुई आँखें और चेहरा साफ़ कह रहा था कि वह चोरी कर रहा है।

साधारणतया, ऐसी दशा में प्रोफ़ैसर साहब किंचित ग्लानि से उसकी ओर देखते और आगे चल देते, लेकिन इस समय वैसा न कर सके। उन्हें जान पड़ा कि वह लड़का उस सारी आर्य-सभ्यता को एक साथ ही नष्ट-भ्रष्ट किए दे रहा है जो फाहियान के समय से सदियों पहले से अक्षुण्ण बन चली आई है। वे लपककर उस लड़के के पास पहुँचे और बोले- ''क्यों बे बदमाश, चोरी कर रहा है? शर्म नहीं आती दूसरे का माल खाते हुए।''

लड़का घबराया-सा खड़ा रहा, बोल न सका। प्रोफ़ैसर साहब और भड़क उठे। एक तमाचा उसके मुँह पर जमाया। सेब छीनकर घास में फैंक दिए जहाँ वे ओझल हो गए और फिर गर्दन पकड़ कर लड़के को धकेलते हुए रास्ते की ओर ले आए।

''पाजी कहीं का, चोरी करता है! तेरे जैसों के कारण तो पहाड़ी लोग बदनाम हो गए। क्यों चुराए ये सेब? यहाँ तो पैसे के दो मिलते होंगे, एक पैसे के खरीद लेता। ईमान क्यों बिगाड़ता है?''

रास्ते पर लड़के को उन्होंने छोड़ दिया। वह वहीं खड़ा आँसू-भरी आँखों से उधर देखता रहा, जहाँ घास में उसके तोड़े हुए सेब गिर कर आँखों से ओझल हो गए थे।

प्रोफैसर साहब आगे बढ़ते हुए सोच रहे थे- ''देख रहा होगा कि चोरी भी की तो भी फल नहीं मिला। बहुत अच्छा हुआ। सेबों का सड़ जाना अच्छा; चोर को मिलना अच्छा नहीं। सड़ें, चोर का क्या हक है कि खाए?''

प्रोफैसर साहब एक गाँव के पास आ रुके। अन्दाज से उन्होंने जाना कि यह मनाली होगा और उन्हें याद आया कि यहाँ एक दर्शनीय प्राचीन मन्दिर है। गाँव के लोगों से पता पूछते हुए वे मनु के मन्दिर पर पहुँच ही गए। मंदिर छोटा था, सुन्दर भी नहीं था, लेकिन संसार-भर में मनु का एक मात्र मन्दिर होने के नाते वह अलग महत्त्व रखता था। प्रोफैसर साहब कितनी ही देर तक उसकी ओर देखते रहे, यहाँ तक कि देहरी पर बैठे हुए बूढ़े पुजारी का ध्यान भी उनकी ओर आकृष्ट हो गया; आने-जाने वाले तो खैर देखते ही रहे।

प्रोफैसर साहब ने गद्‌गद् होकर पूछा- ''आसपास और भी कोई मंदिर है।''

पास खड़े हुए एक आदमी ने कहा - ''नहीं बाबू जी, यहाँ कहाँ मंदिर?''

''यहाँ मंदिर नहीं? अरे भले आदमी यहाँ तो सैकड़ों मंदिर होने चाहिए। यहाँ पर ....।''

''बाबू जी, यहाँ तो लोग मंदिर देखने आते नहीं। कभी कोई आता है तो मनुरिसि का मंदिर देखा जाता है, बस और वो हम जानते नहीं।''

पुजारी ने खाँसते हुए कहा- ''कौन सा मंदिर देखिएगा बाबू?''

''कोई और मंदिर हो; आस-पास के सब मंदिर-मूर्तियाँ मैं देखना चाहता हूँ।''

पुजारी ने थोड़ी देर सोच कर कहा- ''और तो कोई नहीं, इस चोटी के ऊपर जंगल में एक देवी का स्थान है। वहाँ पहले कभी एक किला भी था, जिसके अन्दर देवी के थान में पूजा होती थी, पर अब तो उसके कुछ पत्थर ही पड़े हैं। वहाँ कोई जाता नहीं। अब उसमें भूत बसते हैं।''

प्रोफैसर साहब कुछ मुस्कराए लेकिन बोले- ''कैसे भूत?''

''कहते हैं कि पुराने राजाओं के भूत रहते हैं- वे राजा बड़े प्रतापी थे।''

''अरे उन भूतों से मेरी दोस्ती है''- कहकर प्रोफैसर साहब ने रास्ता पूछा और क्षणभर में सोच कर पहाड़ पर चढ़ने लगे। पुजारी ने पास ही बताया था, जो मील-भर से अधिक नहीं होगा। और अभी तीन बजे हैं शाम होने तक मजे से बँगले पर पहुँच जाऊँगा।

जंगल का रूप बदलने लगा। बड़े-बड़े पेड़ समाप्त हो गए, अब छोटी-छोटी पहाड़ियाँ ही दिख पड़ने लगीं। यह पहाड़ का सुख था, जो हवा के थपेड़ों से सदा पिटता रहता था- जाड़ों में तो बर्फ की चोटें यहाँ लगे हुए किसी पेड़-पौधे को कुचल डालतीं। प्रोफैसर साहब की समझ में आने लगा कि यह ऊँचा शिखर किले के लिए बहुत उपयुक्त जगह और यह भी जान गए कि यहाँ बना हुआ किला उजड़कर कितनी जल्दी निर्विशेष हो जाएगा।

झाड़ियाँ भी छोटी होती चलीं। घास की बजाय अब पथरीली ज़मीन आई, जिस में किसी तरफ कोई बनी हुई पगडंडी नहीं थी, जिधर चले जाओ, वही मार्ग। कहीं-कहीं लाल पत्थर के भी कुछ टुकड़े दिख जाते थे, जो शायद किले की इमारत में कहीं लगे होंगे; नहीं तो इधर लाल पत्थर तो होता नहीं। कहीं-कहीं पत्थर और मिट्टी के स्तूपाकार टीले की आड़ में कोई गाढ़े रंग के पत्तों वाली झाड़ी लगी हुई दिख जाती, तो वह आसपास के उजाड़ सूनेपन को भी गहरा कर देती। साँझ के धुंधले में ऐसी झाड़ी को देख कर स्तूप में से धूम्रवत निकलते हुए किसी प्रेत की कल्पना होना कोई असम्भव बात नहीं थी।

एक ऐसे ही स्तूप की आड़ में प्रोफैसर साहब ने देखा कि एक गड्ढे में कीच भरी हुई है, जिसकी नमी से पोसे जाते हुए दो वृक्ष खड़े हैं और उनके नीचे पत्थर का एक छोटा-सा मंदिर है, जिस का द्वार बन्द पड़ा है।

प्रोफैसर साहब ने कुंडे में अटकी हुई कील निकाली तो द्वार खुलने के बजाए आगे गिर पड़ा; उनके कब्जे उखड़े हुए थे। उन्होंने किवाड़ को उठा कर एक ओर कर दिया। थोड़ी देर पीछे हट कर खड़े रहे कि बन्द रहने और सीलन के कारण हुई बदबूदार हवा बाहर निकल जाए। फिर भीतर झाँकने लगे।

मंदिर की बुरी हालत थी। भीतर न जाने कब से बलि-पशुओं के सींग-बकरे और हिरन के ..... पड़े हुए थे, जो सूखकर धूल के रंग के हो गए थे। उन पर कीड़े भी चल रहे थे। फर्श के पत्थरों के जोड़ों में से काही उग आई थी। उन सींगों के ढेर से परे देवी के काले पत्थर की मूर्ति एक ओर लुढ़क गई थी। पास में पड़ी हुई गणेश की पीतल की मूर्ति जंग से विकृत हो रही थी। केवल दूसरी ओर खड़ा श्वेत पत्थर अब भी साफ, चिकना और सधे हुए सिपाही की तरह शान्त

खड़ा था। आसपास की जर्जर अव्यवस्था में उसके उस दर्पोन्नत भाव से ऐसा जान पड़ता था, मानो क्रुद्ध होकर कह रहा हो,''मेरी इस निभृत अन्त: शाला में आकर मेरे कुटुम्ब की शान्ति भंग करने वाले तुम कौन?''

दो-एक मिनट प्रोफैसर साहब देहरी पर खड़े-खड़े ही इस दृश्य को देखते रहे। फिर उन्होंने बाँह पर टँगा हुआ अपना ओवर कोट नीचे रखा। एक बार चारों ओर देखकर निर्जन पाकर भी जूते खोल देना ही उचित समझा और भीतर जाकर देवी की मूर्ति उठा कर देखने लगे।

मूर्ति अत्यंत सुन्दर थी। पाँच सौ वर्ष से कम पुरानी नहीं थी। इस लम्बी अवधि का उस पर जरा भी प्रभाव नहीं पड़ा था या पड़ा था तो पत्थर को और चिकना कर के मूर्ति को सुन्दर ही बनाया गया था। मूर्ति कहीं बिकती तो तीन-चार हज़ार से कम की न होती। किसी अच्छे पारखी के पास होती तो दस हज़ार से भी कुछ अधिक मूल्य होता और यहाँ ऐसी उपेक्षित हालत में पड़ी है। न जाने कब से कोई इस मन्दिर तक आया भी है या नहीं।

प्रोफैसर साहब ने मूर्ति ठीक स्थान पर सीधी कर के रख दी और फिर देहरी पर आकर उसका सौन्दर्य देखने लगे।

''पाँच सौ वर्ष! पाँच सौ वर्ष से यह यहीं पड़ी होगी? न जाने कितनी पूजा इसने पाई होगी, कितनी बलियों के ताजे गर्म, पूत रक्त से स्नान करके अपना दैवी-सौंदर्य निखारा होगा और अब कितने बरसों से इन रेंगते हुए कीड़ों की लम्बी-लम्बी जिज्ञासु मूँछों की ग्लानिजनक गुदगुदाहट सह रही होगी- उफ! देवत्व की कितनी उपेक्षा! मानव नश्वर है, वह मर जाए और उसकी अस्थियों पर कीड़े रेंगे, यह समझ में आता है लेकिन देवता .... पत्थर जड़ है उसका महत्त्व कुछ नहीं। लेकिन मूर्ति तो देवता की ही है। देवत्व की चिरन्तनता की निशानी तो है। एक भावना है, पर भावना आदरणीय है। क्या यह मूर्ति यहीं पड़े रहने के काबिल है, इन कीड़ों के लिए, जिन के पास श्रद्धा को दिल नहीं, पूजने को हाथ नहीं, देखने को आँखें नहीं, छूने को त्वचा नहीं, टटोलने को हिलती हुई गन्दी मूँछें हैं। यह मूर्ति कहीं ठिकाने से होती ....!''

न जाने क्यों प्रोफैसर साहब ने एकाएक मंदिर द्वार से हट कर चारों ओर घूमकर देखा, फिर देखा। न जाने क्यों आसपास निर्जन पाकर तसल्ली की साँस ली और फिर वहाँ खड़े हुए।

मूर्ति गणेश की भी बुरी नहीं, लेकिन वह उतनी पुरानी नहीं, न इतनी सुन्दर शैली पर निर्मित है। पीतल की मूर्ति में वह बात कभी आ ही नहीं सकती जो पत्थर में होती है। देवी की उस मूर्ति को देखते-देखते प्रोफैसर साहब के हृदय की स्पन्दन-गति तीव्र होने लगी- इतनी सुन्दर जो थी

वह। वे फिर आगे बढ़ कर उसे उठाने को हुए, लेकिन फिर उन्होंने बाहर झाँक कर देखा, पर वहाँ कोई नहीं था, कोई आता ही नहीं बेचारे उस उजड़े मन्दिर के पास। किसे परवाह थी निर्जन को अपनी दीप्ति से जगमग करती हुई उस देवी की? देवी के प्रति दया और सहानुभूति से गद्‌गद् होकर प्रोफैसर साहब फिर भीतर आए, लपक कर मूर्ति को उठाया और अपने धड़कते हुए हृदय को शान्त करने की कोशिश करते हुए एकटक उसे देखने लगे।

''दिल इतना धड़क क्यों रहा है?'' प्रोफैसर साहब को ऐसा लगा, जैसे वे डर रहे हैं। फिर उन्हें इस विचार पर हँसी-सी आ गई। ''डर किस से रहा हूँ मैं? प्रेतों से! मैं भी क्या यहाँ के लोगों की तरह अंधविश्वासी हूँ, जो प्रेतों को मानूँगा?'' कविता के लिहाज़ से भले ही मुझे यह सोचना अच्छा लगे कि यहाँ प्रेत बसते हैं, और रात को जब अंधेरा हो जाता है, तब इसके बन्द मंदिर में आकर देवी के आसपास नाचते होंगे .... देवी है, शिव है, उनके गण भी तो होने चाहिएँ। रात को मूर्तियों को घेर-घेर कर नाचते होंगे और इन न जाने कब के बलि-पशुओं के भस्मीभूत सींगों से प्रेतोचित प्रसाद पाते होंगे। और दिन में -मंदिर की कन्दराओं में, दरारों में छिपकर अपनी उपास्य मूर्तियों की रक्षा करते होंगे, देखते होंगे कि कौन आता है, क्या करता है........''

उन्होंने फिर मूर्ति को रख दिया और लौट कर देखा। उन्हें एकाएक लगा जैसे जैसे उस अखण्ड नीरवता में कोई छाया-सी आकर उनके पीछे आकर कहीं छिप गई है। प्रेत! वे फिर एक रुकती-सी हँसी हँस कर बाहर निकल आए। इस घोर निर्जन ने मेरे शहर के शोर से उलझे स्नायुओं को और उलझा दिया है। इसी नतीजे पर वे पहुँचे और फिर मन्दिर की ओर वे देखने लगे।

दिन ढल रहा था। मंदिर की लम्बी बढ़ती हुई छाया को देखकर प्रोफैसर साहब को ऐसा लगा, मानो वह दूर हटती-हटती भी मंदिर से अलग होना नहीं चाहती; उससे लिपटी हुई है, मानो उसकी रक्षा करना चाहती हो, मानो यह मंदिर और उसकी मूर्तियों उस छाया की गोद के शिशु हों। प्रोफैसर साहब का मन भटकने लगा।

ईजिप्ट के पिरामिड भी इतने ही उपेक्षित पड़े थे। यह मंदिर आकार में छोटा है, वे विराट थे, लेकिन उपेक्षा तो वही थी। उनमें भी न जाने क्या-क्या बातें फैला रखी थीं, भूत-प्रेतों की। अन्त में यूरोप के पुरातत्त्वविद् साहस कर के वहाँ गए, न्होंने उनमें प्रवेश किया और अब संसार के बड़े-बड़े संग्रहालयों में वे खज़ाने पड़े हैं और महत्त्व के अनुरूप सम्मान पाते हैं। फिलाडेल्फिया के अजायबघर में नूताँ खामेन की वह स्वर्णमूर्ति ...... उस नौ सेर खरे सोने का मूल्य ही तीस

हज़ार रुपये होगा। फिर प्राचीनता का मूल्य अलग और उसमें जड़े हुए हीरे जवाहरात का अलग .... कुल मिला कर लाखों रुपयों की चीज़ है वह ....।

वे फिर भीतर गए। मूर्ति उठाई और रखकर बाहर आ गए। उन्होंने फिर सब ओर देखा। कोई नहीं था। सूर्य भी एक छोटे से बादल के पीछे छिप गया था।

एकाएक उनका घबराहट का कारण स्पष्ट हो गया। कुछ ठण्ड-सा जानकर उन्होंने जल्दी से ओवरकोट पहना और फिर भीतर चले गए।

''मूर्ति के लिए उपयुक्त यह स्थान कदापि नहीं है। मंदिर है, पर जहाँ पूजा ही नहीं होती, वह कैसा मंदिर? और क्या गाँव वाले परवाह करते हैं? यहाँ मंदिर भी गिर जाए, तो शायद उन्हें महीनों पता ही न लगे। कभी किसी भटकी हुई भेड़-बकरी की खोज में आया हुआ गडरिया आकर देखे तो देखे। यहाँ मूर्ति को पड़े रहने देना भूल ही नहीं, पाप है।''

इस निश्चय पर भी आकर उन्होंने एक बार बाहर आकर तसल्ली की कि कहीं कोई देख तो नहीं रहा है, तब लौट कर मूर्ति उठाकर जल्दी से कोट के भीतर छिपाई, किवाड़ को यथास्थान खड़ा किया, बूट एक हाथ में उठाए और बिना लौटकर देखते हुए उतरने लगे।

जब देवी का स्थान और उसके ऊपर खड़े दोनों पेड़ों की फुनगी तक आँखों की ओट हो गई, तब उन्होंने रुक कर बूट पहने और फिर धीरे-धीरे उतरते हुए ऐसा मार्ग खोजने लगे, जिससे गाँव में से होकर न जाना पड़े; शिखर के दूसरे मुख से ही वे उतर सकें।

गाँव मील-भर पीछे छूट गया था। सेबों के बगीचे फिर शुरू हो गए थे। कहीं कोई मधु पीकर अघाया हुआ मोटा-सा काला भौंरा प्रोफ़ैसर साहब के कोट से टकरा जाता था, कभी कोई तितली उनका रास्ता काट जाती थी। सूर्य की धूप लाल हो गई थी .... वे सब अपना-अपना ठिकाना खोज रहे थे। प्रोफ़ैसर साहब भी अपने ठिकाने को जा रहे थे। उनका हृदय आह्लाद से भर रहा था। उनका पहला ही दिन कितना सफल हुआ था। कितना सौन्दर्य उन्होंने देखा था और कितना सौंदर्य, बहुमूल्य सौंदर्य उन्होंने पाया था! कुल्लू का अनिर्वचनीय सौंदर्य! वास्तव में वह देवताओं का अंचल है........।

उस समय प्रोफ़ैसर साहब के भीतर, जो कुल्लू-प्रेम का ही नहीं, मानव-प्रेम का, संसार-भर की शुभेच्छा का रस उमड़ रहा था, उसकी बराबरी रस-भरे सेब भी क्या करते? प्रोफ़ैसर साहब की स्नेह उँडेलती हुई दृष्टि के नीचे से मानो सेब और पककर और रस से भर जाते थे, उनका रंग कुछ और लाल हो जाता था। कितने रस-गद्गद् हो रहे थे प्रोफ़ैसर साहब!

सेब के बाग में फिर कहीं धमाका हुआ। प्रोफैसर साहब ने देखा कि एक लड़का उन्हें देख कर शाखा से कूदा है। उसके कूदने के धक्के से फलों से लदी हुई शाखा टूटकर आ गिरी है।

प्रोफैसर साहब ने रोब के स्वर में कहा– ''क्या कर रहा है?''

लड़के ने सहम कर उनकी ओर देखा ...... वही लड़का था। हाथ का थोड़ा खाया हुआ सेब वह कोट के, गलुबन्द के भीतर छिपा रहा था।

प्रोफैसर साहब के तन में आग लग गई। लपक कर बालक के कोट का गला उन्होंने पकड़ा, झटका देकर बाहर गिराया। दो तमाचे उसके मुँह पर लगाते हुए कहा– ''बदमाश, फिर चोरी करता है! अभी मैं डाँट के गया था, बेशर्म को शर्म भी नहीं आती।''

उन्होंने लड़के की छाती में धक्का दिया। वह लड़खड़ा कर कुछ दूर जा पड़ा, गिरने को हुआ, संभल गया। फिर एक साथ से कोट को वहीं से थाम कर, जहाँ से प्रोफैसर साहब ने धक्का दिया था, एक दर्दभारी चीख मार कर रो उठा।

चीख सुनकर प्रोफैसर साहब को कुछ शान्ति हुई, कुछ आनन्द सा हुआ। विद्रूप ही उन्होंने कहा– ''क्यों, दुखती है छाती? और छिपाओ सेब वहाँ पर!''

बात में भरे हुए तिरस्कार को और तीखा बनाने के लिए उनके हाथ ने उसका अनुकरण किया, उठकर तेजी से प्रोफैसर साहब के ओवरकोट के कालर में घुसा।

एकाएक प्रोफैसर साहब पर मानो गाज गिरी। एक चौंधिया देने वाला आलोक क्षणभर उनके आगे जल कर एक वाक्य लिख गया– ''इसने तो सेब चुराया है, तुम देवस्थान ही लूट लाए।''

सहमे हुए स्तम्भित-से प्रोफैसर साहब क्षणभर खड़े रहे, फिर धीरे-धीरे उलटे पाँव गाँव की ओर चल पड़े।

तर्क उन्हें सुझाव देगा कि यह बेवकूफी है, उसकी दलील बिल्कुल गलत है, तुलना आधारहीन है, लेकिन वे न जाने कैसे इस सब बुद्धि की प्रेरणा के प्रति बहरे हो गए थे। जैसे कोलाहल बढ़ने लगा, उसे रोक रखने के लिये उनकी गति भी तीव्रतर होती गई। जब वे आँधी की तरह गाँव में से गुजरे, तब घर जाता हुआ प्रत्येक व्यक्ति उनकी ओर देखता और उन्हें लगता कि वे उनकी छाती की ओर देख रहे हैं, जैसे उस काले कोट की ओट में छिपी हुई देवमूर्ति को और उससे पीछे भी प्रोफैसर साहब के दिल में बसे हुए पाप को वे खूब अच्छी तरह जानते हैं।

अँधेरा होते-होते वे मन्दिर पर पहुँचे। किवाड़ एक ओर पटक कर उन्होंने मूर्ति को यथास्थान रखा। लौटकर चलने लगे तो आसपास के वृक्ष अँधेरे में और भयानक हो गए। सुनसान ने उन्हें फिर सुझाया कि वे एक निधि को नष्ट कर रहे हैं, लेकिन जाने क्यों उनके मन में शान्ति उमड़ आई। उन्हें लगा कि दुनिया बहुत ठीक है, बहुत अच्छी है।

अभ्यास

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दें:-

1. 'सेब और देव' कहानी का सार लिखिए।
2. प्रस्तुत कहानी में प्राकृतिक सुंदरता तथा वहाँ के लोगों के रहन-सहन तथा सादगी का चित्रण बड़े स्वाभाविक ढंग से किया गया है। स्पष्ट करें।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें:-

1. प्रोफैसर ने लड़के को कितनी बार पीटा और क्यों?
2. देवमूर्ति चुराने के बाद प्रोफैसर साहब के अन्तर्द्वन्द्व का वर्णन कर बताइए कि उन्हें शाँति कैसे मिली?
3. कहानी के शीर्षक की सार्थकता पर प्रकाश डालें।
4. प्रस्तुत कहानी से हमें क्या शिक्षा मिलती है?

****

26. मन्नू भण्डारी

मन्नू भण्डारी हिन्दी की विविध प्रतिभा-सम्पन्न प्रतिष्ठित लेखिका हैं। आप का जन्म 3 अप्रैल, 1931 के दिन मध्यप्रदेश में स्थित भानपुरा नामक स्थान पर हुआ। आप के पिता लब्धप्रतिष्ठ महाविद्वान श्री सुखसम्पत् राय भण्डारी हैं जो हिंदी-पारिभाषिक कोश के आदि-निर्माता हैं। मन्नू भण्डारी उन की सब से छोटी पुत्री हैं। आप ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम०ए० किया और मिरांडा हाऊस कालेज दिल्ली में प्राध्यापिका हैं।

मन्नू भण्डारी ने कहानियाँ, उपन्यास एवं नाटक लिख कर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। उनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं:-

कहानी संग्रह- एक प्लेट सैलाब, मैं हार गई, तीन निगाहों की एक तस्वीर, यही सच है, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, श्रेष्ठ कहानियाँ, प्रिय कहानियाँ, त्रिशंकु आदि।

उपन्यास- एक इंच मुस्कान, आप का बंटी, महाभोज और स्वामी, कलवा।

नाटक- बिना दीवारों के घर, महाभोज।

भाषा- मन्नू भण्डारी की भाषा संस्कृत-निष्ठ मुहावरेदार हिंदी है, जिसमें तत्सम शब्दों का बाहुल्य है और स्थान-स्थान पर मुहावरे और प्रचलित फ़ारसी के शब्द कहीं-कहीं देखे जा सकते हैं।

पाठ-परिचय

मन्नू भण्डारी की कहानियों में परंपरा और परिवर्तन के दोराहे पर खड़ी नारी के दबावों-तनावों को तो अभिव्यक्ति मिली ही है, इसी दोराहे पर खड़े होकर जूझ रही नयी व पुरानी पीढ़ी की त्रासदी भी बखूबी बयाँ हुई है। 'मजबूरी' एक ऐसी ही कहानी है। कहानी की नायिका बूढ़ी अम्मा बस ममता और वात्सल्य बरसाना जानती है। वात्सल्य का यह अतिरेक उनके पोते के लिए कितना घातक सिद्ध हो रहा है, वे इससे बिल्कुल बेख़बर हैं। वह पोता ही तो उनके अकेलेपन का साथी है। वे उसे किसी भी कीमत पर बेटे-बहू के साथ नहीं जाने देना चाहती- दूर मुंबई में। दूसरी ओर बहू की मजबूरी भी बड़ी ही कारुणिक है। बेशक दूसरे बच्चे के जन्म के कारण मजबूरीवश वह अपने बड़े बेटे को सास के पास छोड़ती है और पति व छोटे बेटे के साथ मुंबई लौट जाती है। मगर बड़े बेटे का स्कूल न जाना, दादी के आंचल से ही बंधा रहना, गली-

मुहल्ले के गंदे-गंदे बच्चों से खेलना अत्यधिक ज़िद करना आदि ऐसी बातें थीं जो कुछ बरसों बाद बहू को मजबूर कर देती हैं कि वह बड़े बेटे को जबरन अपने साथ वापस मुंबई ले जाए- दादी से दूर, उसके लाड़-प्यार से दूर। कहानी में दोनों ही नारी-पात्रों की मज़बूरी का मार्मिक चित्रण है। दादी अपनी सोच अपने वात्सल्य से मज़बूर हैं। बदलते जमाने की बढ़ती हुई प्रतियोगिता से बेखबर वे अपने पोते पर बस प्यार लुटाती हैं- उसे उस प्रतियोगिता के लिए तैयार नहीं करती। दूसरी ओर बहू की भी मज़बूरी है। आज की पीढ़ी की वह नारी जानती है कि बच्चों के भविष्य की सुरक्षा के लिए केवल लाड़-प्यार ही ज़रूरी नहीं, प्रस्तुत कहानी दोनों की मज़बूरियों के कारणों का खुलासा करते हुए पाठक के समक्ष बड़ा ही कारुणिक अंत प्रस्तुत करती है। पोता माँ के पास जाकर दादी को भूल गया है। - दादी पथराई आँखों और काँपते हाथों से परसाद लाने के लिए पैसे देती है- ' दादी माँ की चिंता खत्म हुई- बेटा माँ के पास जाकर दादी को याद कर-कर के रोया नहीं- वह दादी को भूल गया।' दादी परसाद बाँटेगी। क्या यह भी उसकी मज़बूरी नहीं?

मज़बूरी

''बेटू को खिलावे जो एक घड़ी,
उसे पिन्हाऊं मैं सोने की घड़ी।
बेटू को खिलावे जो एक पहर,
उसे दिलाऊं मैं सोने की मोहर।''

बूढ़ी अम्मा ज़ोर-ज़ोर से यह लोरी गा रही थीं, और लाल मिट्टी से कमरा लीप रही थीं। उनके घोंसले जैसे बालों में से एक मोटी-सी लट निकलकर उनके चेहरे पर लटक आई थी, और उनके हिलते सिर के साथ हिल-हिलकर मानो लोरी पर ताल ठोंक रही थी। बरतन मलने के लिए आई हुई नर्बदा ने जो यह देखा तो हैरत में आ गई, बोली,''अम्मा, यह क्या हो रहा है? कल तो गठिया में जुड़ी पड़ी थी, दरद के मारे तन-बदन की सुध नहीं थी, और आज ऐसी सरदी में आंगन लीपने बैठ गई।'' एक क्षण को अम्मा का हाथ रुका, फिर पुलकित स्वर में वे बोली,''अरी नर्बदा, मेरा बेटू आ रहा है कल।'' और फिर गाने के लहजे में बोलीं,''बेटा मेरा आवेगा.......''

''ओहो, तो रामेसुर लल्ला आ रहे हैं, कल!'' नर्बदा बोली।

''मैं कह नहीं रही थी कि छुट्टी मिली नहीं कि वह दौड़ा आएगा। अम्मा के मारे तो उसके प्राण सूखते हैं! इतना बड़ा हो गया, फिर भी यहाँ आएगा तो रात में एक बार मेरी गोदी में ज़रूर

सोएगा। पर इस बार मैं कह दूंगी कि चल मैं तुझे गोदी में नहीं लूंगी, अब तू गोदी में सोएगा कि बेटू?'' और वे हंस पड़ीं, जैसे कोई भारी मज़ाक कर दिया हो। फिर एकाएक काम का ख्याल आ जाने से बोली,''ले री, मैंने खड़िया भिगो रखी है, जरा बाहर के आंगन को मांड दे। बस ऐसा मांडना कि सब देखते ही रह जाएं। क्या करूं। आजकल हाथ कांपने लगा है, नहीं तो मैं मांड लेती!''

नर्बदा को खड़िया के काम में लगाकर वे फिर गाने लगीं:

''आओ री चिड़िया चून करो

बेटू ऊपर राइ-नून करो

नून करो- नून करो ....''

''ले मैं तो भूल ही गई- क्या है इसके आगे! रामेसुर छोटा था तो ढेरों याद थीं, उसके बाद तो छोटा बच्चा ही घर में नहीं रहा सो सब भूल गई। मेरा रामेसुर तो बिना लोरी सुने कभी सोता ही नहीं था, बेटू भी ज़रूर उसी पर पड़ा होगा। अब तो दौड़ता-फिरता होगा आंगन में।'' और उनकी धुंधली आँखों के आगे जैसे दौड़ते-फिरते बेटू के चित्र बनने-बिगड़ने लगे। उसी कल्पना में खोई-खोई वे बोलती गई,''पहले बहू लेकर आई थी तब तो दो महीने का था, बस पालने में पड़ा-पड़ा हाथ-पैर मारता था और मैं जाकर खड़ी हो जाती थी तो टुकुर-टुकुर मुझे ही निहारा करता था। सूरत भी एकदम रामेसुर पर ही पड़ी है उसकी। अब तो खुद देख लेना, सारा घर नापता फिरेगा।'' और वे हंस पड़ी। इन सब कल्पनाओं से ही उनका शरीर रोमांचित हो उठा।

अम्मा का काम समाप्त हुआ तो मिट्टी में सनो दोनों हथेलियों को जमीन पर पूरे ज़ोर से टिकाते हुए उन्होंने उठने का प्रयत्न किया, पर एक सर्द आह-सी उनके मुंह से निकलकर रह गई। वे उठ नहीं पाई तो बड़े ही कातर स्वर में बोलीं,''अरे नर्बदा, मुझे ज़रा उठा दे री, घुटने तो जैसे फिर जुड़ गए।''

''जुड़ेंगे तो सही। ऐसी सर्दी में जब से मिट्टी में सनी बैठी हो! बेटे-बहू आ रहे हैं तो ऐसी क्या नवाई हो रही है, सभी के घर आते हैं।'' और नर्बदा ने अम्मा को सहारा देकर उठाया, उसके हाथ धुलाए ओर खटिया पर लिटा दिया।

''तू भी कैसी बात करती है नर्बदा? तीन बरस बाद मेरा बेटा आ रहा है, और मैं आंगन भी न लीपूं?''

''तीन बरस बाद आ रहा है तो मैं तो यही कहूंगी कि उनमें मोह-माया नहीं है। तुम यों ही मरी जाती हो उनके पीछे।''

''देख नर्बदा, मेरे रामेसुर के लिए कुछ मत कहना। यह तो मैं जानती हूँ कि तीन-तीन बरस मुझसे दूर रहकर उसके दिन कैसे बीतते हैं, पर क्या करे, नौकरी तो आखिर नौकरी ही है। मेरे पास आज लाखों का धन होता तो बेटे को यों नौकरी करने परदेश नहीं दुरा देती, पर .....'' और उनके कुछ क्षण पहले पुलकते चेहरे पर मायूसी छा गई। आँखें अनायास ही डबडबा आई।

नर्बदा यहां बरसों से काम करती है, अम्मा के लिए उसके मन में अपार श्रद्धा है, पर बेटे के प्रसंग को लेकर वह जब-तब उनका दिल दुखा दिया करती है। कुछ और खरी-खोटी सुनाने का उसका मन हो रहा था, पर आज वह मानो अम्मा पर तरस खाकर चुप रह गई। जब तक वह काम करती रही, अम्मा शून्य में ताकते जाने क्या सोचती रहीं, बोलीं एक शब्द भी नहीं। जब वह जाने लगी तो न चाह कर भी उन्हें कहना पड़ा, ''तू जाते समय ग्वाले को कहते जाना कि कल दूध जल्दी दे जाए, और अब से दूध ज़्यादा लगेगा। बच्चे वाले घर में तो दूध पूरा ही रहना चाहिए। और जब तक वे लोग यहाँ रहें तब तक तू चौका-बरतन करके यहीं रहा करना। घर में पाँच प्राणी रहते हैं तो काम तो निकल ही आता है, फिर बच्चे का साथ रहेगा। देने-लेने की चिन्ता मत करना, मैं रामेसुर को एक कहूँगी, तो वह पाँच देगा।''

कुछ तो गठिया का दर्द ने और कुछ नर्बदा की बातों ने अम्मा का उत्साह तोड़ दिया। बहुत-से-काम उन्होंने सोच रखे थे, पर वे कुछ न कर सकीं। बस अपनी खाट पर पड़े-पड़े भूली-बिसरी लोरियां याद करके गुन-गुनाती रहीं। धीरे-धीरे रात के अन्धकार में उनके मन की मायूसी भी डूब गई और वे भोर होने के पहले ही उठ बैठीं घुटने का दर्द मन के उत्साह में खो गया, और बेटे-पोते से मिलने की उमंग में मौसम की ठंडक भी जैसे जाती रही। सात बजते-बजते तो वे सब घर ही पहुँच जाएंगे। साथ छोटा बच्चा है, दूध तो गर्म करके रख ही दूँ। फिर उन दोनों को भी तो चाय तैयार नहीं मिलेगी तो अम्मा को क्या कहेंगे भला? दूसरा चूल्हा भी जला दूँ, नहाने को गर्म पानी भी तो चाहिए।

उस कड़कती सर्दी में ठिठुरते-ठिठुरते अम्मा ने बेटे-बहू को गर्म करने के सारे आयोजन कर डाले। फिर सोचा-लगे हाथ तरकारी भी काट दूँ, नहीं तो वे इधर आएंगे और उधर मैं चूल्हे में सिर देकर बैठ जाऊंगी। तीन बरसों में मेरा बेटा आ रहा है, घड़ी-दो-घड़ी उससे बात भी करूंगी? इनका क्या, ये तो अपने राजी-खुशी पूछकर औषधालय चल देंगे। तरकारी भी कट गई- अब क्या करे? अम्मा अपने को इतना व्यस्त कर देना चाहती थी, जिससे प्रतीक्षा के क्षण बोझिल महसूस न हों, पर समय जैसे बीत ही नहीं रहा थी! तभी दूर कहीं घोड़ों के घुंघरूओं की आवाज़ आई और तांगा अम्मा के घर के सामने रुका। अम्मा पागलों की तरह दरवाज़े की ओर

दौड़ पड़ी। रामेश्वर की गोद से उन्होंने झपटकर बच्चे को ऐसे छीना मानो किसी चोर–उचक्के के हाथ से अपने बच्चे को छीन रही हो, और कसकर उसे सीने से चिपका लिया। चरण छूते रामेश्वर को पीठ पर हाथ फेरते हुए दूसरे हाथ के घेरे में उसे भी लपेट लिया। बच्चा एकाएक इतना प्यार और शारीरिक कष्ट पाकर रो उठा और माँ के पास जाने के लिए मचलने लगा। वे उसके आँसू पोंछने लगीं, और उनकी अपनी आँखों से भी आँसू की धारा बहने लगी। पुचकारने पर भी जब बच्चा चुप नहीं हुआ तो बहू की ओर बढ़ाते हुए उन्होंने कहा, ''अभी मुझे पहचानता नहीं। एक बार मुझे पहचानने लगेगा तो छोड़ेगा नहीं।'' उपेक्षित–सी एक ओर खड़ी बहू ने बच्चे को ले लिया।

चाय–पानी हो गया, और रामेश्वर नहाने चला गया तो अम्मा ने बहू को अकेले पाकर कहा,''खबर तो होती बहू, कि तुम्हारे महीने चढ़े हैं, कितने महीने हैं?''

झेंपते हुए बहू ने उत्तर दिया,''यह भी कोई लिखने की बात थी अम्मा!''

फिर जरा रुकते–रुकते कहा, मानो कहने का साहस बटोर रही हो,''अम्मा, इस बार बेटू को आप ही रखेंगी। जैसे भी हो मैं यहाँ हूँ तब तक उसे अपने से हिला लीजिए। मैं तो इसके मारे ही परेशान थी, दो–दो को तो ....''

अम्मा आँखें फाड़–फाड़कर ऐसे देख रही थीं मानो, जो कुछ सुन रही है उस पर विश्वास करें या नहीं। फिर एकाएक बोल पड़ीं,''तुम कह क्या रही हो बहू, बेटू को मेरे पास छोड़ जाओगी, मेरे पास! हे भगवान, तुम्हारी सब साध पूरी हों, तुम बड़भागी होओ। मेरे इस सूने घर में एक बच्चा रहेगा तो मेरा जन्म सफल हो जाएगा।'' फिर वे एकाएक रो पड़ीं,''तुम क्या जानो बहू! अपने कलेजे के टुकड़े को निकाल कर मुंबई भेज दिया। रामेसुर के बिना यह घर तो मसान जैसा लगता है। ये ठहरे संत आदमी, दीन–दुनिया से कोई मतलब नहीं। मैं अकेली ये पहाड़ जैसे दिन कैसे काटती हूँ सो मैं ही जानती हूँ। भगवान तुम्हें दूसरा भी बेटा दे, तुम उसे पाल लेना। मैं समझूंगी तुमने मेरा रामेसुर लेकर मुझे अपना रामेसुर दे दिया। पर देखो, अपनी बात से मुड़ना नहीं .... मैं.......मैं......'' तभी रामेश्वर ने ठिठुरते हुए रसोई में प्रवेश किया,''अम्मा, एक अंगीठी जरा इधर रख दो। मुंबई में रहकर तो सर्दी सहने की आदत नहीं रही। यहाँ तो नहाते ही जैसे जम गया।''

अम्मा ने अंगीठी रामेश्वर के पास सरका दी। तभी रामेश्वर का ध्यान अम्मा के कपड़ों की ओर गया,''यह क्या अम्मा, तुम कुछ भी गर्म कपड़ा नहीं पहने हो! सर्दी खा गई तो बीमार पड़

जाओगी। फिर तुम्हें गठिया की भी तकलीफ है, ऐसे कैसे चलेगा। न हो तो बनवा लो कपड़े, मैं रुपये दे दूँगा।''

पर यह सब अनसुना करके अम्मा बोली,''देख, आज बहू ने कह दिया है कि बेटू अब मेरे पास रहेगा, और अब जो बच्चा होगा वह तुम्हारे पास। तू कहीं टाल मत जाना, बात पक्की हो गई। आज से बेटू मेरा हुआ!''

''अरे हम सभी तो तुम्हारे हैं अम्मा, बोलो, नहीं हैं?'' परिहास के स्वर में रामेश्वर बोला।

''हो क्यों नहीं। मेरे नहीं तो और किसके हो! पर बेटू आज से मेरे पास रहेगा।'' अम्मा ने कहा।

तभी वैद्य राज जी कुछ खाली शीशियाँ लेकर आए तो अम्मा बोलीं, ''सुनते हो जी, इस बार बेटू यहीं रहेगा। बेचारी बहू खुद अभी बच्ची है, दो-दो को कैसे संभालेगी? और फिर पहले बच्चे पर तो यों भी दादी का हक होता है।'' उनके हाथों की गति बढ़ गई थी और वे अब उठने-बैठने में जरा भी तकलीफ महसूस नहीं कर रही थी।

दोपहर को नर्बदा से भी कहा,''बहू के तो फिर बच्चा होने वाला है, बेचारी दो-दो को कैसे संभालेगी, सो मुझसे कहने लगी- अम्मा, बेटू को तो तुम्हें ही रखना पड़ेगा। उसे कहने में बड़ा संकोच हो रहा था कि मुझे बुढ़ापे में तकलीफ होगी, पर तू ही बता, घर के बच्चे को रखने में कैसी तकलीफ भला! ऐसे समय में घर के ही लोग काम न आएंगे तो कौन आएंगे भला?''

इसके बाद घर में जो कोई भी आया उसे यही खबर सुनाई गई। अम्मा इस बात का इतना प्रचार कर देना चाहती थीं कि यदि फिर किसी कारण से बहू का मन फिर भी जाए तो शर्म के मारे ही वह अपना इरादा न बदल पाए। अम्मा का सारा दिन बेटू को खिलाने में और उसकी नोन-राई करने में ही बीतता। जाने कैसी-कैसी औरतें घर में आती हैं, तन्दुरुस्त-सुन्दर बच्चे को कड़ी नज़र से देख जाएं तो लेने के देने पड़ जाएं। बेटू को लेकर उनके शिथिल और नीरस जीवन में नया उत्साह आ गया था। घुटनों के दर्द के मारे कहाँ तो वे अपने शरीर का बोझ ही नहीं ढो पाती थीं, और कहां अब वे बेटू को लादे फिरती हैं। शाम को उसके साथ आँख-मिचौनी खेलती। बेटू का घोड़ा बनकर आँगन में दौड़ती-फिरती। बेटू के साथ-साथ उनका भी जैसे बचपन लौट आया था। देखने वाले अम्मा के पागलपन पर हँसते, पर इसकी उन्हें ज़रा भी चिन्ता नहीं थी। रामेश्वर ने टोका,''अम्मा, क्यों उसे लादे फिरती हो, यों ही तुम्हारे घुटनों में दर्द रहता है।'' तो बिगड़ पड़ी,''कैसी बातें करता है रामेसुर, इसमें भी कोई वज़न है जो उठाना भारी पड़े। फूल जैसा तो

हल्का है, खाली-खाली दोनों बेला मिलते टोक दिया। माँ-बाप की नज़र ही सबसे ज्यादा लगती है बच्चों को, तभी तो बेटू एक दिन ठीक नहीं रहता।''

निश्चित समय पर दूध पिलाना, शीशी में दूध भरना, बाद में उसकी सफ़ाई करना आदि सब काम अम्मा के लिए बिल्कुल नये थे।

उन्होंने तो रामेश्वर को अपने ढंग से पाला था। जब बच्चा रोया, झट दूध पिला दिया। दूध के लिए भी समय देखना पड़ता है, यह बात उनके लिए एकदम नई थी। दो साल तक तो उन्होंने रामेश्वर को अपना दूध पिलाया था, उसके बाद गिलास से पिलाती थीं। यह शीशी का नखरा उस ज़माने में था ही नहीं, और होगा भी तो शहरों में। पर रमा से बड़ी लगन और तत्परता से एक जिज्ञासु विद्‌यार्थी की तरह उन्होंने यह सब भी सीखा। पति से जिद करके औषधालय की दीवार-घड़ी, जो पिछले बीस वर्षों से वहीं लगी थी, उतरवाकर घर में लगवाई, और घड़ी देखना सीखा। उनके एकाकी जीवन में समय का कोई महत्त्व ही नहीं थो। न पति को दफ़्तर जाना रहता था, न बच्चों को स्कूल, जो समय पर कोई काम करना पड़े। पर अब एकाएक ही उन्हें घड़ी की आवश्यकता महसूस होने लगी थी। यों उनकी याददाश्त बड़ी कमज़ोर थी, पर दूध के समय उन्होंने जो याद किए तो कभी नहीं भूली। शुरू-शुरू में यह सब उन्हें बड़ा अटपटा-सा लगा, पर फिर भी ये सारा काम बड़ी सतर्कता से करती। शीशी में दूध भरते समय उनका बूढ़ा हाथ अक्सर कांप जाया करता था, और दूध बाहर को गिर जाता था। उस समय वे एक असफल विद्यार्थी की तरह सफाई पेश करती थी,'बहुत जल्दी सीख लूंगी बहू। जरा-सा हाथ कांप गया था, फिर शीशी का मुँह भी तो कितना छोटा है।' उनका कहने का भाव ऐसा होता मानो वे कहा रही हों कि इस छोटी-सी गलती के कारण ही कहीं तुम बेटू को ले मत जाना।

बीस दिन बाद जब बहू ने अपनी माँ के घर प्रयाण किया तो बेटू ने न ज़िद की न वह रोया ही। बहू के कड़े नियंत्रण के बाद दादी के असीम दुलार में रहना, जहाँ कोई बन्धन नहीं, अंकुश नहीं, बेटू को बड़ा अच्छा लगा। बहू चली गई, अम्मा ने निश्चिन्तता की एक सांस ली। महीना बीतते-बीतते खबर आई कि बहू के दूसरा लड़का हुआ है। अम्मा की छाती पर से जैसे एक भारी बोझ हट गया। संशय का एक कांटा जो रमा के जाने के बाद भी उनके मन में चुभा करता था, वह भी निकल गया। बेटू अब मेरा है, पूरी तरह मेरा है, यह भावना उसी दिन पूरी तरह उनके मन में जम पाई।

जाने से पहले रामेश्वर ने अम्मा और पिताजी के लिए ढेर सारे कपड़े बनवाए थे। अम्मा सारे मोहल्ले की औरतों को दिखाती फिरती। जो कोई आता उन्हीं से कहतीं,''अम्मा के पीछे तो बस

रामेश्वर पागल है, न आगे की सोचता है न पीछे की। उसका बस चले तो मुझ पर ही सारा घर लुटा दे। लाख मना करती रही, पर एक बात नहीं मानी। अब बुढ़ापे में ये छपी साड़ियाँ पहनकर कहाँ जाऊँगी, पर वह क्यों सुनने लगा?'' उनके झुर्रियों भरे चेहरे पर चमक आ जाती,' और वे आंखें मूंदकर अपने बेटे के चिरायु होने की कामना करती। जब रामेश्वर के जाने का समय आया तो उन्होंने रो-रोकर घर भर दिया। हिचकियाँ लेते हुए बोली,''देख रामेसुर, यह तीन-तीन बरस तक घर का मुँह न देखने वाली बात अब नहीं चलेगी। साल में एक बार तो आ ही जाया कर मेरे लाल! नौकरी की जगह नौकरी है, और माँ-बाप की जगह माँ-बाप! मेरी तबीयत भी ठीक नहीं रहती, किसी दिन भी आँख मूंदी रह जाएगी तों मैं तेरी सूरत को भी तरस जाऊंगी। सो कम से कम अपनी इस बुढ़िया माँ को.........'' पर आगे वे कुछ नहीं कह सकीं, बस फूट-फूट कर रोने लगीं। आँसू-भरी आँखों से वे रामेश्वर के तांगे को तब तक देखती रहीं, जब तक वह आँखों से ओझल नहीं हो गया। उसके बाद उन्होंने कसकर बेटू को अपनी छाती से चिपका लिया।'

दूसरे साल रामेश्वर नहीं आया, केवल रमा आई, शायद बेटू को देखने। पर बेटू को जो देखा तो उसका माथा ठनक गया। जिस बेटू को वह छोड़ गई थी, और जिसे अब वह देख रही है, दोनों में कोई सामंजस्य ही नहीं था। बात-बात में इसकी ज़िद्द देखकर रमा का खून खौल जाता। खाना वह दादी अम्मा के हाथ से खाता, और सारे दिन चरता रहता था। रात में सोता तो दादी अम्मा के दोनों अंगूठे पकड़कर सोता, और जब तक दादी अम्मा उसे लोरी नहीं सुनाती तब तक उसे नींद नहीं आती थी। सारे दिन दादी अम्मा की धोती का पल्ला पकड़कर उनके पीछे-पीछे घूमा करता, और शाम को गली-मुहल्ले के गन्दे-गन्दे बच्चों के बीच खेलता। उसे देखकर कौन कहेगा कि यह एक पढ़ी-लिखी सभ्य लड़की का बच्चा है। घर के सामने से जो कोई भी फेरीवाला निकल जाता, उसी से बेटू कुछ न कुछ ज़रूर खरीदता, न दिलवाने से ज़मीन-आसमान एक कर देता, और मचल-मचलकर सारे आंगन में लौटता।

आखिर रमा को जबान खोलनी ही पड़ी,''अम्मा, आपने तो इसे बिगाड़कर धूल कर रखा है, इस तरह कैसे चलेगा?''

दादी माँ ने हँसते हुए बड़े ही सहज भाव से कहा,''अरे बचपन में कौन जिद नहीं करता बहू! रामेसुर भी ऐसे ही करता था, यह तो सच्च हूबहू उसी पर पड़ा है। समय आने पर सब अपने-आप छूट जाएगा। यही तो उम्र होती है ज़िद करने की, साल-दो साल और कर ले, फिर अपने आप सब कुछ छूट जाएगा।'' और वे मुग्ध भाव से गोद में बैठे बेटू के बालों में अंगुलियां चलाने लगीं। रमा खून का घूंट पीकर रह गई। रमा की इच्छा हुई बेटू को अपने साथ लेती जाए,

पर एक साल का पप्पू ही उसे इतना परेशान करता था कि दोनों को साथ रखने का साहस नहीं हुआ। मुम्बई जाते ही उसने अम्मा के पास जरा खरी-खरी भाषा में पत्र पहुँचाने आरम्भ कर दिए। जैसे ही वह चार साल का हुआ, रमा ने लिख दिया कि अम्मा अब उसे वहां के नर्सरी स्कूल में भर्ती करवा दें, कम से कम कुछ तमीज़ तो सीखेगा! चिट्ठियां पढ़ती तो अम्मा को लगता, बहू का दिमाग बोरा गया है। भला चार साल का दूध पीता बच्चा कहीं स्कूल जा सकता है! रमा के पत्र आते रहे और अम्मा का ढर्रा अपने ढंग से बराबर चलता रहा।

दो साल बाद फिर रमा और रामेश्वर अपने तीन साल के पप्पू को लेकर आए। पप्पू ने अंग्रेज़ी की छोटी-छोटी कविताएँ याद कर रखी थीं और बड़े अदब के साथ बोलता था। अभी दो महीने पहले ही रमा ने उसे वहाँ के अंग्रेज़ी स्कूल में भर्ती करवाया था। पर बेटू वैसा ही था, जैसा रमा उसे छोड़ गई थी। उम्र में वह ज़रूर बड़ा हो गया था, बाकी सब कुछ वैसा ही था। रमा उठते-बैठते रामेश्वर से कहती,''जैसे भी हो इस बार बेटू को लेकर चलना ही होगा। यही हाल रहा तो इसकी जिंदगी चौपट हो जाएगी। यह भी कोई ढंग है भला!''

''अम्मा को बड़ा दुख होगा, और बेटू तुम्हारे पास जरा भी तो नहीं आता, वह अम्मा को छोड़कर कैसे रहेगा? ये सारी बातें सोच लो! रामेश्वर इस प्रसंग को जैसे टालना चाहते थे।''

रामेश्वर बेचारा बड़े धर्म-संकट में था। उसे पत्नी की बातों में भी सार नज़र आता था, और वह अम्मा की भावनाओं को भी ठेस नहीं पहुँचाना चाहता था, सो बिना कुछ निर्णय दिए सारी बात रमा पर छोड़कर वह मुंबई लौट गया। रमा कभी मिठाई दिलाकर, कभी तांगे में घुमाकर बेटू को अपने से हिलाने की कोशिश करने लगी। बेटू को तांगे में घूमने का बेहद शौक था, जो कम ही पूरा होता था। अम्मा को कभी स्वप्न में भी ख्याल नहीं था कि रमा पप्पू के रहते हुए भी बेटू को ले जाने का प्रस्ताव रखेगी। जिस दिन उन्होंने सुना, उनके पैरों तले की जमीन सरक गई। जब रमा ने बेटू को उनके पास छोड़ने का प्रस्ताव रखा था तब भी एकाएक उन्हें अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ था, ठीक उसी प्रकार से जाने की बात पर भी उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था। फिर भी कांपते स्वर में कहा,''कैसी बात करती हो बहू! मेरे बिना वह पल-भर भी तो नहीं रहता। इतना बड़ा हो गया, फिर भी जब तक मैं कौर नहीं देती तब तक वह खाता नहीं, सो एकाएक मुझसे दूर कैसे रहेगा?''

''नहीं रहेगा तो थोड़े दिन रो लेगा, आखिर उसकी पढ़ाई का सिलसिला भी तो जमाना है अम्मा! देखो, पप्पू स्कूल जाने लगा और यह अभी तुम्हारा पल्ला पकड़े-पकड़े ही घूमता है।''

''अरे पढ़ लेगा बहू! उम्र आएगी तो पढ़ लेगा। यह मत सोचना कि मैं उसे गंवार ही रहने दूंगी। रामेसुर को भी तो मैंने ही पाला-पोसा है, उसे क्या गंवार रख दिया? फिर यह तो मुझे और भी प्यारा है। मूल से ब्याज प्यारा होता है, इसे तो मैं खूब पढ़ाऊँगी, तू चिन्ता मत कर बहू, पर इसे ले जाने की बात मत कर ....'' और वे फफक-फफककर रो पड़ीं।

रमा की आँखों में भी आंसू तो आ गए, फिर भी उसने अपने पर काबू पाते हुए, और स्वर को भरसक कोमल बनाकर कहा,''मैं आपका दिल नहीं दुखाना चाहती अम्मा, पर आपके इस ज़रूरत से ज़्यादा प्यार ने ही तो इसे बिगाड़कर धूल कर दिया है। एक भी आदत तो इसमें अच्छी नहीं है। यदि आप सचमुच ही इसे प्यार करती हैं और इसका भला चाहती हैं तो इसे मेरे साथ भेज दीजिए, और इसके साथ दुश्मनी ही निभानी है तो रखिए इसे अपने पास।'' कहने के बाद ही रमा को लगा जैसे बहुत कड़ी बात वह कह गई है।

''मैं .... मैं अपने बेटू के साथ दुश्मनी निभाऊंगी- मैं उसकी दुश्मन हूँ .... मैं .... मैं, तू मेरे प्यार की परीक्षा लेना चाहती है, पर ऐसी कठिन परीक्षा तो मत ले बहू, इससे तो तू मेरे प्राण ही ले ले!'' और वे फूट-फूटकर रोने लगी। कुछ देर बाद एकाएक स्वर संयत करके बोली,''ले जा बहू ले जा। मेरा बेटू फूले-फले, पढ़-लिखकर लायक बने, इससे बढ़कर खुशी की बात मेरे लिए और क्या हो सकती है। मेरा क्या है, मेरी चार दिन की हंसी-खुशी के लिए मैं तेरे बच्चे की ज़िंदगी नहीं बिगाड़ूंगी। मैं अपढ़-गंवार औरत ठहरी, इसे लायक कहां से बनाऊँगी, तू इसे ले जा। चार दिन की मेरी ज़िंदगी में हंसी-खुशी आ गई इसी में तेरा बड़ा जस मानूंगी.......'' और रमा कुछ कहे उसके पहले ही उन्होंने रसोईघर में जाकर भीतर से किवाड़ बन्द कर लिए।

रमा को खुद इस सारी बात से बड़ा दुख हो रहा था, पर बच्चे की बात सोचकर यह निर्णय बदलने में अपने को असमर्थ पा रही थी। यही सोच-समझकर वह अपने मन को तसल्ली दे रही थी कि समय का मरहम अम्मा के घाव को अपने-आप भर देगा।

दो दिन बाद औषधालय के एक मात्र नौकर और दोनों बच्चों को लेकर रमा अपनी माँ के यहाँ चल पड़ी। बेटू को बताया ही नहीं गया कि रमा उसे अपने साथ ले जा रही है। रोज की भांति तांगे में घूमने के लालच में वह चला गया। जाते समय कह गया,''दादी अम्मा, मैं तेरे लिए मिठाई और गोली लेकर आऊँगा।'' दादी अम्मा ने उसे कलेजे से लगा लिया। एक बार उनकी इच्छा हुई कि वह बेटू को बता दे कि रमा उसे हमेशा के लिए उनसे अलग करके ले जा रही है, पर फिर भी वे चुप रहो।

उसके बाद जो भी कोई घर में आया, अपार आश्चर्य से उसने पूछा,''अरे, बहू बेटू को ले गई? तुम तो कहती थीं कि बेटू अब तुम्हारे पास ही रहेगा।'' अम्मा को लगा जैसे किसी ने उसके कलेजे पर गरम सलाख दाग दी हो। तिल-मिलाकर जवाब देती,''कहती तो थी पर अब रखा नहीं जाता। गठिया के मारे मेरा तो उठना-बैठना तक हराम हो रहा है, तो मैंने ही कह दिया कि बहू अब पप्पू बड़ा है। सो बेटू को भी ले जाओ।''

''अरे अम्मा एक पल तो तुम उसे छोड़ती नहीं थी, अब रह लोगी उसके बिना?''

''नहीं रह सकती तो भेजती क्यों?अब यह कोई बच्चे पालने की उम्र है भला! जिसकी थाती उसी को सौंपी। बुढ़ापा है, कुछ भजन-पूजन ही कर लूं। उसके मारे तो मेरा सब कुछ छूट गया था।'' बड़े ही संदिग्ध भाव से अम्मा की इस दलील को औरतें स्वीकार कर पाती थीं। आज अम्मा के पास कोई काम नहीं था करने को, सो खाली आंगन में दर्दीले स्वर से एक लोरी गुनगुना रही थी। शाम को गुब्बारे वाला आया, बुढ़िया के बाल वाला आया, खिलौने की मिठाई बेचने वाला आया तो बुझे-से स्वर में अम्मा ने सबको यही जवाब दिया,''जाओ, भाई जाओ! आज तुम्हारा ग्राहक नहीं है। उसे मैंने उसकी अम्मा के साथ भेज दिया। अब यहाँ मत आया करो, कभी मत आया करो, कोई तुम्हारी चीज़ नहीं खरीदेगा!'' और उनका मन सुबक उठता, पर उनकी आँखों के आँसू जैसे सूख गए थे।

तीसरे दिन औषधालय का नौकर वापस आया, तो सबसे पहले खबर दी कि दादी अम्मा को याद करते-करते बेटू को बुखार आ गया और वह उसे भरे बुखार में छोड़कर आया है। वह रमा के हाथ से न कुछ खाता है, न दवाई पीता है। अम्मा ने सुना तो ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की साँस नीचे रह गई। वे पागलों की भांति दौड़ती हुई, औषधालय में पहुँची,''अरे सुनते हो, बेटू रो-रोकर बीमार हो गया है। मैं तो पहले ही जानती थी कि वह मेरे बिना रहेगा नहीं, पर बहू को कौन समझाए। अब तो रात की गाड़ी से ही जाकर मुझे उसे लाना होगा! वह तो रो-रोकर प्राण दे देगा। हे भगवान्, मेरी मति पर भी पत्थर पड़ गए थे जो बहू की बात मान गई।''

अम्मा रोती थीं और कपड़े ठीक करती जाती थीं। नर्बदा आई तो आश्चर्य से बोली,''कहाँ की तैयारी कर रही हो अम्मा?''

''अरे, शिब्बू बहू को छोड़कर लौटा तो बताया कि बेटू ने तो रो-रोकर बुखार चढ़ा लिया। मैं तो भेजकर अपनी तरफ से निश्चिन्त हो गई थी, पर वह रह सकता है क्या? उसके तो प्राण मुझमें कुछ ऐसे पड़ गए थे कि क्या बताऊँ। कोई अगले जन्म का संस्कार ही समझ! अब जाकर

लाना पड़ेगा, नहीं तो छोरा रो-रोकर प्राण दे देगा।'' और गर्व और आनन्द से उनकी छाती फूल गई।

तीसरे दिन ही बेटू को लेकर वे लौट आई। जिसने देखा उसी ने कहा, ''अरे, चार दिन में ही बच्चा सूख गया।''

''सूखेगा नहीं, कुछ तो खाया नहीं, और एक पल को आँसू नहीं टूटा। मैं तो सोचती थी कि बहू के हवाले करके सुख से पूजा-पाठ करूँगी, पर अब यह रहता भी तो नहीं।''

एक साल उन्होंने इसी प्रकार और निकाल दिया। रमा मुंबई से आई तो फिर बेटू का वही रवैया देखा तो सोचा कि वह उसे सीधे मुंबई ले जाती तो यह सारा काण्ड नहीं होता। अम्मा मुंबई तक आ नहीं सकती थी। सो इस बार फिर एक बार दादी माँ को रुलाकर उनके मना करने पर भी वह बेटू को लेकर मुंबई के लिए चल पड़ी। जाने किस आशा से अम्मा ने अपनी सारी जमा-पूंजी खर्च करके शिब्बू को साथ कर दिया। रमा मना करती रही कि अब दोनों बच्चे बड़े हैं और वह संभाल लेगी, पर अम्मा ने शिब्बू को साथ भेज ही दिया।

दूसरे दिन से जो कोई भी आता अम्मा उसी के सामने यह मनौती मनातीं कि किसी प्रकार बेटू रमा के पास हिल जाए तो वह सवा रुपये का परसाद चढ़ाएंगी! उच्च स्वर से वह रात-दिन रट लगाए रहती कि बेटू मुझे किसी तरह भूल जाए। पर सात दिनों के बाद जब शिब्बू लौटकर आया तो वे ऐसे दौड़ पड़ी मानो वह बेटू को लेकर ही आया हो। झपटकर उन्होंने पूछा,''मेरा बेटू कहां है? मेरा बेटू ठीक है शिब्बू, तुझे मैंने किस लिए भेजा था? उनका स्वर बुरी तरह कांप रहा था।''

''इस बार तो अम्मा, बहू जी ने बेटू को हिला लिया। वहाँ बहूजी के मकान में बहुत सारे बच्चे हैं, उन सबसे दोस्ती हो गई, सो खूब खेलता है। ट्राम, बस, बगीचे, झूले- इन सबमें उसका मन लग गया।'' शिब्बू ने बताया तो अम्मा शून्य-पथराई आँखों से उसे देख रही थीं मानो कुछ समझ ही नहीं रही हों। शिब्बू कहे चला जा रहा था,''चलो तुम्हारी चिन्ता दूर हुई। मैं तो अम्मा, दो दिन इसी मारे ज़्यादा रुक गया कि कहीं रोया तो अपने साथ लेता आऊँगा, पर इस बार बहूजी ने उसे समझा दिया और वह भी समझ गया। अब वहाँ जम जाएगा। अब तो तुम परसाद चढ़ाओ अम्मा, और मज़े से भजन-पूजन करो।''

एकाएक जैसे अम्मा की चेतना लौट आई,''क्या कहा...... बेटू भूल गया? वहाँ जम गया? सच, मेरी बड़ी चिन्ता दूर हुई। इस बार भगवान ने मेरी सुन ली। ज़रूर परसाद चढ़ाऊँगी। मेरे

बच्चे के जी का कलेश मिटा, मैं परसाद नहीं चढ़ाऊँगी भला?'' और फिर गीली आँखों और काँपते हाथों से, उन्होंने जेब से सवा रुपया निकालकर शिब्बू को देते हुए कहा,''ले, पेड़े लेता आ, अब परसादी चढ़ाकर बाँट ही दूँ। कौन, नर्बदा? सुना नर्बदा, बेटू मुझे भूल गया- वह भूल ही गया.........'' और उन्होंने आंचल से भर-भर आती आँखें पोंछी और हँस पड़ी।

अभ्यास

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दें:-

1. 'मज़बूरी' कहानी में बदलते ज़माने के दबावों से परिचित नई पीढ़ी व उससे बेखबर पुरानी पीढ़ी के द्वन्द्व को उजागर किया गया है क्या आप इस कथन से सहमत हैं? क्यों?
2. इस कहानी के आधार पर महानगरीय जीवन व ग्रामीण जीवन का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करें।
3. इस कहानी के शीर्षक के औचित्य पर विचार करें।
4. इस कहानी के आधार पर बूढ़ी अम्मा या उसकी बहू का चरित्र-चित्रण करें।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें:-

1. बूढ़ी अम्मा के बड़े पोते व छोटे पोते के व्यक्तित्व में क्या अंतर था?
2. इस कहानी में रामेश्वर के किस धर्मसंकट की चर्चा की गई है?
3. पोते को घर में रखने के लिए बूढ़ी अम्मा ने क्या-क्या कार्य लगन से सीखे?
4. कहानी के आरंभ में बूढ़ी अम्मा बेटे-बहू के स्वागत के लिए क्या-क्या तैयारियाँ करती है?
5. बूढ़ी अम्मा ने गांव भर में किस बात का खूब प्रचार कर दिया था? क्यों?

******

लघु कथाएँ

हिंदी साहित्य में कथा-साहित्य के विकास में लघु कथाओं का विशेष महत्त्व है। यहाँ पर कुछ प्रसिद्ध लेखकों की लघु कथाएँ एवं उनका संक्षिप्त साहित्यिक परिचय दिया गया है।

27. सिमर सदोष

(जन्म सन् 1943)

पंजाब के हिंदी लघु कथा लेखकों में सिमर सदोष का उल्लेख पहले लेखकों में लिया जाता है। इस विधा के प्रचार-प्रसार में इनकी विशेष भूमिका रही है। कम लघु कथाएँ लिख कर भी इन्हें विशेष नाम मिला है।

सिमर सदोष का पारिवारिक नाम सिमर सिंह है- सदोष इनका उप-नाम (तखल्लुस) है। इनका जन्म 2 अप्रैल, 1943 को ज़िला शेखूपुरा के गाँव खत्रा लुबाना (अब पाकिस्तान) में हुआ। इनके पिता को नाम सरदार संतोख सिंह सफरी और दादा का नाम सरदार तारा सिंह है। साहित्य इन्हें विरासत में मिला है। इनके दादा सरदार तारा सिंह लोक-बोलियाँ लिखने और बोलने में सिद्धहस्त थे। इनके पिता सरदार संतोख सिंह सफरी को बैंतों का बादशाह और सावन कवि दरबारों का सितारा कहा जाता है।

सिमर सदोष लेखक, पत्रकार और कलाकार एक साथ हैं। साहित्यिक क्षेत्र में इन्हें विभिन्न विधाओं में महारत हासिल है। सातवें दशक में इनके दो उपन्यास तत्कालीन दो प्रमुख हिन्दी दैनिक समाचार पत्रों में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुए थे। इनके नाटक सातवें और आठवें दशक में आकाशवाणी से प्रसारित होते रहे। दूरदर्शन के राष्ट्रीय चैनलों से इनकी एक कथा 'ज़मीन' को लेकर इसी नाम से टेलिफिल्म प्रसारित की गई। ग्रामीण पृष्ठभूमि पर लिखी गई इनकी कथा पर बनी यह फिल्म लम्बी अवधि तक चर्चा एवं बहस का विषय बनी रही।

सिमर सदोष लघुकथा के क्षेत्र में एक सशक्त हस्ताक्षर माने जाते हैं। इनकी लघुकथाएँ पंजाबी, उर्दू और बंगला में भी अनूदित हुई हैं। ज़मीन, देश, चादर, जमा हुआ सन्नाटा, संत्रास आदि इनकी बहुचर्चित लघुकथाएँ हैं। इनके लघुकथा संग्रह में 70 लघु कथाएं प्रकाशित हुई हैं। सातवें दशक में लघु कथाकारों के सम्बंध में किये गये एक सर्वेक्षण में प्रथम दस लघु कथाकारों में सिमर सदोष का तीसरा क्रम था। प्रथम संकलित लघु कथा संग्रह 'छोटी बड़ी बातों में' इनकी चार लघु कथाएं संग्रहित हैं।

सिमर सदोष कवि भी हैं– लम्बी और खुली कविता लिखते हैं। एक संग्रह 'सफर जारी है' प्रकाशित हो चुका है। यह हिंदी गज़ल में एक जाना–पहचाना नाम है। पंजाब भाषा विभाग द्वारा प्रकाशित श्रेष्ठ रचनाओं में इनकी रचनाएं शामिल हैं। हिंदी, पंजाबी, उर्दू व अंग्रेज़ी के ज्ञाता है।

विगत चालीस वर्षों से पत्रकारिता से जुड़े हुए हैं। युवा मंच तरुण मिलाप संघ के प्रथम संयोजक रहे। उत्तर भारत की प्रथम साहित्यिक एवं सामाजिक संस्था पंजाब कला साहित्य अकादमी (पंकस अकादमी) के संस्थापक-अध्यक्ष हैं, जिसने पहली बार पूरे उत्तर भारत के राज्यों में अकादमी अवार्ड की स्थापना की। उत्तर भारत की विगत 45 वर्षों से सतत, रचना–सक्रिय संस्था पंजाबी कवि सभा (रजि.) के महा–सचिव हैं– सिमर सदोष। इन्हें अनेक साहित्यिक संस्थाओं ने सम्मानित किया है।

पाठ-परिचय

'अपना-अपना दु:ख' रिश्तों की संवेदनशीलता से जुड़ी एक लघुकथा है। पति–पत्नी दोनों एक दूसरे के दुख कम करने के लिए अपना–अपना दुख भीतर लिए रहते हैं। संवादात्मक व आत्मपरक शैली में रचित यह लघुकथा पाठक के मन में एक टीस–सी छोड़ जाती है।

अपना-अपना दु:ख

मैं हल्के से करवट लेता हूँ। राशि ने दीवार से टेक लगा, अपनी टाँगों पर रखे कनू के कपड़ों पर लिहाफ़ खींच लिया है। मैं भी जान बूझकर अनदेखा कर लेटा रहता हूँ।

मैं महसूस करता हूँ कि अब मुझे जाग जाना चाहिए। थोड़े से दिलासे से राशि संयमित हो जायेगी– अधिक रोना भी तो अच्छा नहीं। तभी राशि बत्ती बुझा देती है। लिहाफ़ ओढ़ने लगती है कि लिहाफ़ से टकरा एक मुलायम–सी चीज़ मेरे बिस्तर पर गिर पड़ती है।

अंधेरे में ही भय–मिश्रित घबराहट में टटोल कर देखता हूँ– फीडिंग बाटल की निप्पल है।

हालांकि चार मास की बेबी को कब्र में दफनाने के बाद मैंने पत्नी के ऊपरी कमरे में आने से पहले ही, कनू के कपड़ों के अतिरिक्त उसकी सब निशानियाँ चुपके से बाहर फेंक दी थीं, यह निप्पल पता नहीं कहाँ रह गई थी।

निप्पल को हाथ में लेते ही मेरे अंदर का जमा हुआ लावा पिघलकर आँखों से बाहर निकलने लगता है। राशि द्वारा कंधे पर हाथ रखने से महसूस करता हूँ– मेरी सिसकियाँ अवश्य ही ऊँची हुई होंगी।

– आप रो रहे हैं?

– नहीं तो, शायद स्वप्न देखा हो .... आँखे तो गीली हैं।

– बत्ती जला दूं?

– नहीं, अब ठीक हूँ, तुम सो जाओ।

– वह लिहाफ ओढ़ लेती है। मैं अंधेरे में कुछ टटोलने का प्रयास करता हूँ। दोनों एक–दूसरे को धोखा देकर, अपने–अपने आँसू छिपाकर अपना–अपना दु:ख लिए सोये होने का बहाना करने लगते हैं।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें:-

1. 'अपना–अपना दु:ख' लघुकथा में पति–पत्नी का दु:ख क्या है?
2. लेखक अपनी बेटी की सभी निशानियों को मिटाने का प्रयास क्यों करता है?
3. 'अपना–अपना दु:ख' लघुकथा रिश्तों की संवेदनशीलता से जुड़ी है– आप इससे कहाँ तक सहमत हैं?

******

28. प्रेम विज

(जन्म 15 नवम्बर 1947)

पंजाब के युवा साहित्यकारों में प्रेम विज एक परिचित नाम है। इन्होंने हिंदी कविता, कहानी तथा लघुकथा लेखन में कुछ अच्छे प्रयोग किए हैं। इन्हें व्यंग्य में विशेष सफलता मिली है।

प्रेम विज का जन्म 15 नवम्बर, 1947 को जालंधर (पंजाब) में हुआ। इनके पिता जी का नाम श्री धनीराम विज था तथा माता जी का नाम श्रीमती सावित्री देवी था। इन्होंने उच्च शिक्षा एम.ए.एल.बी. प्राप्त की। ये इसका समस्त श्रेय अपनी धर्मपत्नी श्रीमती राज विज को देते हैं। प्रेम विज एक सहज और संवेदनशील लेखक हैं। यह स्वभाव से बड़े ही हँसमुख तथा शांत प्रकृति के हैं। इन्होंने लेखन कार्य सन् 1965 से शुरू किया।

हिंदी लेखन एवं पत्रकारिता (पत्रिका-संपादन) में अपनी पहचान बना चुके हैं। इनकी कविताएं, कहानियां, व्यंग्य तथा लघुकथाएं काफी समय से प्रकाश में आ रही हैं। आजकल 'जागृति' पंजाब सरकार (लोक संपर्क विभाग, प्रकाशन) पत्रिका का संपादन कर रहे हैं। इनकी प्रकाशित रचनाएं हैं- 'भीड़ का भूगोल' (हास्य व्यंग्य), रंगे हुए प्रश्न (कथा- संग्रह मौलिक), धारा के विरुद्ध तथा समय गवाह है (कथा-संपादन), निहत्थी लड़ाई लड़ते हुए (कविता-संग्रह)। इनकी लघु कथाएं अनेक विषयों पर आधारित हैं। इनकी ये लघुकथाएं विशेष चर्चित हैं- अटूट बंधन, अनुत्तरित, महंगाई और मज़दूरी, विरासत, हमदर्द या सिरदर्द, सहारा, कफ़न, चोर तथा भटकन आदि। इनकी रचनाएं आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से प्रसारित होती रही हैं। इन्हें भाषा विभाग पंजाब, पंजाब हिन्दी परिषद का 'आर्डर ऑफ पीपुल्स एवार्ड-1986' का सम्मान मिल चुका है।

पाठ परिचय

'अटूट बंधन' प्रेम विज की मानवीय रिश्तों से जुड़ी लघुकथा है। इन्सानियत का रिश्ता सबसे बड़ा रिश्ता है- अविश्वास का कुहरा क्षण भर के लिए भाईचारे के उजाले को भले ही ढाँप ले, लेकिन मानवता का यह अटूट बंधन अन्त में अपना रंग दिखाता है- अविश्वास का कुहरा छट जाता है। हर और तनाव दूर भाग जाते हैं- प्रेम का अटूट बंधन विश्वास को मज़बूत कर देता है।

अटूट बंधन

पत्नी के बहुत समझाने के पश्चात ही नीरज अपने चचेरे भाई के विवाह पर पंजाब जाने के लिए तैयार हुआ। पत्नी बहुत हैरान थी कि पहले तो वे अक्सर बिना सलाह किए ही चाचा जी को मिलने के लिए चले जाते थे, अब इतना समझाया, तब कहीं जाने के लिए तैयार हुए। रात को खाने के समय मैंने पूछ ही लिया,''आप चाचा जी के पास जाने से क्यों घबराते हैं, कोई नाराज़गी है क्या?'' नीरज ने उदास भाव से कहा,''तुम्हें पता नहीं चाचा जी पंजाब में रहते हैं और वहाँ क्या कुछ हो रहा है। वह सब कुछ तो तुम समाचार-पत्रों में भी पढ़ लेती होगी। क्यों मुझे मौत के मुँह में भेज रही हो।'' पत्नी ने झुंझलाकर कहा,''छोड़ो इन बातों को भला भाई को भाई मार सकता है, कभी नाखुनों से माँस अलग हुआ है। आपके चाचा जी ने चाहे केस रखे हुए हैं, फिर भी क्या वे आपकी हत्या कर सकते हैं?'' पत्नी की बातों को सुनकर नीरज के मन से भय और शंका का पर्दा हटने लगा। उसे कुछ धीरज मिला और उसने जाने का निश्चय कर लिया।

डर इंसान की वह कमज़ोरी है, जो उसके सम्मुख अविश्वास की दीवार खड़ी कर देती है। कई बार तो वह अपने साये से भी डरने लगता है। नीरज में चाहे हिम्मत पैदा हो गई थी लेकिन फिर भी हृदय के किसी न किसी कोने में डर का अन्धकार विद्यमान था। पत्नी से बोला,''सुबह जल्दी उठा देना, ताकि सूर्य डूबने से पहले चाचा के घर पहुँच जाऊं।'' वह सूर्य के रहते अपने चाचा के शहर होशियारपुर पहुँच गया। वे होशियारपुर के समीप एक गाँव में रहते थे। अंधेरा छा जाने के कारण गाँव जाने के लिए कोई साधन नहीं था, इसलिए वह पैदल ही चल पड़ा। अभी वह कुछ ही दूरी पर पहुँचा था कि पीछे आ रहा ट्रैक्टर रुक गया। ट्रैक्टर पर एक सरदार जी थे, उन्हें देखकर नीरज एक बार तो अन्दर ही अन्दर काँप गया।

सरदार जी ने पंजाबी स्वभाव के अनुसार पूछ ही लिया,''बाबू जी, तुसीं कित्थे जाना ए।''

नीरज ने दबते हुए होठों से कहा,''उस सामने वाले गाँव में।''

''चलो आओ बैठो, मैं तूहानू उत्थे उतार देवांगा। मैं भी उधरी हो के जाना है।''

नीरज अभी दुविधा में था कि सरदार जी ने फिर कहा,''बरखुरदार इकहरे जिस्म के हो उत्थे, जांदे-जांदे थक जाओगे, आओ बैठो।''

नीरज सरदार जी की आँखों में क्रोध अथवा घृणा के स्थान पर प्यार को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और ट्रैक्टर पर बैठ गया। नीरज को चुपचाप बैठा देखकर सरदार जी से रहा न गया और पूछ ही लिया,''की गल ए तुसीं बीमार तां नहीं।''

नीरज ने सिर हिला कर इन्कार में जवाब दिया। इधर उसके मन में पंजाब की भयानक तस्वीर घूम रही थी और उधर उसकी आँखों के सामने सरदार जी का प्यार था।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें:-

1. 'अटूट बंधन' के आधार पर नीरज के अन्दर भय और अविश्वास कैसे दूर हुआ?
2. 'अटूट बंधन' मानवीय सम्बन्धों से जुड़ी लघु कथा है?- स्पष्ट करें।

*****

29. सुरेन्द्र मंथन

पंजाब के लघु कथाकारों में सुरेन्द्र मंथन का नाम विशेष लिया जाता हैं। लघुकथा-लेखन में इनकी अलग पहचान बन चुकी है।

सुरेन्द्र मंथन का जन्म अमृतसर (पंजाब) में हुआ। इन्होंने हिन्दी में एम.ए. तथा पीएच. डी. की उच्च उपाधियां प्राप्त कीं। पिछले काफी समय से अध्यापन तथा स्वतंत्र लेखन में जुटे हैं। साहित्य वंदना मासिक पत्रिका का सम्पादन भी किया है। इनका शोध प्रबंध 'हिंदी कहानी के खण्डित पात्र' प्रकाशित है। कहानी तथा लघुकथा लिखने में विशेष नाम पाया है। 'घायल आदमी' इनका प्रकाशित लघुकथा संग्रह अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

पाठ-परिचय

श्री सुरेन्द्र मंथन द्वारा रचित लघुकथा 'हरियाली' स्वदेशी भावना पर आधारित है। विदेशी सामान की चकाचौंध किस कदर देश की आर्थिकता की नींव को खोखला किए जा रही है- यह एक अत्यन्त गम्भीर विषय है। लेखक का विदेशी ब्लेडों से शेव करना, उसके मित्र नरेन्द्र को खलता है। लघु कथा यहाँ से शुरू होकर आगे गम्भीर समस्या की तरफ बढ़ती है। अमीर पड़ोसी के अपने घर की ओर झुके आकर्षक फल या फूल कुछ देर के लिए आकर्षित भले ही कर लें- लेकिन इस आकर्षण में यह भूल जाना कि इन पौधों की जड़ें उसके मकान की नींव को किस कदर खोखला कर रही हैं- यह विषय सोचने का है-

लेखक द्वारा दीवार छूने वाले तथा सीलन बढ़ाने वाले पौधों को पड़ोसी से मिलकर कटवाने का फैसला लेना और अगले ही क्षण स्वयं एक असमंजस में पड़ना कि पता नहीं पड़ोसी माने या न माने- क्योंकि पड़ोसी अमीर और दबदबे वाला है- इस समस्या को लेखक ने गम्भीर चिन्तन देने पर ज़ोर दिया है। अन्त में लेखक का विदेशी पैकेट को उठाकर पड़ोसी के आँगन में फेंक देना-कहानी को एक निर्णयात्मक स्पर्श देता है।

राष्ट्रीय समृद्धि हरियाली पर काफी हद तक निर्भर करती है- लघु कथाकार शायद यही कहना चाहता है-

भाषा सरल है- विषय जन जीवन से जुड़ा है।

हरियाली

उगते सूर्य की तरफ मुँह किए, छत पर बैठा, मैं शेव बनाने की तैयारी कर रहा था कि नीचे नरेंद्र जी की आवाज़ सुनाई दी। मैंने उन्हें ऊपर ही बुला लिया। हमेशा की तरह उन्होंने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। नज़दीक पड़ी कुर्सी पर बैठते हुए उनकी नज़र विदेशी कंपनी द्वारा निर्मित ब्लेडों के पैकेट पर पड़ी। चौंक कर बोले,''अरे स्वदेशी अपनाओ का पैंफ्लेट तुम तक नहीं पहुँचा?''

मैने मुस्करा कर कहा,''जो बात इन विदेशी ब्लेडों में है, यहाँ बने ब्लेडों में कहाँ?''

''तुम्हें नहीं लगता, हमारे ही पैसे से विदेशी हाथ मज़बूत होंगे? अपना आर्थिक ढांचा चरमरा जाएगा?''

मैं कहने को हुआ कि अपने लोगों को बढ़िया सामान बनाने से किसने रोका है। प्रतिक्रिया में लम्बे भाषण की आशंका से इतना ही कहा,''भई आम आदमी तो वही पसंद करेगा, जिसमें उसे लाभ दिखेगा।''

नरेन्द्र जी को शायद मुझसे ऐसे उत्तर की अपेक्षा नहीं थी। वे कुछ देर खामेश बैठे रहे और फिर उठकर चहलकदमी करने लगे। शेव बनाते हुए मैं उनके आने की संभावनाएं तलाशता रहा। संभवतः उनकी नज़र पड़ोसी के आँगन में खिले फूलों पर चली गयी थी, चीख कर बोले,''अरे!'' इतने सुंदर वातावरण में रहते हो तुम! एक से एक लाजवाब फूल और पौधे भी।

मैंने सगर्व कहा,''यही तो फायदा है, अमीर आदमी के पड़ोसी होने का। फल चाहे पड़ोसी ने उगाए हैं, झुके तो हमारे कोठे की तरफ हैं।''

नरेन्द्र जी ने गर्दन हिलाकर दाद दी और फिर चहलकदमी करने लगे।

शेव से मुलायम हुए चेहरे पर हाथ फेरता हुआ मैं आत्म-विभोर हो रहा था कि फिर नरेन्द्र जी की चीख सुनाई दी,''देखो तो, इन पौधों की जड़ें तुम्हारे मकान की नींव खाए जा रही हैं,'' वे मुंडेर पर झुके नीचे देख रहे थे।

सचमुच मैंने इस ओर ध्यान नहीं दिया था। दीवारों पर दो-दो फुट ऊँची सीलन चढ़ गयी थी।

मैंने तत्काल फैसला लिया, आज ही पड़ोसी से मिलकर, दीवार छूते इन पौधों को कटवा देना चाहिए। लेकिन पड़ोसी मानेगा, तब न! पैसे वाला आदमी है। आस-पड़ोस से लेकर पुलिस तक उसका दबदबा है। मेरी बात मज़ाक में उड़ा देगा।

''अच्छा चलता हूँ इधर से गुजर रहा था तो सोचा दर्शन करता जाऊँ। तुम्हें तो किताबों से फुर्सत मिलने से रही। इस बारे में सोचना ज़रूर।''

मैं तय नहीं कर पाया कि उनका संकेत ब्लेडों के पैकेट की तरफ है अथवा पौधों की ओर। चिंतातुर आवाज़ में मैंने कहा,''आपकी बात सही है। नींव ही खोखली हो गयी तो दीवारें ढहते कितनी देर लगती है।''

उनके जाते ही मैंने पैकेट उठाकर पड़ोसी के आँगन में फैंक दिया।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें:-

1. 'हरियाली' लघुकथा का विषय राष्ट्रीय महत्व का है- आपका इसके बारे में क्या विचार है? स्पष्ट करें।
2. 'नरेन्द्र' की चिन्ता का क्या विषय है? लेखक के घर में विदेशी ब्लेडों के प्रयोग को लेकर वह क्या कहता है?
3. लेखक के अनुसार अमीर आदमी के पड़ोसी होने का क्या फायदा है? आपका अपना इस विषय पर क्या विचार है? स्पष्ट करें?
4. ''देखो तो इन पौधों की जड़ें तुम्हारे मकान की नींव को खाए जा रही हैं।'' नरेन्द्र के इन शब्दों का गहन अर्थ क्या है? स्पष्ट करें।

*****

30. कमलेश भारतीय
(जन्म सन् 1952)

हिन्दी लघुकथा लेखन में कमलेश भारतीय एक जाना-पहचाना नाम है। पंजाब के हिंदी कथा लेखक के रूप में इन्हें विशेष सम्मान मिला है। इनका जन्म 17 जनवरी, 1952 को होशियारपुर (पंजाब) में हुआ। इन्होंने एम.ए. हिंदी, प्रभाकर (स्वर्ण पदक) तथा बी.एड. की उपाधियां प्राप्त कीं।

कमलेश भारतीय स्वतंत्र रूप से लिखते रहे। उन्होंने कुछ समय खटकड़ कलां (नवाँशहर) के आदर्श विद्यालय में अध्यापन कार्य भी किया। ये कार्यकारी प्राचार्य (प्रिंसीपल) भी रहे। इसके बाद वे चंडीगढ से प्रकाशित ''दैनिक ट्रिब्यून'' के चंडीगढ़ में ही उप-सम्पादक रहे। आजकल इसी समाचार पत्र के हिसार स्थित स्टाफ रिपोर्टर हैं। इनकी रचनाएं आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से काफी समय से प्रसारित हो रही हैं।

भारतीय जी ने हिंदी कहानी में कुछ अच्छे प्रयोग किए हैं। इस प्रकार कहानी-लेखन में मौलिकता का परिचय दिया है। इनकी प्रकाशित कथा-रचनाएं हैं- 'महक से ऊपर','मस्तराम जिंदाबाद' (लघु कथा संग्रह), इस बार (लघुकथा संग्रह), माँ और मिट्टी (कथा-संग्रह), जादूगरनी तथा एक संवाददाता को डायरी (कथा-संग्रह)।

इनकी लघुकथाओं का महत्व इससे सहज की लगाया जा सकता है कि ये दूसरी भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं। इन्हें अपनी कृतियों पर अनेक संस्थाओं ने सम्मानित भी किया है। इनकी लघुकथाएं आम पाठक की समझ में आ जाती हैं। इनमें आम आदमी के जीवन के दु:ख दर्द की पहचान सहज रूप में की गई है। ग्राम जीवन भी देखा जा सकता है। हमारी दृष्टि से कमलेश भारतीय का सारा लेखन आम आदमी के जीवन से जुड़ा है। लघु कथाओं को पढ़ते हुए पाठक पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

पाठ परिचय

'जन्म दिन' कमलेश भारतीय द्वारा रचित एक अत्यन्त संवेदनशील सामाजिक समस्या पर आधारित लघुकथा है। भारतीय समाज में लड़के और लड़की में व्याप्त अंतर इसका मूल आधार है। लड़के के जम्म-दिन को धूम-धाम से मनाना और लड़की के जन्म-दिन की अवहेलना

करना लड़की के भीतर ही भीतर एक कुण्ठा को जन्म देता है। इसलिए जब मन्नू अपनी बड़ी माँ के पास आती है तो वह अपने भीतर की यह इच्छा व्यक्त करती है। भाषा भावपूर्ण है- संवाद कथा को गति देते हैं। लघुकथा के सीमित आकार में रहकर लेखक ने समस्या के साथ-साथ मन्नू के चरित्र को भी उभारा है।

जन्मदिन

छोटे भाई की छोटी लड़की मन्नू हमारे पास आई हुई थी। एक सुबह नाश्ते पर कहने लगी- बड़ी माँ, मेरी एक विनती सुनोगी?

''कहो बेटे, कहो!'' पत्नी ने पुचकारते हुए कहा।

''- आज मेरा जन्मदिन है। मनाओगी?'' बड़ी-बड़ी आँखों से मन्नू ने बड़ा सवाल किया।

- मनायेंगे। मनायेंगे क्यों नहीं!

पत्नी ने चहकते हुए कहा।

- केक बनावायेंगे? - मोमबत्तियाँ जलायेंगे?

- हाँ हाँ! क्यों नहीं बेटे!

- बड़ी माँ, कुछ मेहमान भी बुलायेंगे?

- हाँ

- सब तालियाँ बजायेंगे- हैप्पी बर्थ डे कहेंगे?

- हाँ।

- गिफ्ट भी मिलेंगे?

- हाँ बेटे। पर तुझे शक क्यों हो रहा है?

- बड़ी माँ, मेरा जन्मदिन कभी नहीं मनाया जाता न , इसलिए ! डैडी मेरे भाई का जन्मदिन तो धूम-धाम से मनाते हैं और मेरा जन्मदिन भूल जाते हैं। आप कितनी अच्छी हो, बड़ी माँ, मेरी प्यारी अम्मा!

मेरी पत्नी की आँखों में आँसू थे और वह कह रही थी- बेटी, तू हर साल आया कर, हम तेरा जन्मदिन मनाया करेंगे।

मन्नू की आँखों में आँसू इन्द्र धनुष के रंगों में बदल गये थे।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें:-

1. मन्नू का जन्मदिन क्यों नही मनाया जाता था?
2. मन्नू की बातें सुनकर लेखक की पत्नी की आँखों में आँसू क्यों आ गए?
3. 'जन्मदिन' कथा भारतीय समाज में व्याप्त एक कुरीति की ओर संकेत करती है- क्या भारतीय समाज में लड़की के जन्म के संबंध में कुछ और भी कुरीतियाँ हैं- स्पष्ट करें।

******

31. अशोक भाटिया

(जन्म सन् 1955)

संयुक्त पंजाब के लेखकों में डॉ. अशोक भाटिया एक आलोचक तथा लघुकथा लेखक के रूप में अपनी पहचान बना चुके हैं। लघु लेखन को एक आन्दोलन के रूप में लाने में इनकी विशेष भूमिका है।

अशोक भाटिया का जन्म 5 जनवरी, 1955 को अम्बाला छावनी में हुआ। इन्होंने हिंदी में एम.ए., एम. फिल. तथा पीएच.डी. की उपलब्धियाँ प्राप्त कीं। व्यवसाय से आप एक सरकारी कॉलेज में अध्यापक हैं। इन्होंने विद्यार्थी जीवन से ही लिखना शुरू कर दिया था। इनकी मूल लेखन और सम्पादन में विशेष रुचि रही है। सन् 1979 में 'नवागत' सम्पादित काव्य-संग्रह प्रकाश में आया। 'समकालीन हिन्दी समीक्षा' इनकी एक समीक्षा पुस्तक प्रकाशित है। इस पर हरियाणा हिन्दी साहित्य सम्मेलन से इन्हें पुरस्कार भी मिल चुका है।

लघु कथा लिखने में इनकी विशेष रुचि रही है। 'जंगल में आदमी' इनका सन् 1990 में प्रकाशित लघुकथा- संग्रह हैं। 'समुद्र का संसार' बाल पुस्तक है। चेतना के पंख सम्पादित रचना है। उन्नयन पत्रिका (इलाहाबाद) में पंजाब-हरियाणा कवितांक का सम्पादन किया। इनकी रचनाएँ अनेक पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही है। इन्होंने कुछ पंजाबी लेखकों के लेखों का हिंदी में अनुवाद भी किया है। इनकी रचनाएँ आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से प्रसारित हो चुकी हैं।

इन्हें कुछ संस्थाओं ने सम्मानित भी किया है।

पाठ-परिचय

प्रस्तुत लघुकथा मानवीय संबंधों की भावमयता पर आधारित है। मानव हाँड-माँस के जीवित व्यक्तियों से ही नहीं अपितु पेड़, पौधों रास्तों से भी रिश्ता रखता है- सरूप सिंह ड्राइवर जो हर रोज उसी रास्ते से अपनी बस लाता था- आज अत्यन्त भावुक हो गया है- क्योंकि आज इस बस के रास्ते व रास्ते से जुड़ी हुई वस्तुएं कल मात्र स्मृतियां रह जाएंगी। बस के मुकाम पर पहुँचते ही वह रिटायर हो जाएगा। लघुकथा का नाम 'रिश्ते' अत्यन्त सार्थक है। सरूप सिंह की रिटायरमेंट के साथ इसकी व्यक्तिगत स्मृतियों- निजी संवेदनाओं का जुड़ना अत्यन्त स्वाभाविक है। कहानी की भाषा अत्यन्त स्वाभाविक है- लेखक ने भावमय ढंग से इसे प्रस्तुत किया है।

रिश्ते

वह आम बस थी और सरूप सिंह आम ड्राइवर था। सवारियों ने सोचा था कि भीड़ से बाहर आकर बस तेज़ हो जाएगी। पर ऐसा नहीं हुआ। सरूप सिंह के हाथ आज सख्त ही नहीं, मुलायम भी थे। भारी ही नहीं, हल्के भी थे। उसका दिल आज बहुत पिघल रहा था, वह कभी बस को, कभी सवारियों को और कभी बाहर पेड़ों को देखने लगता, जैसे वहाँ कुछ खास बात हो। कण्डक्टर इस राज को जानता था। लेकिन सवारियाँ धीमी गति से परेशान हो उठीं।

''ड्राइवर साहब, ज़रा तेज चलाओ, आगे भी जाना है,'' एक ने तीखेपन से कहा।

सरूप सिंह ने मिठास घोलते हुए कहा,''आज तक मेरी बस का एक भी एक्सीडेंट नहीं हुआ।''

इस पर सवारियां और उत्तेजित हो गईं। दो चार ने आगे पीछे कहा,''इसका मतलब यह नहीं कि बीस-तीस पे ढीचम ढीचम चलाओ।''

कोशिश करके भी सरूप सिंह बस तेज़ नहीं कर पा रहा था। उस ने बढ़ते हुए शोर में बस रोक दी! अपना छलकता चेहरा घुमाकर बोला, बात यह है कि इस रास्ते से मेरा तीस सालों का रिश्ता है। आज मैं यहाँ आखिरी बार बस चला रहा हूँ। बस के मुकाम पर पहुँचते ही मैं रिटायर हो जाऊँगा, इसलिए......!''

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें:-

1. ड्राइवर बस धीमी गति से क्यों चला रहा था?
2. सवारियों की झल्लाहट का क्या कारण था? स्पष्ट करें।
3. 'रिश्ते' लघुकथा मानवीय संवेदना की कहानी है- स्पष्ट करें।

*****

32. विनोद शर्मा

(जन्म सन् 1956)

विनोद शर्मा का जन्म फिरोज़पुर ज़िला के फाज़िल्का नामक स्थान पर 18 जनवरी, 1956 को हुआ। आप मेधावी छात्र थे। पाँचवीं में ज़िला छात्रवृत्ति परीक्षा में तृतीय स्थान प्राप्त करने के बाद आपने मैट्रिक परीक्षा भी राष्ट्रीय मैरिट छात्रवृत्ति में उत्तीर्ण की। इसी बीच आपने प्रभाकर परीक्षा भी पास कर ली थी। एम. ए. हिंदी, पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला से की और विश्वविद्यालय में द्वितीय स्थान पर रहे। तत्पश्चात् बी.एड. व एम. एड. की परीक्षा पास कीं। विद्यार्थी जीवन में ही युवा समारोहों में संगोष्ठी व कविता-उच्चारण प्रतियोगिताओं में विशेष स्थान प्राप्त करते हुए आल इंडिया रेडियो के 'युव-वाणी' कार्यक्रम में भाग लिया। कॉलेज स्तर पर ही आपने सम्पादन का कार्य किया। आपने डी.ए.वी. कॉलेज ऑफ एजूकेशन, अबोहर में मुख्य छात्र सम्पादक के तौर पर प्रशंसनीय कार्य किया। एक गणित अध्यापक के रूप में अपना अध्यापन कार्य शुरू करते हुए 17 वर्ष तक आदर्श स्कूल भाग, (मुक्तसर) में हिंदी प्राध्यापक के रूप में सेवा करने के बाद आजकल आप आदर्श सीनियर सेकंडरी स्कूल कोटभाई (मुक्तसर) से प्रिंसिपल के पद से सेवानिवृत्त होकर स्वतंत्र लेखन कार्य करते हुए साहित्य सेवा में लगे हुए हैं।

इनके समसामयिक समस्याओं व शैक्षिक विषयों पर अनेक निबंध, व्यंग्य, कथा, लघुकथा, कविता, गीत का प्रकाशन जागृति हिंदी, दैनिक ट्रिब्यून, स्वाति, 'लहू की लौ' नामक पत्र-पत्रिकाओं में होता रहा है। 'काँटों में फूल' लघुकथा संग्रह का सफल सम्पादन आपने किया। आपने हिंदी भाषा व साहित्य के विकास के लिए साहित्य सभा फाज़िल्का व हरियाणा प्रादेशिक साहित्य सम्मेलन मंडी डबवाली में कार्य किया। आपका काव्य संग्रह 'शिशिर का अन्त' व कथा संग्रह भी प्रकाशित हो चुका है, जो प्रशंसनीय है। पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड द्वारा भी आपको साहित्य में योगदान देने के कारण सम्मानित किया जा चुका है।

पाठ-परिचय

'नई नौकरी' लघुकथा आधुनिक जीवन के स्वार्थमय परिवेश की कहानी है। आज के जीवन में रिश्तों की अहमियत स्वार्थ के आधार पर टिक-सी गई है। 'स्वार्थ लाग करहिं सब प्रीति' वाली बात देखने को मिलती है। भाषा सरल है- एक सामाजिक समस्या को छूने का प्रयास किया गया है- बस लघु कथा पाठक को भीतर से कहीं कचोटती है।

नई नौकरी

बस माँ। अब और नहीं सहन कर सकता- तुम दूसरों के जूठे बर्तन साफ करो- यह मेरे लिए डूब मरने वाली बात है- सुबोध ने चारपाई पर बैठते हुए कहा।

यशोदा की आँखों में आँसू आ गए-

आखिर अपना खून अपना ही होता है- चलो दो साल के बाद ही सही-बेटे ने खबर तो ली- पति की मृत्यु के बाद यशोदा सुबोध के साथ रहने लगी थी, लेकिन बहू के साथ कहा सुनी जब सीमा से बाहर हो गई तो यशोदा वापिस आ गई। सोचती थी बेटा आएगा- वापिस ले जाएगा- लेकिन निराशा ही हाथ लगी-आज वह खुशी से पागल-सी हो गई थी।

''लेकिन बेटा। बहू क्या सोचेगी?'' एकाएक यशोदा के मुँह से निकल गया।

''वाह माँ- कैसे बात करती हो? अरे तुम्हारी बहू ने तो मुझे यहाँ भेजा है- और उसने कौन-सा घर बैठे रहना है- उसे तो नौकरी मिल गई। अब तो चौका बर्तन और गुड़िया सब तुम्हारी ही ज़िम्मेदारी है। उसने तो नौकरानी तक को हटा दिया है।'' सुबोध ने मुस्कराते हुए कहा।

यशोदा सन-सी रह गई-एकाएक उसकी सारी प्रसन्नता लुप्त हो गई- उसे लगा जैसे उसे दूसरी जगह नौकरी मिल गई है।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें:-

1. यशोदा अपने बेटे सुबोध का घर क्यों छोड़ आई थी?
2. सुबोध यशोदा को लेने क्यों आया था?
3. 'नई नौकरी' लघुकथा आज के टूटते परिवारों और भौतिकवादी परिवेश की कहानी है- स्पष्ट करें।

*****

एकांकी भाग

33. उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

(जन्म 1910–मृत्यु 1996)

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' एक बहु प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार हैं। इन्होंने कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक, एकांकी आदि अनेक साहित्य-विधाओं में लिखा है। ये पंजाब के एक ऐसे साहित्यकार हैं, जिन्हें साहित्य-लेखन में अद्‌भुत सफलता मिली है।

इनका जन्म 14 दिसम्बर, 1910 को जालन्धर (पंजाब) में हुआ। इनका सम्बन्ध ब्राह्मण परिवार से था। इनके पिता श्री पण्डित माधोराम स्टेशन मास्टर थे। जालन्धर से मैट्रिक और वहाँ के डी०ए०वी० कॉलेज से इन्होंने 1931 में बी०ए० की परीक्षा पास की। बचपन से ही अश्क अध्यापक बनने, लेखक और सम्पादक बनने, वक्ता और वकील बनने, अभिनेता और डायरेक्टर बनने और थियेटर अथवा फिल्म में जाने के अनेक सपने देखा करते थे। बी०ए० पास करते ही ये अपने ही स्कूल में अध्यापक हो गये, पर 1933 में उसे छोड़ दिया और जीविकोपार्जन हेतु साप्ताहिक 'गुरु घण्टाल' के लिए प्रति-सप्ताह एक रुपये में एक कहानी लिखकर दी। 1934 में अचानक सब छोड़ लॉ कॉलेज में प्रवेश लिया और 1936 में लॉ पास किया। पर उसी वर्ष लम्बी बीमारी और प्रथम पत्नी के देहान्त के बाद इनके जीवन में अद्‌भुत मोड़ आया।

अश्क जी उर्दू से हिन्दी में लिखने लगे और आज वे हिंदी के एक प्रतिभा सम्पन्न महत्त्वपूर्ण साहित्यकार माने जाते हैं? इनकी कुछ प्रकाशित प्रतिनिधि रचनाएँ इस प्रकार हैं– जय पराजय, स्वर्ग की झलक, छठा बेटा, उड़ान, कैद आदि।

एकांकी संग्रह– जोंक, लक्ष्मी का स्वागत, अधिकार का रक्षक, देवताओं की छाया में।

उपन्यास इस प्रकार हैं– गिरती दीवारें, गर्म राख, बड़ी-बड़ी आँखें तथा पत्थर अल पत्थर आदि।

कहानी संग्रह– अंकुर, चट्टान, डाची, पिंजरा, मेमने, काले साहब, रशीद आदि।

काव्य-संग्रह – दीप जलेगा, चाँदनी रात और अजगर, बरगद की बेटी।

संस्मरण – मण्टो मेरा दुश्मन।

इन्होंने निबंध, पत्र, डायरी आदि नई गद्‌य विधाओं में भी लिखा है।

हिंदी एकांकी इतिहास में उपेन्द्रनाथ अश्क का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी एकांकी कला पर पाश्चात्य एकांकी शिल्प का प्रभाव है। अभिनेयता की दृष्टि से इनके एकांकी बहुत सफल हुए हैं। इनके एकांकियों में यथार्थवादी चित्रण के साथ-साथ मानसिक भावों का सूक्ष्म विश्लेषण तथा अन्तर्द्वन्द्व का पर्याप्त निर्देशन है। इन्हें सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन से एकांकियों के विषय चुनना अधिक प्रिय है। इनके एकांकियों की भाषा सरल, सुरुचिपूर्ण तथा प्रभावशाली है, जिनमें व्यंग्यात्मकता का पुट भी देखने को मिलता है।

पाठ-परिचय

'अधिकार का रक्षक' एकांकी अश्क जी का एक सशक्त सामाजिक व्यंग्य है। लेखक ने इसमें स्वयं को जनता के प्रतिनिधि कहलाने वाले लोगों के जीवन का वास्तविक चित्र खींचा है। मि. सेठ (घनश्याम दास) के रूप में एक ऐसे चरित्र को दिखाया है जो प्रान्तीय असेम्बली का उम्मीदवार है। एक दैनिक पत्र का मालिक भी है। स्वयं को बच्चों, मज़दूरों, युवकों, नौकरों, पीड़ितों, पददलितों व स्त्रियों के अधिकारों का रक्षक कहलाने वाला सेठ घनश्यामदास अपने ही बच्चे व स्त्री को गाली निकालता है -पीटता है - अपने नौकर की तीन तीन महीने की तनख्वाह नहीं देता-अपने दैनिक पत्र के सम्पादक का शोषण करता है-लेखक मि. सेठ की कथनी और करनी में व्याप्त (व्याप्त) अन्तर दिखाकर पाठक को सोचने पर विवश कर देता है कि क्या ऐसे जन प्रतिनिधि हमारे अधिकारों के वास्तव में रक्षक है?

एकांकी रंगमंचीय है। लेखक ने आरम्भ में ही मंच निर्देश दिए हैं-सारा एकांकी मि. सेठ के ड्राइंग रूम में ही घटित होता है -भाषा पात्रानुकूल है-संवादों में गति है-कहीं-कहीं संवाद लम्बे हैं-लेकिन वह ज़रूरी है-टेलीफोन का प्रयोग किया गया है-पात्रों का चरित्र-चित्रण स्पष्ट हैं-मूलत: एकांकी मि. सेठ के इर्द-गिर्द घूमता है-एकांकी का नाम 'अधिकार का रक्षक'-सार्थक-सारगर्भित 'व' एकांकी के कथन को स्पष्ट करने वाला है।

अधिकार का रक्षक

पात्र परिचय

मि० सेठ : (घनश्यामदास) - एक दैनिक पत्र के मालिक तथा प्रान्तीय असेम्बली के उम्मीदवार

रामलखन : सेठ का नौकर

भगवती : रसोइया

कॉलेज के दो लड़के, सम्पादक, श्रीमती सेठ, नन्हा बलराम इत्यादि।

समय - प्रात: काल आठ बजे

स्थान- मि. सेठ के मकान का ड्राइंग रूम

[बायीं ओर, दीवार के साथ, एक बड़ी मेज़ लगी हुई है, जिस पर एक रैक में करीने से पुस्तकें चिनी हैं, दायें-बायें कोनों में लोहे की दो ट्रे रखी हैं, जिनमें से एक में आवश्यक कागज़-पत्र आदि और दूसरी में समाचार-पत्र रखे हैं। बीच में शीशे का एक डेढ़ वर्ग गज का चौकोर टुकड़ा रखा है, जिसके नीचे ज़रूरी कागज़ दबे हुए हैं। शीशे के टुकड़े और किताबों के रैक के मध्य में एक सुन्दर कलमदान रखा हुआ है और एक-दो कलम शीशे के टुकड़े पर बिखरे हुए हैं।

मेज़ के इस ओर एक गद्देदार कुर्सी है जिसके पास ही दायीं ओर एक ऊँचा स्टूल हैं, जिस पर टेलिफ़ोन का चोंगा रखा हुआ है। स्टूल के दायीं ओर एक तख्तपोश है, जिस पर सफाई से बिस्तर बिछा हुआ है। कुर्सी और तख्तपोश के बीच में स्टूल इस तरह रखा हुआ है कि उस पर पड़ा हुआ टेलिफ़ोन का चोंगा दोनों जगहों से सुगमता के साथ उठाया जा सकता है। तख्तपोश के पास एक आरामकुर्सी पड़ी है। बायीं दीवार के साथ एक कौच का सैट है। बायीं दीवार में दो खिड़कियाँ हैं, जिनके मध्य कैलेंडर लटक रहा है। दायीं ओर दीवार में एक दरवाज़ा है, जो घर के बरामदे में खुलता है।

पर्दा उठने पर मि. सेठ कुर्सी पर बैठे कोई समाचार-पत्र देखते नज़र आते हैं।]

टेलिफ़ोन की घंटी बजती है।)

(मि. सेठ समाचार-पत्र ट्रे में फेंककर चोंगा उठाते हैं।)

मि. सेठ - ''हैलो!''

(ज़रा और ऊँचे) ''हैलो!!''

''हाँ, हाँ, मैं ही बोल रहा हूँ। घनश्यामदास। आप ...... अच्छा, अच्छा, रलाराम जी, मंत्री, हरिजन -सभा के हैं! नमस्ते, नमस्ते। (ज़रा हँसते हैं।) सुनाइए महाराज, कल के जलसे की कैसी रही?''

''अच्छा! आपके भाषण के बाद हवा पलट गई, सब हरिजन मेरे पक्ष में प्रचार करने को तैयार हो गये ?''

''ठीक-ठीक ! आपने खूब कहा, खूब कहा आपने। वास्तव में मैंने अपना समस्त जीवन पीड़ितों, पददलितों और गिरे हुओं को ऊपर उठाने में लगा दिया है। बच्चों को ही लीजिए, हमारे घरों में उनकी दशा कैसी शोचनीय है? उनके लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा की पद्धति कितनी पुरानी, ऊल-जलूल और दकियानूसी है? उनके स्वास्थ्य की ओर कितना कम ध्यान दिया जाता है और अनुचित दबाव में रखकर उन्हें कितना डरपोक और भीरू बनाया जाता है? उन्हें.....''

(छोटा बच्चा बलराम भीतर आता है।)

बलराम - बाबू जी, बाबू जी हमें मेले .....

मि. सेठ - **(पूर्ववत् टेलिफ़ोन पर बातें कर रहे हैं, पर आवाज़ तनिक ऊंची हो जाती है)** हाँ, हाँ मैं कह रहा हूँ कि मैंने बच्चों के लिए, उनकी शिक्षा-दीक्षा के लिए उनके स्वास्थ्य ......

बलराम - **(और समीप आकर कुर्ते का छोर पकड़कर)** बाबू जी .....

मि. सेठ - **(चोंगे से मुँह हटाकर, क्रोध से)** ठहर, ठहर कम्बखत! देखता नहीं मैं टेलिफ़ोन पर बात.......

(बच्चा रोने लगता है)

मि. सेठ - (टेलिफ़ोन पर) मैं आपसे एक सेकंड में बात करता हूँ, इधर ज़रा शोर हो रहा है।

(चोंगा खट् से मेज़ पर रख देते हैं।)

(बच्चे से) ''चल, निकल यहाँ से! सूअर! कम्बख्त !!''

(कान पकड़ कर उसे दरवाज़े की तरफ घसीटते हैं, बच्चा रोता हुआ बैठ जाता है।)

(नौकर को आवाज़ देते हैं) ''ओ रामलखन, ओ रामलखन!''

रामलखन - (बाहर से) आय रहे बाबू जी!

(भागता हुआ भीतर आता है। साँस फूली हुई है।)

''जी बाबूजो।''

(मि. सेठ नौकर को पीटते हैं।)

मि. सेठ – सूअर ! हरामखोर! पाजी ! क्यों इसे इधर आने दिया ?

रामलखन – अब बाबू काहे मारते हो? लिये तो जात रहे।

(लड़के का बाजू थामकर उसे बाहर ले जाता है।)

मि. सेठ – और सुनो, किसी को इधर मत आने देना। कोई बाहर से आये तो पहले आकर खबर दे देना। समझे! नहीं तो मार-मार कर खाल उधेड़ दूँगा।

(नौकर और लड़के को बाहर निकाल कर जोर से किवाड़ लगा देते हैं।)

''हूँ! अहमक मुफ्त में इतना समय नष्ट कर दिया।''

(चोंगा उठाते हैं)

(तनिक, कर्कश स्वर में) ''हैलो!'' **(आवाज़ में ज़रा विनम्रता लाकर)** अच्छा, अच्छा आप अभी हैं **(स्वर को कुछ और संयत करके)** तो मैं कह रहा था कि प्रांत में मैं ही ऐसा व्यक्ति हूँ, जिसने उस अत्याचार के विरुद्ध आन्दोलन किया जो घरों और स्कूलों में छोटे-छोटे बच्चों पर किया जाता है और फिर वह मैं ही हूँ जिसने पाठशालाओं में शारीरिक दंड को तत्काल बंद कर देने पर जोर दिया। दूसरे अत्याचार-पीड़ित लोग घरों में काम करने वाले भोले-भाले निरीह नौकर हैं, जो क्रूर मालिकों के ज़ुल्म का शिकार बनते हैं। इस अत्याचार और अन्याय को जड़ से उखाड़ने हेतु मैंने नौकर-यूनियन स्थापित की। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण होते हुए भी मैंने हरिजनों का पक्ष लिया, उनके स्व की, उनके अधिकारों की रक्षा के लिए मैंने दिन-रात एक कर दिया है और अब भी यदि परमात्मा ने चाहा और यदि मैं धर्मसभा में गया तो...... ''

(दरवाज़ा खुलता है)

रामलखन – **(दरवाज़े से झांककर)** बाबू जी जमादारिन ....

मि. सेठ – **(टेलिफ़ोन पर बात जारी रखते हुए)** मैं वहाँ भी हरिजनों की सेवा करूंगा। आप अपनी हरिजन-सभा में इस बात की घोषणा कर दें।

रामलखन – **(ज़रा अंदर आकर)** बाबू जी ......

मि. सेठ – **(क्रोध से)** ठहर पाजी, **(टेलिफ़ोन में)** नहीं नहीं, मैं नौकर से कह रहा था, (खिसियाने से होकर हँसते हैं) हाँ, तो आप घोषित कर दें कि मैं

असेम्बली में हरिजनों के पक्ष की हिमायत करूंगा और वे मेरे हक में प्रोपेगेंडा करें।

''हैं .... क्या? ...... अच्छा, अच्छा..... मैं अवश्य ही जलसे में शामिल होने का प्रयास करूँगा। क्या करूँ अवकाश ही नहीं मिलता, हिहि ..... हिहि (**हँसते हैं**) अच्छा नमस्कार।''

(टेलिफ़ोन का चोंगा रख देते हैं।)

(**नौकर से**)- ''तुम्हें तो कहा था इधर मत आना।''

रामलखन - आप तो कहे कि कोऊ आप तो इत्तला कर देई, मुदा अब ई जमादारिन अपनी मजूरी माँगत .....

मि. सेठ - (**गुस्से से**) कह दो उससे, अगले महीने आए। मेरे पास समय नहीं। चले जाओ। किसी को मत आने दो।

जमादारिन - (**दरवाज़े के बाहर से विनीत स्वर में**) महाराज दूधो नहाओ, पूतो फलो। दो महीने हो गए हैं।

मि. सेठ - कह जो दिया, फिर आना, जाओ। अब समय नहीं।

(भगवती प्रवेश करता है)

भगवती - जय रामजी की बाबू जी।

मि. सेठ - तुम इस समय क्यों आए हो भगवती?

भगवती - बाबू जी हमारा हिसाब कर दो?

मि. सेठ - (**बेपरवाही से**) तुम देखते हो, आजकल चुनाव के कारण कुछ नहीं सूझता। कुछ दिन ठहर जाओ।

भगवती - बाबूजी, अब एक घड़ी भी नहीं ठहर सकते। आप हमारा हिसाब चुका ही दीजिए।

मि. सेठ - (**ज़रा ऊँचे स्वर में**) कहा जो है, कुछ दिन ठहर जाओ। यहाँ अपने तो होश नहीं और तुम हिसाब हिसाब चिल्ला रहे हो।

भगवती - जब आपकी नौकरी करते हैं, तब खाने के लिए और कहाँ माँगने जाएँ?

मि. सेठ - अभी चार दिन हुए दो रुपये ले गए थे।

भगवती – वे कहाँ रहे? एक तो मार्ग में बनिए की भेंट हो गया था। दूसरे से मुश्किल से आज तक का काम चला है।

मि. सेठ – **(जेब से रुपया निकालकर फर्श पर फेंकते हुए)** तो लो, अभी यह एक रूपया ले जाओ।

भगवती – नहीं बाबू जी, एक-एक नहीं। आप मेरा सब हिसाब चुका दीजिए। वेतन मिले तीन-तीन महीने हो गये हैं। एक-एक दो-दो से कितने दिन काम चलेगा? हमारे भी आखिर बीवी बच्चे हैं, उन्हें भी खाने-ओढ़ने को चाहिए। आप एक दिन के चाय-पानी में जितना खर्च कर देते हैं, उतना हमारे एक महीने ......

मि. सेठ – **(क्रोध से)** क्या बक-बक कर रहे हो? कह जो दिया, अभी यह ले जाओ, बाकी फिर ले जाना।

भगवती – हम तो आज ही सब लेकर जायेंगे।

मि. सेठ – **(उठकर और भी क्रोध से)** क्या कहा? आज ही लोगे। अभी लोगे ! जा, नही देते। एक कौड़ी भी नहीं देते। निकल जा यहाँ से, जा, जाकर पुलिस में रिपोर्ट कर दे। पाजी, हरामखोर, सूअर ! आज तक सब्ज़ी में, दाल में, सौदा सुलुफ में, यहाँ तक कि बाज़ार से आने वाली हर चीज़ में पैसे खाता रहा, हमने कभी कुछ नहीं कहा और अब यों अकड़ता है। जा, निकल जा। जाकर अदालत में मामला चला दे। चोरी के अपराध में छह महीने के लिए जेल न भिजवा दूं, तो नाम नहीं।

भगवती – सच है बाबूजी, गरीब लाख ईमानदार हो तो भी चोर है, डाकू है। और अमीर यदि आँखों में धूल झोंक कर हज़ारों पर हाथ साफ कर जाय, चन्दे के नाम पर सहस्त्रों ....

मि. सेठ : **(क्रोध से पागल होकर)** तू जायगा या नहीं, **(नौकर को आवाज़ देते हैं)** रामलखन, रामलखन!

रामलखन – जी बाबू जी, जी बाबू जी।

(भागता हुआ भीतर आता है।)

मि. सेठ – इसको बाहर निकाल दो!!

रामलखन - **(भगवती के बलिष्ठ, चौड़े-चकले शरीर को नख से शिख तक देख कर)** ई को बाहर निकारि दें, ई हम सों कब निकसत , ई तो हमें निकारि दे.....

मि. सेठ - **(बाजू से रामलखन को परे हटाकर)** हट, तुझसे क्या होगा?

(भगवती को पकड़ कर पीटते हुए बाहर निकालतें हैं) निकल जाओ।

भगवती - मार लें, और मार लें। मार लें। हमारे चार पैसे रख कर आप लक्षाधीश न हो जाएँगे।

(मि. सेठ उसे बाहर निकालकर जोर से दरवाज़ा बन्द कर देते हैं।)

(रामलखन से) तुम यहाँ खड़े क्या देख रहे हो ? निकलो?

(रामलखन डरकर निकल जाता है।)

मि. सेठ - **(तख्तपोश पर लेटते हुए)** नामाकूल !

(फिर उठ कर कमरे में इधर-उधर घूमते हैं, फिर सीटी बजाते हैं और घूमते हैं, फिर नौकर को आवाज़ देते हैं।)

रामलखन, रामलखन।

रामलखन - **(बाहर से)** आये रहे बाबूजी !

(प्रवेश करता है।)

मि. सेठ - अखबार अभी आया है कि नहीं ?

रामलखन - आ गया बाबू जी, बड़े काका पढ़ि रहन, अभी लाय देत।

मि. सेठ - पहले इधर क्यों नहीं लाया? कितनी बार तुझे कहा है, अखबार पहले इधर लाया कर। ला, भागकर।

(रामलखन बाहर को भागता हुआ जाता है)

मि. सेठ - **(घूमते हुए अपने आप)** मेरा वक्तव्य कितना ज़ोरदार था। छात्रों में हलचल मच गई होगी, सबकी सहानुभूति मेरे साथ हो जाएगी।

(टेलिफ़ोन की घण्टी बजती है। मि. सेठ जल्दी से चोंगा उठाते हैं।)

(टेलिफ़ोन पर धीरे से) ''हैलो।''

(ज़रा ऊँचे) ''हैलो! ..... कौन साहब? मन्त्री हौजरी यूनियन ?''

अच्छा अच्छा, नमस्कार। सुनाइए, आपके चुनाव क्षेत्र का क्या हाल हैं?''

''क्या ? .... सब मेरे हक में वोट देने को तैयार हैं। मैं कृतज्ञ हूँ, मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ।''

इस ओर से आप बिल्कुल निश्चिन्त रहें। मैं उन आदमियों में से नहीं, जो कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। मैं जो कहता हू वही करता हूँ और जो करता हूँ वही कहता हूँ। आपने मेरा इलेक्शन मैनीफेस्टो (चुनाव सम्बन्धी घोषणा पत्र) नहीं पढ़ा? असेम्बली में जाते ही मैं मज़दूरों की व्यवस्था सुधारने का प्रयास करूँगा। उनकी स्वास्थ्य रक्षा, सुख आराम, पठन-पाठन और दूसरी माँगों के सम्बन्ध में विशेष बिल धारा सभा में पेश करूँगा।''

''क्या? हाँ, हाँ, इस ओर से भी मैं बेपरवाह नहीं। मैं जानता हूँ इस सिलसिले में श्रमजीवियों को किस मुसीबत का सामना करना पड़ता है। ये पूँजीपति गरीब मजदूरों के कई-कई महीनों के वेतन रोक कर उन्हें भूखों मरने पर विवश कर देते हैं। स्वयं मोटरों में सैर करते हैं, शानदार होटलों में खाना खाते हैं और अब ये गरीब दिन रात परिश्रम करने के बाद, अपनी मज़दूरी माँगते हैं तब उन्हें हाथ तंग होने का, कारोबार में हानि होने का, अथवा कोई ऐसा ही दूसरा बहाना बनाकर टाल देते हैं। मैं असेम्बली में जाते ही एक बिल ऐसा पेश करूँगा जिससे वेतन के बारे में मज़ूदरों की सब शिकायतें सरकारी तौर पर सुनी जाएं और जिन लोगों ने गरीब श्रमिकों के वेतन तीन महीने से अधिक दबा रखे हों उनके विरुद्ध मामला चलाकर उन्हें दंड दिया जाये।''

''हाँ, आपकी यह माँग सोलह आने ठीक है। मैं असेम्बली में इस माँग का समर्थन करूँगा। सप्ताह में 42 घंटे काम की माँग कोई अनुचित नहीं। आखिर मनुष्य और पशु में कुछ तो अन्तर होना चाहिए। तेरह-तेरह घंटे की ड्यूटी। भला काम की कुछ हद भी हैं!''

(धीरे-धीरे दरवाज़ा खुलता है और सम्पादक महोदय भीतर आते हैं। पतले दुबले से, आँखों पर मोटे शीशे की ऐनक चढ़ी है, गाल पिचक गये हैं और ऐसा प्रतीत होता है जैसे आपको देर से प्रवाहिका का कष्ट है। धीरे से दरवाज़ा बन्द करके खड़े रहते हैं।)

मि. सेठ - **(सम्पादक से)** आप बैठिए **(टेलिफ़ोन पर)** ये हमारे सम्पादक महोदय आये हैं। अच्छा तो फिर सन्ध्या को आपकी सभा हो रही है। मैं आने की कोशिश करूँगा, और कोई बात हो तो कहिए। नमस्कार!

(चोंगा रख देते हैं।)

(सम्पादक से) बैठिए, आप खड़े क्यों हैं?

सम्पादक – नहीं, नहीं कोई बात नहीं।

(तकल्लुफ के साथ कोच पर बैठते हैं। रामलखन अखबार लिये आता है।

रामलखन – बड़े काका तो देत नहीं रहन, मुदा ज़बरदस्ती लेई आये।

मि. सेठ – **(समाचार-पत्र लेकर)** जा, जा बाहर बैठ !

(कुर्सी को तख्तपोश के पास सरकाकर उस ओर बैठते हैं। पाँव तख्तपोश पर टिका लेते हैं और समाचार पत्र देखने लगते हैं।

सम्पादक – मैं .... मैं............

मि. सेठ – **(अखबार बन्द करके)** हाँ, हाँ, पहले आप ही फरमाइए।

सम्पादक – **(ओठों पर ज़बान फेरते हुए)** बात यह है कि मेरी .... मेरा मतलब है ..... कि मेरी आँखें बहुत खराब हो रही है।

मि. सेठ – आपको डॉक्टर से परामर्श करना चाहिए था। कहिए तो डॉक्टर खन्ना के नाम रुक्का लिख दूँ?

सम्पादक – नहीं यह बात नहीं, **(थूक निगल कर)** बात यह है कि मेरी आँखें इतना बोझ नहीं सहन कर सकतीं। आप जानते हैं मुझे दिन के बारह बजे आना पड़ता है। बल्कि आजकल तो साढ़े ग्यारह बजे आता हूँ। शाम को छह बज जाते हैं, फिर रात को नौ बजे आता हूँ और फिर एक भी बज जाता है, दो भी बज जाते हैं, तीन भी बज जाते हैं।

मि. सेठ – तो आप इतनी देर न बैठा करें। बस जल्दी काम निबटा दिया ....

सम्पादक – मैं तो लाख चाहता हूँ पर जल्दी कैसे निबट सकता है? एक मैं हूँ और दूसरे आदमी हैं, जो न ठीक अनुवाद कर सकते हैं न ठीक लेख लिख सकते हैं, और पत्र बड़े-बड़े आठ पृष्ठों का निकालना होता है। फिर भी शायद काम जल्दी खत्म हो जाय पर कोई समाचार रह गया तो आप नाराज़ ......

मि. सेठ – हाँ, हाँ समाचार तो न रहना चाहिए।

सम्पादक – और फिर यही नहीं, आपके भाषणों की रिपोर्ट की भी प्रतीक्षा करनी होती है। उन्हें ठीक करते-करते डेढ़ बज जाता है। अब आप ही बताइए पहले कैसे जा सकते हैं?

मि. सेठ – **(बेज़ारी से)** तो आखिर आप चाहते क्या हैं?

सम्पादक – मैंने पहले भी निवेदन किया था कि यदि एक और आदमी का प्रबंध कर दें तो अच्छा हो। दिन को वह आ जाया करे, रात को मैं, और फिर प्रति सप्ताह बदली भी हो सकती है जिसमें ....

मि. सेठ – मैं आपसे पहले भी कह चुका हूँ, असम्भव है, बिल्कुल असम्भव है। अखबार कोई बहुत लाभ पर नहीं चल रहा। इस पर एक और सम्पादक के वेतन का बोझ कैसे डाला जा सकता है? अगले महीने पाँच रुपये मैं आपके बढ़ा दूँगा।

सम्पादक – मेरा स्वास्थ्य आज्ञा नहीं देता। आखिर आँखें कब तक बारह-बारह, तेरह-तेरह घण्टे काम कर सकती हैं?

मि. सेठ – कैसी मूर्खों की सी बातें करते हो जी। छह महीने में पाँच रूपये वृद्धि तो सरकार के घर में भी नहीं मिलती। वैसे आप काम छोड़ना चाहें तो शौक से छोड़ दें। एक नहीं दस आदमी मिल जाएंगे लेकिन ....

(रामलखन भीतर आता है ।)

रामलखन – बाहर आपसे द्वि लड़िका मिलना चाहत रहन।

मि. सेठ – कौन हैं?

रामलखन – कोई सकटरी कहे रहन ....

मि. सेठ – जाओ, बुला लाओ। **(सम्पादक से)** आज के पत्र में मेरा जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ है, मालूम होता है उसका कॉलेज के लड़कों पर अच्छा प्रभाव पड़ा है।

सम्पादक – **(मुँह फुलाए हुए)** अवश्य पड़ा होगा।

मि. सेठ – मैंने छात्रों के अधिकारों की हिमायत भी तो खूब की है, छात्र संघ ने जो माँगें विश्वविद्यालय के समाने पेश की हैं, मैंने उन सब का समर्थन किया है।

(दो लड़के प्रवेश करते हैं। दोनों सूट पहने हुए हैं। एक ने टाई लगा रखी है, दूसरे के गले में खुले कॉलर की कमीज़ है।)

दोनों – नमस्ते।

मि. सेठ – नमस्ते।

(दोनों कोच पर बैठते हैं।)

मि. सेठ – कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?

खुले कालर वाला–हमने आज आपका वक्तव्य पढ़ा है।

मि. सेठ – आपने उसे कैसा पसन्द किया?

वही लड़का – छात्रों में सब ओर उसी की चर्चा है। बड़ा जोश प्रकट किया जा रहा है।

मि. सेठ – आपके मित्र किधर वोट दे रहे हैं?

वही लड़का – कल तक तो न पूछिए, लेकिन मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इस बयान के बाद 75 प्रतिशत आपकी ओर ही हो गये हैं। अभी हमारी सभा हुई थी, छात्रों का बहुमत आपकी तरफ था।

मि. सेठ – (प्रसन्नता से) और मैंने गलत ही क्या लिखा है? जिन लोगों का मन बूढ़ा हो चुका है वे नवयुवकों का प्रतिनिधित्व क्या खाक करेंगे? युवकों को तो उस नेता की आवश्यकता है जो शरीर से चाहे बूढ़ा हो चुका हो, पर जिसके विचार बूढ़े न हों, जो रिफार्म से खौफ़ न खाये, सुधारों से कन्नी न कतराये।

वही लड़का – हम अपने कॉलेज के प्रबंध में बी कुछ परिवर्तन चाहते थे, परन्तु कॉलेज के सर्वेसर्वाओं ने हमारी बात ही नहीं सुनी।

मि. सेठ – आपको प्रोटेस्ट (विरोध) करना चाहिए था।

वही लड़का – हमने हड़ताल कर दी है।

मि. सेठ – आपने क्या माँगें पेश की है।

वही लड़का – हम वर्तमान प्रिंसिपल नहीं चाहते। न वह ठीक तरह पढ़ा सकता है, न ठीक प्रबंध कर सकता है। कोई छींके तो जुर्माना कर देता है, कोई खाँसे तो बाहर निकाल देता है। छात्रों से उसका व्यवहार सर्वथा अनुचित और उनके नातेदारों से अत्यन्त अपमानजनक है।

मि. सेठ – **(कुछ उत्साहहीन होकर)** तो आप क्या चाहते हैं?

दोनों – हम योग्य प्रिंसिपल चाहते हैं।

मि. सेठ – **(गिरी हुई आवाज़ में)** आपकी मांग उचित है, पर अच्छा होता यदि आप हड़ताल करने के बजाय कोई वैधानिक रीति प्रयोग में लाते, प्रबंधकों से मिलजुल कर मामला ठीक करा लेते।

वही लड़का – हम सब कुछ करके देख चुके हैं।

मि. सेठ – हूँ!

टाईवाला लड़का – बात यह है जनाब कि छात्र कई वर्षों से वर्तमान प्रिंसिपल से असंतोष प्रकट करते आ रहे हैं, पर व्यवस्थापकों ने तनिक भी परवाह नहीं की। कई बार कॉलेज की प्रबंध कमेटी के पास आवेदन पत्र भेजे गए, पर कमेटी के कानों पर जूं तक नहीं रेंगी। हारकर हमने हड़ताल कर दी है, पर कठिनाई यह है कि कमेटी काफी मज़बूत है, प्रेस पर उसका अधिकार है। हमारे विरुद्ध सच्चे झूठे वक्तव्य प्रकाशित कराए जा रहे हैं और हमारी खबर तक नहीं छापी जाती। आपने छात्रों की सहायता का, उनके अधिकारों की रक्षा का बीड़ा उठाया है, इसीलिए हम आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं।

मि. सेठ – **(अन्यमनस्कता से)** मैं आपका सेवक हूँ। ये हमारे सम्पादक हैं, आप कल दफ्तर में जाकर इनको अपना बयान दे दें। यह जितना उचित समझेंगे, छाप देंगे।

दोनों – **(उठते हुए)** बहुत बेहतर , कल हम सम्पादक जी की सेवा में उपस्थित होंगे। नमस्कार!

मि. सेठ – **(एक साथ)** नमस्कार **(दोनों का प्रस्थान)**

मि. सेठ – **(सम्पादक से)** यदि कल ये आएं तो इनका बयान हरगिज़ न छापना। प्रिंसिपल हमारे कृपालु हैं और कमेटी के सदस्य हमारे मित्र।

सम्पादक – **(मुँह फुलाए हुए)** बहुत अच्छा।

मि. सेठ – आप घबराएं नहीं, यदि कुछ दिन ज्यादा ही काम करना पड़ गया तो क्या आफत आ गई। जब मैंने अखबार शुरू किया था तब चौदह-चौदह, पन्द्रह-पन्द्रह घंटे काम किया करता था। यह महीना आप किसी-न-किसी तरह निकालिए, चुनाव हो लें, फिर कोई प्रबंध कर दूँगा।

सम्पादक – (दीर्घ नि:श्वास छोड़कर) बहुत अच्छा।

मि. सेठ समाचार-पत्र पढ़ना शुरू कर देते हैं। दरवाज़ा ज़ोर से खुलता है और बलराम का बाज़ू थामे श्रीमती सेठ बगुले की भांति प्रवेश करती है।)

श्रीमती सेठ - मैं कहती हूं, आप बच्चों से कभी प्यार करना भी सीखेंगे? जब देखों, घूरते-झिड़कते, डाँटते नजर आते हैं। जैसे बच्चे अपने न हों, पराये हों। भला आज इस बेचारे से क्या अपराध हो गया जो पीटने लगे? देखों तो सही अभी तक कान कितना लाल है।

मि. सेठ - **(पूर्ववत् समाचार-पत्र पर दृष्टि जमाये हुए)** तुम्हें कभी बात करने का सलीका भी आएगा? जाओ, इस समय मेरे पास समय नहीं है।

श्रीमती सेठ - आपके पास हमारी बात सुनने के लिए कभी वक्त होता भी है? मारने और पीटने के लिए जाने कहाँ से समय निकल आता है। इतनी देर से ढूँढ रही थी इसे। नाश्ता कब से तैयार था, बीसियों आवाज़ें दी, घर का कोना-कोना छान मारा, आखिर देखा कि भूसे की कोठरी में बैठा सिसक रहा है। आखिर क्या बात हो गई थी?

मि. सेठ - **(क्रोध से अखबार को तख्तपोश पर पटककर)** क्या बके जा रही हो? बीस बार कहा है कि इन सबको सँभाल कर रखा करो। आ जाते हैं सुबह-सुबह दिमाग चाटने के लिए।

(श्रीमती सेठ बच्चे के दो थप्पड़ लगाती हैं, बच्चा रोता है।)

श्रीमती सेठ - तुझे कितनी बार कहा है, इस कमरे में न आया कर, ये बाप नहीं दुश्मन हैं। लोगों के बच्चों से प्रेम करेंगे, उनके सिर पर प्यार का हाथ फेरेंगे, उनके स्वास्थ्य के लिए बिल पास करायेंगे, उनकी उन्नति के लिए भाषण झाड़ते फिरेंगे और अपने बच्चों के लिए भूलकर भी प्यार का एक शब्द ज़बान पर न लाएँगे। **(बच्चे के और एक चपत लगाती है।)** तुझे कितनी बार कहा है, न आया कर इस कमरे में। मैं तुझे नौकर के साथ मेला देखने भेज देती। **(आवाज़ ऊँची होते-होते रोने की हद को पहुँच जाती है।)** स्वयं जाकर दिखा आती। तू क्यों आया यहाँ -मार खाने, कान तुड़वाने?

मि. सेठ - **(क्रोध से पागल होकर पत्नी को ढकेलते हुए)** - मैं कहता हूँ, इसे पीटना है तो उधर जाकर पीटो। यहाँ इस कमरे में आकर क्यों शोर मचा दिया? अभी कोई आ जाए क्या हो? कितनी बार कहा है, इस कमरे में न आया करो। घर के अंदर जाकर बैठा करो।

(श्रीमती सेठ तुनक कर खड़ी हो जाती है।)

श्रीमती सेठ – आप कभी घर के अंदर आएँ भी ? आपके लिए तो जैसे घर के अंदर आना गुनाह करने के बराबर है। खाना इस कमरे में खाओ, टेलीफोन सिरहाने रखकर इसी कमरे में सोओ, सारा दिन मिलने वालों का ताँता लगा रहे। न हो कुछ लिखते रहो, लिखा न तो पढ़ते रहो, पढ़ो न तो बैठे सोचते रहो। आखिर हमें कुछ कहना हो तो किस समय कहें?

मि. सेठ – कौन-सा मैंने उसका सिर फोड़ दिया है जो कुछ कहने की नौबत आ गई? जरा सा उसका कान पकड़ा था कि बस आकाश सिर पर उठा लिया।

श्रीमती सेठ – सिर फोड़ने का अरमान रह गया हो तो वह भी निकाल डालिए, कहो तो मैं ही उसका सिर फोड़ दूँ।

(उन्मादिनी की भांति बच्चे का सिर पकड़ कर तख्तपोश पर मारती है। मि. सेठ उसे तड़ातड़ पीटते हैं।)

मि. सेठ – मैं कहता हूँ, तुम पागल हो गई हो। निकल जाओ यहाँ से। इसे मारना है तो उधर जाकर मारो। पीटना है तो उधर जाकर पीटो। सिर फोड़ना है तो उधर जाकर फोड़ो। तुम्हारी नित्य की बक-झक से तंग आकर मैं इधर एकान्त में आ गया हूँ। अब यहाँ आकर भी तुमने चीखना चिल्लाना शुरू कर दिया है! क्या चाहती हो? यहाँ से भी चला जाऊँ?

श्रीमती सेठ – (रोते हुए) आप क्यों चले जाएं? हम ही चले जायेंगे।

(भर्राई हुई आवाज़ में नौकर को आवाज़ देती है।)

रामलखन, रामलखन।

रामलखन, जी, बीबी जी।

(रामलखन प्रवेश करता है।)

श्रीमती सेठ-जाओ, जाकर ताँगा ले आओ। मैं मायके जाऊँगी।

(तेज़ी से बच्चे को लेकर चली जाती है। दरवाज़ा जोर से बंद होता है।)

मि. सेठ – बेवकूफ!

(आरामकुर्सी पर बैठ कर टाँगें तख्तपोश पर रख लेते हैं और पीछे को लेटकर अखबार पढ़ने लगते हैं। टेलिफ़ोन की घंटी बजती है।

मि. सेठ- (वहीं से चोंगा उठाकर कर्कश स्वर में) हैलो !

हैलो !..... नहीं, यह 3812 है, गलत नंबर है।

(बेजारी से चोंगा रख देते हैं।)

''**ईडियट्स ! (मूर्ख)**''

(और भी कर्कश स्वर में) ''हैलो ! हैलो !!''

कौन ? श्रीमती सरला देवी ! **(उठ बैठते हैं, चेहरे पर मृदुलता और आवाज़ में माधुर्य आ जाती है।)** माफ कीजिएगा, मैं ज़रा परेशान हूँ। सुनाइए तबीयत तो ठीक है?

(दीर्घ नि: श्वास छोड़कर) मैं भी आपकी कृपा से अच्छा हूँ।

सुनाइए आपके महिला समाज ने क्या पास किया है? मैं भी कुछ आशा रखूँ या नहीं।

''.......... मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ, अत्यन्त आभारी हूं। आप निश्चय रखें। मैं जी-जान से स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा करूँगा। महिलाओं के अधिकारों का मुझसे बेहतर रक्षक आपको वर्तमान उम्मीदवारों में कहीं नज़र नहीं आएगा।''

(पर्दा गिरता है)

अभ्यास

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दें।

1. 'अधिकार का रक्षक' एकांकी का सार लिखें।
2. 'अधिकार का रक्षक' एकांकी जन प्रतिनिधियों की कथनी और करनी में व्याप्त अन्तर स्पष्ट करता है। स्पष्ट करें।
3. अधिकार का रक्षक - एकांकी में अधिकार का रक्षक कौन है? क्या वह वास्तव में अधिकारों का रक्षक है?
4. 'अधिकार का रक्षक' एक सफल रंगमचीय एकांकी हैं। सिद्ध करें।
5. निम्नलिखित पात्रों की चारित्रिक विशेषताएं लिखें :-

   (i) सेठ, (ii) भगवती, (iii) रामलखन

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें :-

1. 'अधिकार का रक्षक' एकांकी का नाम कहाँ तक सार्थक है? स्पष्ट करें।
2. 'अधिकार का रक्षक' एक सफल सामाजिक व्यंग्य है सिद्ध करें।
3. एकांकी में व्यंग्य के माध्यम से मानवीय एवं नैतिक मूल्यों की स्थापना का प्रयास किया गया है। स्पष्ट करें।

*****

34. विष्णु प्रभाकर

(जन्म सन् 1912- निधन सन् 2009)

विष्णु प्रभाकर आधुनिक साहित्यकारों में एक प्रतिभा सम्पन्न मौलिक साहित्यकार थे। इन्होंने कहानी, उपन्यास , जीवनी, नाटक-एकांकी, निबंध तथा बाल-साहित्य आदि अनेक विधाओं में लिखा।

विष्णु प्रभाकर का जन्म 21 जून, 1912 ई. को मीरपुर जिला मुजफ्फर नगर (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। इनकी शिक्षा दीक्षा पंजाब में हुई। इन्होंने सन् 1929 में चंदूलाल एंग्लोवैदिक हाई स्कूल, हिसार से मैट्रिक की परीक्षा पास की। तत्पश्चात् नौकरी करते हुए पंजाब विश्वविद्यालय से भूषण, प्राज्ञ, विशारद, प्रभाकर आदि की हिंदी-संस्कृत परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। इन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से ही बी.ए. किया। इन्होंने सरकारी नौकरी की, जिसके खट्टे मीठे अनुभव इनकी रचनाओं में हैं।

विष्णु प्रभाकर ने स्वयं स्वीकार किया है कि उनके लेखन पर आर्य समाज और गाँधी जी का विशेष प्रभाव पड़ा। इनकी पहली कहानी 'दीवाली के दिन' 'लाहौर के हिंदी मिलाप' में प्रकाशित हुई।

इनके प्रकाशित एकांकी-संग्रह हैं-बारह एकांकी, दस बजे रात, इन्सान और अन्य एकांकी, अशोक, प्रकाश और नये एकांकी, परछाई तथा ये रेखाएं ये दायरे, मैं भी मानव हूं, तीसरा आदमी, ऊंचा पर्वत गहरा सागर, आदि।

इनके नाटक हैं-नवप्रभात, समाधि डॉक्टर, युगे युगे क्रांति, टूटते परिवेश, कुहासा और किरण, सत्ता के आर-पार, चन्द्रहार , आदि।

प्रकाशित उपन्यास हैं-ढलती रात, स्वप्नमयी, निशिकांत, तट के बंधन, दर्पण का व्यक्ति, परछाई, कोई तो, आदि।

कहानी-संग्रह प्रकाशित हैं- संघर्ष के बाद, धरती अब भी घूम रही है, सफर के साथी, खण्डित पूजा, रहमान का बेटा, ज़िंदगी के थपेड़े, साँचे और कला, पुल टूटने से पहले, मेरा वतन तथा मेरी लोक प्रिय कहानियाँ, आदि ।

'आवारा मसीहा' इनकी जीवनी एक अमर कृति है।

यात्राओं से सम्बंधित साहित्य भी प्रकाशित है। ये एक प्रतिभासम्पन्न मौलिक लेखक थे।

एकांकी लेखन में इन्हें विशेष नाम मिला है। इन्होंने अपनी रचनाओं विशेषकर एकांकियों में मानव-मूल्यों और पारिवारिक सम्बन्धों को सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। विष्णु प्रभाकर रंगमंच से जुड़े रहे। इनका सारा लेखन इनकी सादगी का परिचायक है।

पाठ-परिचय

'टूटते परिवेश' एकांकी में विष्णु प्रभाकर ने देश में आ रहे परिवर्तन को दिखाया है। ज्ञान-विज्ञान और नगरीकरण का जो प्रभाव हमारे धार्मिक, सामाजिक या नैतिक जीवन पर पड़ा है, उसे एक परिवार की जीवन स्थितियों के माध्यम से दिखाया गया है। इसमें पुरानी और आधुनिक पीढ़ी के विचारों एवं जीवनशैली में संघर्ष दिखाकर यह बताना चाहता है। कि पुरानी पीढ़ी के आदमी अपने स्वभाव को नई पीढ़ी के स्वभाव के साथ बदल नहीं पाते। परिणामतः दोनों में टकराहट होती है। विश्वजीत पुरानी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है। वह नैतिकता, सिद्धान्त, त्याग, मानवीयता, धर्म तथा चरित्र निर्माण के परिवेश में रहना चाहता है जबकि उसकी संतान इस परिवेश से मुक्ति चाहती है। लेखक ने पुरानी पीढ़ी के इस परिवेश को टूटते-बिखरते हुए दिखाया है। इसी कारण इस एकांकी का नाम टूटते परिवेश रखा है। जो कि अत्यन्त सार्थक है।

प्रस्तुत एकांकी का कथानक बड़ी तीव्र गति से विकास पाता है। इसमें प्रत्येक पात्र का चरित्र स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता इसके संवाद है। संवाद चुटीले, सुसंगठित तथा भावानुकूल है। विश्वजीत, करूणा, दीप्ति के संवादों में विशेष रूप से स्वाभाविकता है। लेखक ने पूरे एकांकी में आवश्यक रंगनिर्देश दिए हैं जो इसे एक श्रेष्ठ रंगमचीय एकांकी का स्वरूप प्रदान करते हैं।

टूटते परिवेश

पात्र

विश्वजीत	:	पुराने विचारों का व्यक्ति-गृहस्वामी
करुणा	:	विश्वजीत की धर्मपत्नी
दीपक	:	उनका बड़ा बेटा
शरत	:	उनका मंझला बेटा
विवेक	:	उनका छोटा बेटा
इन्दु	:	उनकी बड़ी बेटी
मनीषा	:	उनकी मंझली बेटी

दीप्ति	:	उनकी छोटी बेटी
अशोक	:	विश्वजीत का भाई
असद	:	लेक्चरर (मनीषा का प्रेमी)
स्थान	:	उनका निवास

एक मध्यवर्गीय परिवार का मकान, जिसमें नया पुराना सब कुछ सह–अस्तित्व के लिए विवश है। आधुनिक ड्राइंगरूम कम डाइनिंग रूम के बीच में एक पर्दा हटा रहता है। ड्राइंग रूम अपेक्षाकृत अधिक स्थान घेरे हैं। डाइनिंग रूम की टेबल नयी है। पर कुर्सियों का प्रयोग सुविधानुसार दोनों ओर होने लगता है, इसलिए वे एक जैसी नहीं है। कुछ मैली हैं, कुछ टूटी हुई। मेज़ पर किताबों, पत्रिकाओं का ढेर लगा है, जिनमें फैमिनी, ईवज़ वीकली, धर्मयुग से लेकर मदर इंडिया तक पड़ी है। कुर्सियों पर किसी पर तौलिया टंगा है, तो किसी पर कुर्ता या बुशर्ट। बाई ओर कबर्ड है। उसमें खाने–पीने के डिब्बे और ऐसी ही कुछ दूसरी चीज़ें दिखाई देती हैं।

ड्राइंगरूम में सोफा इतना पुराना नहीं है उसके कवर गन्दे हो चुके हैं। यही हाल मोढ़ों और तिपाइयों का है। बीच की तिपाई पर दो साप्ताहिक खुले पड़े हैं। अन्दर जाने के दो मार्ग है– एक सामने से, दूसरा दाहिनी ओर से। बाहर से आने का मार्ग ड्राइंगरूम में दाहिनी ओर से हैं। ड्राइंगरूम में बाई ओर कोने में एक अलमारी है, जिसमें पुस्तकें हैं लेकिन ऊपर के खाने में कुछ खिलौने भी हैं। इस ओर मेज़ है जिस पर और चीज़ों के साथ –साथ टेलीफोन भी रखा हुआ है। पर्दा उठने पर प्रकाश धीरे–धीरे सब को आलोकित करता है। व्यवस्था के प्रयत्न को और लापरवाही को। इस समय वहाँ कोई नहीं है। पृष्ठभूमि में आतिशबाज़ी की आवाज़ें उभरती हैं। बच्चों का शोर कम और अधिक होता है। कई क्षण बाद 25–26 वर्ष की एक युवती अन्दर से आती है। उसका नाम मनीषा है। सुदर्शना है, वस्त्र भी सुन्दर और रुचिपूर्ण है। वैसा ही जूड़ा है। साड़ी, सैंडल,बैग और लिपस्टिक–सबका रंग एक जैसा है। वह इस समय अत्यन्त गंभीर है। इधर–उधर देखती है। द्वार पर आकर ठिठकती है और बोल उठती है।

मनीषा : कोई नहीं है। मैं जा सकती हूँ आप पूछ सकते हैं, मैं कौन हूँ? कहाँ जा रही हूँ। यही तो इस घर की समस्या है। यही आप जानना चाहते हैं। मैं पूछती हूँ कि मैं क्या आपको इतनी नादान दिखाई देती हूँ कि अपना भला बुरा न सोच सकूँ? अपनी इच्छा से आ जा न सकूँ, जो ठीक समझूं व न कर सकूँ? जी नहीं, मैं अपना मार्ग आपको चुनने का अधिकार नहीं दे सकती, कभी नहीं दे सकती। मैं जा रही हूँ, वहीं जहाँ मैं चाहती हूँ।

(वह एकदम वहाँ से चली जाती है। एक क्षण संगीत तीव्र होता है। फिर एक अल्हड़ ट्यून बजाता हुआ एक युवक बाहर से वहाँ प्रवेश करता है। उसकी आयु लगभग 24 वर्ष है! अति आधुनिक लम्बे बाल, कलम, दाढ़ी, तंग पतलून और रंगीन कमीज़, मुख पर निर्भयता और उपेक्षा के मिले जुले भाव हैं। नाम है विवेक। सीधा डाइनिंग टेबल पर आकर कुछ ढूँढता है। एक लिफाफा उठा कर देखता है और मुस्कराता है। उसे खोलते हुए बोलता है।)

विवेक : तो उनका उत्तर आ गया है। हे भगवान क्या लिखा है उन्होंने? (तेज़ी से लिफाफा फाड़कर पत्र निकालना है। पढ़ता है। दूसरे ही क्षण चेहरे का रंग फीका पड़ जाता है।) आपके प्रार्थना-पत्र पर हमने बड़ी गंभीरता से विचार किया, लेकिन हमें खेद है कि आपकी प्रतिभा के योग्य इस समय हमारे पास कोई काम नहीं है। सदा आपके सहयोग की कामना करते हुए (एकदम चीखकर) झूठे मक्कार, आपकी प्रतिभा के योग्य। क्या सचमुच मुझ में कोई प्रतिभा है? है तो उसका उपयोग क्यों नहीं हो सकता? (दीर्घ श्वास के साथ पत्र फेंक देता है और दर्शकों की ओर देखता है) मुझमें यदि कुछ प्रतिभा है तो बस अर्ज़ियाँ लिखने की। आज का युवक अर्ज़ियाँ लिखते-लिखते मशीन बन गया है। (फिर तेज़ होकर) लेकिन मैं नहीं बनूँगा मशीन। मैं नहीं लिखूँगा अर्ज़ियाँ।

(जल्दी-जल्दी बहुत से कागज़ उठाकर इधर-उधर बिखेर देता है। उसी समय अन्दर से एक युवती वहाँ प्रवेश करती है। आयु उसकी 20 वर्ष की होगी। तजेब का कुर्ता, उस पर आधी बाँह का लाल स्वेटर, पीली बैलबौटम, पैरों में पाजेब, मुक्त केश, बिल्कुल बीच में से बंट कर चेहरे को ढके हुए हैं। इनके बीच में से दो बड़ी -बड़ी आँखें चमकती हैं। हाथ में कंघा लिये बालों को इधर-उधर बिखेरती है और मुस्कराती है।)

दीप्ति : (दर्शकों से) लीजिए, विवेक भैया सदा की तरह अर्ज़ियों से नाराज़ हैं। (विवेक के पास आकर कंधे पर हाथ रखती है।) विवेक भैया तुम्हारी अर्ज़ियाँ कभी खत्म होंगी या नहीं? पता है, पापा ने कहाँ जाने के लिए कहा था।

विवेक : मुझे बस इतना ही पता है कि पापा ने तुम्हें बाल बिखेरने के लिए मना किया था।

दीप्ति : आप मेरी चिन्ता न कीजिए। पापा ने आपसे कहीं जाने के लिए कहा था।

विवेक : कहा होगा तुम्हें कहीं जाने के लिए।

दीप्ति : मुझे नहीं तुम्हें।

विवेक : (तेज़ी से उठकर) तुम्हें।

दीप्ति : (चिढ़ा कर) तुम्हें, तुम्हें। अच्छा बाबा, न तुम्हें कहा था न मुझे कहा था, हमें कहा था।

विवेक : यह हुई बात, हमें कहा था, पर सोचने की बात यह है कि क्या हमें पापा का कहा मानना ही होगा।

दीप्ति : बुद्धू कहीं के। यही तो हमारे इन्ट्रेस्ट की बात है। आज दीवाली है और जीजी, भैया, भाभी सभी दीवाली नाइट मनाने के लिए जाएंगे। हो सकता है हमें भी निमन्त्रण मिल जाये।

विवेक : (चुटकी बजा कर) अब समझा। सब लोग तुम्हारी तारीफ क्यों करते हैं? चलो, चलो, शरद भैया और इन्दु जीजी के पास चलते हैं। लगे हाथ एक-एक अर्जी उन्हें भी देता जाऊँगा।

दीप्ति : अर्जी, अर्ज़ी, पहले मुझे धन्यवाद तो दो कि मैंने तुम्हें अक्ल दी।

विवेक : (व्यंग्य से हाथ ज़ोड़कर) आपको अनेकानेक धन्यवाद । कहो तो धन्यवादों की एक अर्ज़ी आपको पेश कर दूँ।

(दोनों ज़ोर से हँसते हैं)

दीप्ति : अच्छा, अच्छा अब चलो। ममा, पापा के आने से पहले ही निकल चलें। नहीं तो आदेशों की एक और डोज़ मिल सकती है।

विवेक : चलो, चलो।

(दोनों हँसते-हँसते जाते हैं। एक क्षण बाद गृहस्वामी विश्वजीत बाहर से वहाँ प्रवेश करते हैं। आयु 60-70 के बीच कहीं है। ढीला कुर्ता, तंग पायज़ामा, सिर पर गांधी टोपी मुख पर गहरी हताशा। इधर-उधर देखते हुए और बुदबुदाते हुए अन्तर चले जाते हैं। एक

क्षण बाद फिर लौट कर कमरे पर नज़र डालते हैं और दर्शकों से कहते हैं।)

विश्वजीत : लो देख लो। वही सन्नाटा। वही अर्ज़ियों का ढेर, वही बदइन्तज़ामी, जैसे इस घर में इन्सान नहीं, भूत रहते हैं दीवाली का दिन है, लेकिन यहाँ मनहूसियत ही बिखरी हुई है। वे भी तो नहीं है घर में। गई होगीं कहीं, पड़ोस में बतियाने और यह विवेक है, फिर अर्ज़ियां फाड़कर चारों ओर बिखेर गया है। यह भी तों नहीं हुआ रद्दी की टोकरी में ही डाल दे। (उठा कर रद्दी की टोकरी में डालता है) कुछ काम करता तो मेरी सहायता भी होती। (दर्शकों की ओर) क्या होती सहायता? बड़े भी तो कमाते हैं। पास तक नहीं फटकते। कैसा वक्त आ गया है? एक हमारा जमाना था, कितना प्यार, कितना मेल, एक कमाता दस खाते। हरेक एक दूसरे से जुड़ने की कोशिश करता था और अब सब कुछ फट रहा है। सब एक दूसरे से भागते हैं। (इसी तरह से बोलता हुआ, अर्ज़ियाँ और मैगज़ीनों को इधर-उधर करता है। फिर अन्दर जाकर डिब्बें में से कुछ निकालता है।) हे भगवान! अब जब तक कोई नहीं आ जाता, मुझे यहीं इन्तज़ार करनी पड़ेगी। अपने घर में अपनों की इन्तजार।

(निराशा और व्यंग्य मिश्रित हँसी-हँसता है। प्रकाश धीमा पड़ता है। एक क्षण के लिए अन्धकार छा जाता है। फिर प्रकाशित होने पर विश्वजीत उसी तरह बैठे हुए 'मदर इंडिया' पढ़ने में व्यस्त है। तभी अन्दर से गृहस्वामिनी करुणा पुकारती हुई आती है। आयु 55 से पार हो चुकी है। बाल खिचड़ी हैं, साधारण पर स्वच्छ धोती पहने हुए है। नाक-नक्श में आकर्षण हैं, लेकिन अतिशय व्यस्तता के कारण सारे व्यक्तित्व पर रूखेपन की छाप है।

करुणा : मैं पूछती हूँ, कब होगी पूजा? तंग आ गई इन्तज़ार करते-करते।

विश्वजीत : (सहसा सिर उठाकर) क्या कहा? ओह पूजा, थोड़ा और ठहरों। आते ही होंगे सभी लोग।

करुणा : मैं अब और नहीं ठहर सकती। पिछले तीन घंटे से आप यही कह रहे हैं। मैं कहती हूँ कोई नहीं आयेगा।

विश्वजीत : कोई कैसे नहीं आयेगा। घर के लोग ही न हों तो पूजा का क्या मतलब। यही तो मौके हैं जब मिल बैठ पाते हैं।

करुणा : 'मिलकर बैठ पाते हैं' नहीं 'बैठ पाते थे' कहिये। अब कोई नहीं बैठ सकता। फुर्सत किसे हैं?

विश्वजीत : (उद्विग्न होकर) फुर्सत! बचपन से मैंने चालीस-चालीस लोगों के बीच में बैठकर पूजा की है। पुरोहित जी का ज़ोर-ज़ोर से वह मन्त्र पाठ करना मुझे आज भी याद है। याद है बालकों का उल्लास-भरा कोलाहल, जवानी की चुहलबाज़ी, बड़े-बूढ़ों की सुख-दुःख की बातें, सब का अदब से सिर ढककर टीका लगवाना। जब हाथ में लड्डुओं का बड़ा थाल लेकर प्रसाद बाँटती हुई माँ सबके बीच में घूमती थी, तब उनके चेहरे पर का तेज़ देखते ही बनता था। जैसे साक्षात् भारत माता हो। (बोलते-बोलते जैसे दूर खो जाता है।)

करुणा : मैं कहती हूँ, भारत माता की चिन्ता छोड़कर तुम अपनी औलाद की चिन्ता करो। कोई रहा तुम्हारे कहने में। एक-एक करके सभी चले जा रहे हैं।

विश्वजीत : दया करके तुम अब अन्दर चली जाओ। मैं एक बार फिर शरत को देखने जाता हूँ। अशोक के पास विवेक गया है और दीप्ति को मैंने इन्दु के पास भेजा है।

करुणा : और मनीषा को किसके पास भेजा है?

विश्वजीत : उसे मैंने कहीं नहीं भेजा! मेरे भेजे कहीं जाती है? वह गई होगी कहीं अपनी इच्छा से।

करुणा : इसीलिए तो कहती हूँ, अपनी औलाद तो संभाले-संभलती नहीं। बात करते हो भारत माता की। आशा करते हो पूजा के लिए सब तुम्हारे घर आयें। मैं कहती हूँ, कोई नहीं आयेगा। तुम्हारी अपनी औलाद तक नहीं आयेगी।

विश्वजीत : सब आयेंगे। सदा आते रहे हैं तो अब क्यों नहीं आयेंगे?

करुणा : मैं पूछती हूँ, पिछले साल कितने आये थे?

विश्वजीत : पिछले साल? आये क्यों नहीं थे? हाँ, कौन-कौन आये थे भला?

करुणा : क्यों बेकार याद करने की कोशिश करते हो? चार भाइयों में बस अशोक आया था। वह भी अकेला और हमारे अपने बेटा-बेटी भी नहीं आयेंगे।

विश्वजीत : कैसे नहीं आयेंगे? (बाहर की ओर देखकर मुस्कराता है) वह देखो, वे आ रहे हैं।

करुणा : (उधर ही देखकर) ये तो दीप्ति और विवेक हैं। सदा की तरह दोनों लड़ते हुए आ रहे हैं और हाँ, विवेक को समझा देना कि वह अपनी अर्ज़ियाँ संभालकर रखा करे। वह उनके सहारे जी सकता है, लेकिन मैं उन्हें नहीं संभाल सकती। यह घर है कि अर्जीखाना। अच्छा, मैं चली। पूजा करनी हो, तो जल्दी आ जाना।

(जाती है। विवेक और दीप्ति झगड़ते हुए प्रवेश करते हैं।)

विवेक : कंघा बाल संवारने के लिए रखा जाता है कि बिगाड़ने के लिए? कुछ पता हैं?

दीप्ति : सब पता है।

विवेक : क्या पता है?

दीप्ति : यही कि तुम सब बुर्जुआई भाषा बोलते हो।

विवेक : संवारना बुर्जुआई भाषा है?

दीप्ति : और नहीं तो क्या? यह शैम्पू इस्तेमाल कीजिये, वह तेल डालिए, ऐसा जूड़ा बनाइयें, वैसा जूड़ा मत बनाइये, बंगाली जूड़ा, पिरामेडी जूड़ा अजन्ता शैली का जूड़ा, दक्षिण शैली का चोटी, पोनीटेल, बाब हेयर, कलॉज़कट, अरे बाबा हम जैसा चाहेंगे, तुम कौन हो बीच आने वाले? हमें ऐसा ही अच्छा लगता है।

(बातें करते-करते विश्वजीत के पास आ जाते हैं।)

विश्वजीत : आ गये तुम दोनों? पूछता हूँ तुम दोनों लड़ते ही रहोगे, कुछ करोगे भी। तुम से कहता हूं विवेक, यह घर है कि अर्ज़ीखाना? देखो तो ज़रा, सारा कमरा तुम्हारी अधलिखी और अधफटी अर्ज़ियों से भरा पड़ा है।

दीप्ति : देख लो पापा, यह विवेक भैया खुद तो इतनी गंदगी फैलाते हैं और हमको उपदेश देते हैं बाल संवारने का।

विवेक : पापा, आप ही बताइये, कंघे से बाल संवारे जाते हैं या बिखेरे जाते हैं?

दीप्ति : बुद्धू! आजकल बिखेरना ही संवारना है।

विश्वजीत : चुप रहो, मैं कहता हूँ, मैंने तुम्हें कहाँ भेजा था?

दीप्ति : इन्दु जीजी के पास। वे और जीजा जी दोनों दीवाली नाइट मनाने जा रहे हैं, ज़ाहिर है कि पूजा पर नहीं आयेंगे।

विश्वजीत : नहीं आयेंगे, क्यों नहीं आयेंगे? और मनीषा कहाँ हैं?

दीप्ति : मुझे क्या मालूम कहाँ हैं? गई होगी किसी मित्र के साथ दीवाली नाइट मनाने वे भी।

विश्वजीत : क्या हो गया है दुनिया को? सब अकेले-अकेले अपने सिर लिए ही जीना चाहते हैं! दूसरे की किसी को चिन्ता ही नहीं रह गई। एक हमारा जमाना था कि बड़ों की इज़ाज़त के बिना कुछ कर ही न सकते थे।

विवेक : पापा ! आपका जमाना कभी का बीत गया। अब बीते जीवन की धड़कनें सुनने से अच्छा है कि वर्तमान की साँसों की रक्षा की जाये.

दीप्ति : लेकिन कुछ लोग हैं जो बीते इतिहास में ही रहना पसन्द करते हैं।

विश्वजीत : बन्द करो यह अपनी किताबी भाषा। हमें भी कुछ पता है। जो बीत जाता है, इतिहास बन जाता है, वही अपना होता है। उसको भूलकर वर्तमान की रक्षा कैसे की जा सकती है। लेकिन मैं पूछता हूँ, तुम अब तक थे कहाँ?

विवेक : अशोक चाचा के घर गया था। पूजा के बाद ही वे आ सकेंगे और पूजा होने में अभी वहाँ काफी देर थी। दीपक भैया दीवाली की शुभकामनाएँ देने के लिए मुख्यमंत्री के घर गये हुए थे।

दीप्ति : पापा, जब से दीपक भैया ने अपना दल छोड़कर मुख्यमंत्री के दल का साथ दिया है तब से उनके मंत्री बनने की बड़ी चर्चा है। शायद आज रात को ही घोषणा हो जाये।

विवेक : हो जाये तो अच्छा ही है। मैं अब तक सौ अर्ज़ियाँ भेज चुका हूँ एक सौ एकवीं अर्ज़ी उन्हें दूँगा। इस बार मेरा काम अवश्य हो जायेगा।

विश्वजीत : लानत है ऐसे काम होने पर। भले बुरे तरीकों का कुछ विचार नहीं रहा। गांधी जी ने कहा था......

विवेक : गांधी जी ने कुछ कहा था, वह सब लिखकर अपने कमरे में टांग रखा है। बड़े आदमियों का कहा हुआ टांग देने के लिए ही तो होता है। यह देखियें, यह टंगे हैं, गांधी जी के बताये हुए भारतीय समाज के अवगुण! 'सिद्धान्तहीन राजनीति', 'काम बिना धन', 'अन्तर्रात्मा बिना आनन्द', 'चरित्र बिना ज्ञान', 'नैतिकताहीन व्यापार', 'मानवीयता रहित विज्ञान' और 'त्याग बिना पूजा'।

(बोलने के साथ-साथ उन पर प्रकाश पड़ता रहता है।)

दीप्ति : यह सब बुर्जुआ भाषा है। इस का युग अब बीत गया । भला राजनीति का सिद्धांतों से, धन का परिश्रम से, आनन्द का आत्मा से, ज्ञान का चरित्र से, व्यापार का नैतिकता से, विज्ञान का मानवीयता से और पूजा का त्याग से क्या सम्बन्ध है?

(दोनों हँसते हैं।)

विश्वजीत : (चीखकर) चुप रहो। युग बीत जाता है, नैतिकता हमेशा जीवित रहती है।

विवेक : लेकिन उसके अर्थ बदल जाते हैं। जैसे दीप्ति की दृष्टि में संवरने के अर्थ बदल गये।

विश्वजीत : तुम लोगों की भाषा मेरी समझ में नहीं आती।

विवेक : और आपकी भाषा हमारी समझ में नहीं आती। लेकिन भाषा की स्वतन्त्र सत्ता है कहाँ? वह तो हमारी मान्यताओं की प्रतिध्वनि का आकार मात्र है। आप कहते हैं ऐसा होना चाहिए, हम कहते हैं ऐसा होता है।

विश्वजीत : ओह हो, यह बहस बन्द करो। शरत कहाँ है, वह अब तक क्यों नहीं आया?

दीप्ति : शरत भैया भी भाभी के साथ दीवाली मनाने के लिए होटल पैनोरमा गये हैं। पापा आप जल्दी से पूजा कर दीजिए! हम भी वहाँ जायेंगे।

विश्वजीत : तुम वहाँ नहीं जाओगे?

विवेक : क्यों नहीं जायेंगे?

विश्वजीत : क्योंकि मैं कहता हूँ। आखिर मैं तुम्हारा पिता हूँ।

विवेक	:	आप हमारे पिता हैं, इसमें कोई संदेह नहीं! लेकिन इसलिए ही आप हमें नहीं रोक रहे हैं। आप हमें इसलिए रोक रहे हैं कि आप हमें पैसे देते हैं। पिता तो आप शरत, इन्दु, मनीषा सभी के हैं। उन्हें रोक सके आप? मैं आप पर आश्रित हूँ, लेकिन गुलाम नहीं।
विश्वजीत	:	(काँप कर) तुझे, रत्ती भर शर्म नहीं! तुझे मालूम है कि तू क्या कह रहा है?
विवेक	:	जो है, वही कर रहा हूँ। जो होना चाहिए वह नहीं कर रहा। दीपक भैया को मंत्री बन जाने दो।
विश्वजीत	:	दीपक, दीपक, दीपक। उसने जो कुछ किया है वह अनैतिक है। मैं तुम्हें अनैतिकता के रास्ते पर नहीं चलने दूँगा।
विवेक	:	फिर वही बुर्जुआई भाषा। जीवन पर नैतिकता की दुहाई देने के अतिरिक्त आपने और किया ही क्या है? आपसे वे लोग कहीं अच्छे हैं जो मात्र सफलता को अपना लक्ष्य मानते हैं।
विश्वजीत	:	मैं कहता हूँ, हद है। उस दल बदलू से तुम मेरी तुलना करते हो। तुम उससे नौकरी के लिए कहोगे ?
विवेक	:	दिन भर बैठे-बैठे अखबारों में इश्तहार देखना, फिर अर्ज़ियाँ भेजना, उससे तो दीपक भैया के पास जाना कहीं अच्छा हैं। काम बनता हो तो किसी के भी पास जाने में क्या बुराई है।

(तेज़ी से करुणा का प्रवेश।)

करुणा	:	बहस, बहस, बहस। मैं कब तक इन्तज़ार करूँगी। तुम लोग आते क्यों नहीं?
दीप्ति	:	हाँ, हाँ चलो पापा, जल्दी से पूजा कर लो।
विवेक	:	पूजा में देर कितनी लगती है-पाँच मिनट। पंडित जी तो आये नहीं। बस आप तीन बार गायत्री मंत्र पढ़ लीजिए।
दीप्ति	:	गायत्री मंत्र ही पढ़ना है तो वह यहाँ भी पढ़ा जा सकता है। फिर पूजा की ज़रूरत ही क्या है?
करुणा	:	पूजा की ज़रूरत है। वह हमेशा से होती आई है। वर्ष में एक बार लक्ष्मी जी सबके घर आती है।
विवेक	:	(व्यंग्य से हँसता है) तो क्यों न मैं आज एक अर्ज़ी-लिखकर लक्ष्मी जी को ही दे दूँ।

विश्वजीत : चोप्प! देवी-देवताओं का मज़ाक उड़ाता है। तभी तो गांधी जी ने कहा था कि ज्ञान के साथ चरित्र की भी ज़रूरत होती है।

विवेक : चरित्र, चरित्र, चरित्र (तीव्र होकर) आपने चरित्रवान होकर हमें क्या दिया, पापा आपके रास्ते पर चल कर बस मैं अर्ज़ियाँ लिखना ही सीख सका हूँ जिसने आपका रास्ता छोड़ा, उसने ही सफलता प्राप्त की। विमल भैया कनाडा में ऐश करते हैं। शरत भैया अपना जीवन जी रहे हैं। यहाँ तक कि इन्दु जीजी भी अपना सुखी जीवन बिता रही है। और जिन दीपक भैया को आप चरित्रहीन कहते हैं, वे मंत्री बनने वाले हैं, तब आपके चरित्र को लेकर मैं उसे ओढूं या बिछाऊं।

करुणा : मैं कहती हूँ, तुम लोग चलोगे भी या नहीं।

दीप्ति : (साँस खींच कर) चलो भैया! लकीर पीटनी है, पीट लो, जब तक पीटी जा सके।

विश्वजीत : क्या दिन देखने पड़े हैं। चालीस-चालीस व्यक्तियों के बीच में बैठकर पूरे विधि विधान के साथ घंटा-घंटा भर पूजा की है, सब समाप्त हो गयी। बाकी रह गये दो असन्तुष्ट बच्चे और एक गायत्री मंत्र।

करुणा : मैं कहती हूँ आज इस समय यह मनीषा भी कहाँ चली गई।

दीप्ति : चिन्ता न करो, मम्मी। मनीषा दीदी बालिग है चली गई होगी किसी के साथ दीवाली नाइट मनाने।

करुणा : उसके लिये हम कुछ नहीं रहे। घर कुछ नहीं रहा। यह 'किसी' ही सब कुछ हो गया। सहने की भी हद होती है।

विवेक : सहने की कोई हद नहीं होती। मनीषा आज आप पर आश्रित नहीं है।

विश्वजीत : आश्रित न होने पर इस घर की सन्तान तो है। हम क्या अपने पिता पर आश्रित थे? परन्तु क्या मजाल उनके हुक्म के बिना पैर घर के बाहर भी रख लें।

दीप्ति : पापा, तब लोग न तो चाँद पर पहुँचे थे, न टेरालीन पहनते थे, चुइंगम भी उस जमाने में कहाँ होगा? यह न्यूक्लिर टेक्नालॉजी की ऐज है, पापा। कम्प्यूटर मनुष्य से अधिक कुशलता से काम करता है। 'जीन' तक का निर्माण कर लिया है। (सहसा पुकारते हुए

बाहर से अशोक का प्रवेश। आयु लगभग 60 की होगी। प्रायः विश्वजीत जैसे की कपड़े पहने हुए हैं। चेहरे पर भोलापन है।)

अशोक : भैया कहाँ हो भैया? आपको बधाई हो। आपका दीपक मंत्री बन गया। (सब सहसा उत्तेजित हो उठते हैं।)

विवेक : क्या चाचा जी?

दीप्ति : मैं अभी जाकर भैया को बधाई देती हूँ। वैसे मंत्री बनना है तो बुर्जुआपन, पर भैया ने कुछ करके दिखाया तो।

करुणा : मुझे बहुत खुशी है, बहुत खुशी। दिन भर बहस करने, अर्जियाँ लिखने और हिप्पी बनने से यह कहीं अच्छा काम है।

विश्वजीत : हाँ उससे तो अच्छा ही है। मुझे भी बहुत खुशी। वह कहाँ है? उसे यहाँ आना चाहिए था?

अशोक : अभी तो वह घर भी नहीं आया। मैंने अकेले ही पूजा की है। बिल्कुल अकेले। (सहसा दीप्ति को देखकर) अरे मैंने तो देखा ही नहीं था। दीप्ति बेटी, तू तो सचमुच हिप्पन बन गई है। तजेब का सफेद कुर्त्ता, आधी बाँह का लाल स्वेटर, काला तंग पायज़ामा, पैरों में पायजेब, कानों में लम्बे-लम्बे बाले और यह बिखरे हुए बाल।

विवेक : चाचा जी, आप जिसे बिखेरना कहते हैं, उसका अर्थ इनकी भाषा में संवारना है। और यह तंग पायज़ामा नहीं है, बैलबोटम है। लेकिन छोड़िये इस बात को, मैंने अभी-अभी 101 वीं अर्जी लिखकर तैयार की है। उसे आप अपनी सिफारिश के साथ दीपक भैया को दे दीजिए। आप तो जानते ही हैं कि बिना सिफ़ारिश के आजकल कुछ होता ही नहीं। इस बार मुझे नौकरी मिल जानी चाहिए।

अशोक : नौकरी मिलेगी, ज़रूर मिलेगी। अब नहीं मिलेगी तो कब मिलेगी। लेकिन बेटा ! शोर नहीं मचाना चाहिए। काम करने का एक तरीका होता है।

विश्वजीत : वही तो मैं कहता हूं, लेकिन हर बार ये मुझे बुजुर्आ कहकर चुप करा देते हैं।

करुणा : लेकिन मैं कहती हूँ, आप लोगों को मनीषा का कुछ भी ध्यान नहीं है। वह अभी तक नहीं आई। अगर वह इन्दु के साथ गयी है तो उसे सूचना देनी चाहिए थी। यह औलाद तो बस .... (फोन की घंटी बजती है।)

विवेक : मम्मी, आपने कहा और सूचना आ गई। (मेज़ के पास जाकर रिसीवर उठाता है।) हैलो, विवेक स्पीकिंग। ओह आप है। आपके लिए तो दीदी हमने कुओं में बांस डलवा दिये। आप बोल कहाँ से रही हैं? और आप की आवाज़ में यह इतनी गंभीरता कैसी है? क्या कहा, पापा को फोन दूँ। तो आप मुझे नहीं बतायेंगी। अच्छी बात है, हम देखेंगे। अच्छा बाबा नाराज़ न हो, अभी देता हूं। (विश्वजीत पास आकर रिसीवर ले लेते हैं।)

विश्वजीत : हैलो ! कौन? मनीषा बेटो हाँ, हाँ मैं विश्वजीत बोल रहा हूँ। तुम कहाँ हो? पूजा के लिए हम तुम्हारी राह देख रहे हैं। हाँ, हाँ कहो। क्या? (सहसा मुख विवरण हो जाता है। क्या कहा? फिर तो कहना। सच तुम घर नहीं आओगी? नहीं, नहीं, यह सब झूठ है मैं...... मैं कहता हूँ .... (रिसीवर हाथ से छूट कर गिर पड़ता है। वह धम से सोफे पर गिर जाते हैं। पृष्ठभूमि में तीव्र संगीत उभरता है। और सब उन्हें घेर लेते हैं।

करुणा : क्या हुआ? क्या कहा मनीषा ने? बोलते क्यों नहीं? मेरी ओर ऐसे क्या देख रहे हो?

विश्वजीत : (जड़वत) मनीषा ने शादी कर ली है।

करुणा : शादी कर ली? किससे?

विश्वजीत : तुम जानती हो।

करुणा : (खोई, खोई) तो मनीषा ने असद से शादी कर ली।

दीप्ति : (उल्लास से) मैं बहुत खुश हूँ। दीदी ज़िन्दाबाद, मनीषा दीदी ज़िन्दाबाद । मैं अभी जाकर दीदी को बधाई देती हूँ।

अशोक : चुप रहो। मैं यह जानना चाहता हूँ, यह असद है कौन?

करुणा : लैक्चरार है। उसी कॉलेज में पढ़ाता है, जिसमें मनीषा पढ़ाती है।

अशोक : आपको पता था भाभी, कि मनीषा उससे शादी करना चाहती है?

करुणा : जी हाँ उसने अपना निर्णय, बता दिया था। हमने बहुत समझाया, लेकिन वह अपना विचार बदलने के लिए किसी भी प्रकार तैयार नहीं हुई।

विवेक : बदलने की ज़रूरत क्या थी? उसने एक आदमी से शादी की है। उसका व्यक्तित्व है। वह स्वस्थ, सुन्दर, प्रतिभाशाली है, स्वभाव

का मधुर है। और खूब कमाता है। एक हिन्दुस्तानी अपनी बेटी के लिए इससे अधिक और किस बात की आशा कर सकता है?

दीप्ति : और वह मुसलमान भी कैसा है? नमाज़ तक नहीं पढ़ता। देश के नेता कहते नहीं थकते कि आने वाली संतति को भेद की ये दीवारें तोड़ डालनी चाहिए। लेकिन जब हम उन दीवारों को तोड़ते हैं तो यही नेता पिता बन कर हमें रोकते हैं। नेता और पिता। एक ही आदमी के दो मुखौटे है।

विश्वजीत : (जोर) चुप हो जाओ। तुम दोनों बहुत बोलते हो।

अशोक : क्या आप अब भी इस विवाह को रुकवाना चाहते हैं? दीपक को कहने से शायद कुछ हो सके। वह आखिर मन्त्री है।

करुणा : नहीं अब कुछ करने की ज़रूरत नहीं ! वह बालिग है और कमाती है।

विश्वजीत : हाँ, अब कुछ नहीं हो सकता। मैंने मनीषा को खो दिया है।

करुणा : उसे अधिकार था, उसने अपने लिए रास्ता चुन लिया।

दीप्ति : पापा, मैं पूछती हूँ आप पूजा करेंगे कि नहीं?

विवेक : क्यों नहीं करेंगे, हर साल करते आये हैं, अब भी करेंगे। स्वभाव जो बन गया है। मजबूरी है। लेकिन मैं तो गायत्री मंत्र का शुद्ध उच्चारण ही भूल गया। कोई अर्थ भी नहीं रहा है याद करने का निरा ढोंग ! जहाँ अर्थ न हो, वहाँ ढोंग ही को ढोना पड़ता है।

विश्वजीत : (चीखकर) चुप रहो।

(पृष्ठभूमि में संगीत उभरता है और मंच पर सहसा अंधकार छा जाता है।)(पर्दा भी गिर सकता है।) फिर जब प्रकाश होता है (या पर्दा उठता है) तो मंच की स्थिति प्राय: पहले अंक जैसी ही है। विश्वजीत और करुणा दोनों सोफे पर बैठे हैं। विश्वजीत बहुत धीरे-धीरे जैसे अपने से ही बातें करते हों, बोलते हैं।

विश्वजीत : कैसा है यह मन? बराबर कुरेदना लगी रहती है। कभी सोचता हूँ, दूर कनाडा में बैठा हुआ विमल कैसा? उसका काम तो ठीक चल रहा है? कभी इन्दु के बारे में सोचता हूं उसकी गृहस्थी में सब सुखी होंगे। फिर शरत का ध्यान आ जाता है। सोचता हूं, वह अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखता है कि नहीं। उसकी पत्नी उससे पूरी तरह सहयोग करती है कि नहीं। मनीषा से मैं अब भी नाराज़ हूं। मैं कभी

नहीं चाहता था कि वह असद से शादी करे। फिर भी मेरा मन सबसे अधिक उसी के लिए चिन्तित है। उस अजनबी घर में वह कैसा अनुभव कर रही होगी। वह दु:खी तो नहीं? यही तो मैं चाहता हूं कि सब सुखी रहें। मैं अपनी सन्तान को सुखी देखना चाहता हूँ मन से सोचता हूँ। पर सन्तान है कि इसे मजबूरी कहती है, स्वार्थ कहती है।

करुणा : ठीक ही तो कहती है। तुमने आखिर उनके लिए किया क्या? प्यार और पैसा ही तो सब कुछ नहीं। उनके भविष्य की कभी तुमने चिन्ता की? कभी बने उनके मित्र? अब जब वे अपना-अपना मार्ग चुन रहे हैं तो तुम्हें यह खटकता है?

विश्वजीत : हाँ, यह तो सही है कि मैं उनका भविष्य बनाने के लिए कुछ नहीं कर पाया, लेकिन मैं उन्हें मार्ग चुनने से रोकता कहाँ हूँ? मेरी चिन्ता तो यही है कि मार्ग बस ठीक हो। अब देखो, यह दीप्ति है। अल्हड़ उम्र की लड़की है। ज़रा भी तो नहीं सुनती। इसकी पोशाक, इसका व्यवहार देखकर मुझे तो डर लगता है। किसी दिन कहीं कुछ हो न जाये और यह विवेक तो ....।

(सहसा दीप्ति और विवेक का तेज़ी से बहस करते हुए प्रवेश।)

दीप्ति : मैं कहाँ जाती हूँ? कहाँ नहीं जाती? तुम्हें इससे मतलब? तुम अपनी अर्ज़ियों की संख्या याद रखो। तुमने चुपचाप विदेश जाने का प्रोग्राम नहीं बना लिया है।

(बोलते-बोलते दोनों सोफे के पास आ जाते हैं।)

करुणा : मैं कहती हूँ यह क्या बात है? तुम दोनों हमेशा बहस करते रहते हो। कहाँ से आ रहे हो तुम? दीपक ने क्या कहा, विवेक?

विवेक : मैं दीपक भैया के पास नहीं जाऊँगा।

करुणा : क्यों नहीं जाओगे?

विवेक : वे अच्छी तरह बातें नही ंकरते। चाचा जी की बात भी नहीं सुनते। उन्हें बस इसी बात की चिन्ता है कि वे कितने दिन कुर्सी पर रहते हैं?

विश्वजीत : तो यूं क्यों नहीं कहते कि तुम्हारी 101 वीं अर्ज़ी भी बेकार हो गयी।

विवेक : हो जाने दो। मैं अब अर्ज़ियाँ नहीं लिखूँगा।

करुणा	:	तो क्या करोगे?
विवेक	:	मैं विद्रोह करूँगा। मैं उनका साथ दूँगा जो सब कुछ विध्वंस करना चाहते हैं।
विश्वजीत		(व्यंग्य से) ध्वंस, विद्रोह, क्रान्ति ! खूब ये शब्द याद कर लिये हैं। अर्थ भी समझे कभी इसके। क्रान्ति का अर्थ ध्वंस करना नहीं है। निर्माण करना और उसके मूल में हैं कर्त्तव्य। देश और समाज के प्रति तुम्हारे कुछ कर्त्तव्य हैं। उनको भूलकर तुम क्रान्ति का स्वप्न ले सकते हो क्रान्ति कर नहीं सकते।
विवेक	:	पापा, कर्त्तव्य पर आपके भाषण बहुत बार सुन चुका हूँ। कर्त्तव्य की दुहाई दे देकर आप लोगों ने सदा अपना स्वार्थ साधा है। संयुक्त परिवार में बाँधे रखा है। अब भी आप चाहते हैं कि हम आपकी बैसाखी बने रहें। नहीं, पापा! बैसाखियों का युग अब बीत गया।
विश्वजीत	:	दो किताबें क्या पढ़ ली है, कि जो मुँह में आता है, बक देते हो। कर्त्तव्य को बैसाखी कहते हो! ऐं!
विवेक	:	कर्त्तव्य के जो अर्थ आप हमें समझना चाहते हैं, उसका अर्थ तो बैसाखी ही है, लेकिन मैं नहीं बनूँगा किसी की बैसाखी। टूट जाऊँगा, पर उपदेश नहीं सुनूँगा। सब कुछ तोड़कर रख दूँगा। जला दूँगा.......।
दीप्ति	:	शाबाश विवेक भैया! शाबाश, जिन्दाबाद !
करुणा	:	चुप रहो। बैठे-बैठे सोचना और फिर ज़ोर-ज़ोर से बहस करना और कुछ नहीं रह गया है करने को। कल तक दीपक भैया के गुण गा रहे थे। आज बात तक नहीं करना चाहते।
दीप्ति	:	आपको मालूम नहीं, अम्मा। उनकी पन्द्रह दिन की हुकूमत अब समाप्त होने वाली है। उनकी सरकार का पतन निश्चित है।
विश्वजीत	:	सच ! मैं कहता न था कि ये सरकारें अनैतिक है ....
विवेक	:	अनैतिक, अनैतिक ! ये ही अगर मुझे नौकरी दिला देते तब भी क्या आप उन्हें अनैतिक कहते?
विश्वजीत	:	मैंने कहा नहीं था।
विवेक	:	परन्तु अशोक चाचा और दीपक भैया के सामने नहीं। मेरे अर्ज़ी देने पर भी नहीं। आज जो सफल है, उनका सब कुछ नैतिक है। इसलिए मैंने भी अब सफलता प्राप्त करने का निश्चय किया है। मैं पाँच साल के लिए विश्व भ्रमण पर जा रहा हूं।

विश्वजीत : विश्व भ्रमण? वह किस लिए?

विवेक : आज के बदलते हुए संदर्भों में नैतिकता क्या है? कर्त्तव्य और अधिकार की सही परिभाषा क्या हो सकती है? क्या आज भी पारस्परिक नैतिकता और सांसारिक जीवन मूल्यों से कर्त्तव्य को जोड़े रखा जा सकता है? यह प्रश्न में घर-घर जाकर दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति से पूछूंगा। फिर एक पुस्तक लिखूँगा और आपकी भाषा उधार ले कर कहूँ तो ईश्वर ने चाहा तो कुछ कर भी सकूँगा।

करुणा : करने को क्या इस देश में कुछ नहीं है ? बाहर जाकर ही सब कुछ हो सकता है?

विवेक : हाँ मम्मी, बाहर जाकर बहुत कुछ हो सकता है। अपने विमल भैया को ही देखो.....

करुणा : मैं तुझसे बहस नहीं कर सकती। इन बातों को समझने लायक बुद्धि मेरे पास नहीं है। लेकिन ....

विवेक : समझने को इसमें क्या है, मम्मी। मैं इस घर की घुटन और सीलन से मुक्ति पाना चाहता हूँ। इस घर में एक ऐसी बदबू है। जो दिमाग को सुन्न कर देती हैं, लेकिन मैं अपना दिमाग सुन्न नहीं करना चाहता। मैं यन्त्रणा से छटपटाना नहीं चाहता। मैं उससे मुक्ति चाहता हूँ।

करुणा : यह तेरा अन्तिम निर्णय है?

विवेक : आज जब वर्तमान प्रतिपल अतीत बनता जा रहा है, तब अन्तिम क्या है, यह कहना कठिन है। परन्तु यह निश्चित है कि परसों बहुत सवेरे मैं अपनी इस महायात्रा पर निकल पड़ूँगा।

विश्वजीत : लेकिन पैसा कहाँ से आएगा?

विवेक : पापा, मैं जिस दल के साथ जा रहा हूँ वह एक भी पैसा नहीं ले जा रहा। पैसा व्यक्ति के सम्बन्ध को कृत्रिम बनाता है। नैतिक अनैतिक के अर्थ में सोचने को विवश करता है। इसलिए आपको कुछ भी नहीं करना है। यहाँ तक कि मम्मी तुम्हें आँसू भी नहीं बहाने हैं। अच्छा, कपड़े बदलकर मैं जरा मनीषा दीदी से मिल आऊँ। वे लोग भी तो कनाडा जाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

(अन्दर की ओर जाता है।)

विश्वजीत : जाओ, सब जाओ ! मैं कुछ भी नहीं कर सकता। बस सब को जाते हुए देख सकता हूँ।

दीप्ति	:	जाते देखना आपको बुरा लगता है, पापा? आप हलका नहीं महसूस करते? आपको ऐसा नहीं लगता कि एक और बोझ उतर गया है, आपके ऊपर से?
करुणा	:	(उठती हुई) मैं कहती हूँ यह बहस अब बंद भी करोगे। खाना नहीं खाना है तुम्हें? कब तक चूल्हा लिये बैठी रहूँगी?
दीप्ति	:	(हँसकर) बैठे रहना तुम्हें अच्छा लगता है, इसीलिए बैठी रहती हो। इसी को तुम कर्त्तव्य कहती हो और इसी को ममता। हमारी भाषा में यह महज एक आदत है। मजबूरी भी कह सकते है।
करुणा	:	रहने दे अपनी भाषा को। इस भाषा ने ही तो मनों को तोड़ दिया है। जब देखो बहस, बहस। तुम्हारे जो जी में आये, करो। मैं अब और इन्तज़ार नहीं करूँगी।
		(भीतर जाती है।)
दीप्ति	:	कैसे नहीं करोगी? इन्तज़ार करना तुम्हारी नियति है। लो चाचा जी भी आ गये। (अशोक का प्रवेश) आइए, चाचा जी !
विश्वजीत	:	आओ अशोक, बैठो।
अशोक	:	दीपक से सुना कि विवेक विश्व यात्रा पर जा रहा है।
विश्वजीत	:	सुना तो मैंने भी है।
अशोक	:	रोकोगे नहीं?
विश्वजीत	:	पहले किसी को रोक सका हूँ क्या? जाते देखना ही मेरे भाग्य में लिखा है। मेरे क्या, हम सबके। तुम भी क्या दीपक से कुछ करवा सके?
अशोक	:	कौन किसकी सुनता है आजकल ? और उसे भी क्या दोष दूँ? उसके ऊपर भी बहुत से लोग हैं। जो सबके ऊपर हैं, वह भी सिफारिश करता है और अब तो उसकी सरकार का पतन हो गया है।
विश्वजीत	:	क्या कहते हो, पतन हो गया?
अशोक	:	हाँ, शासक दल के कुछ लोग विरोधियों से जा मिले। दीपक भी निराश होकर वापस चला गया। उसे बहुत आशा थी उनसे कि देश के लिए कुछ करेंगे ......

विश्वजीत	:	(सहसा हँसकर) देश का खूब नाम लिया तुमने। आजकल सभी देश के दर्द के नाम पर शहादत का जाम पीते हैं।
दीप्ति	:	(सहसा उत्तेजित होकर) यह सब झूठ ..... है। देश है कहाँ? देश के भीतर एक और देश बनाए बैठे हैं हम। भीतर के देश का नाम है स्वार्थ, जो प्रान्त, प्रदेश, धर्म और जाति-इन नाना रूपों में प्रकट होता रहता है। अखबारों में भ्रष्टाचारों की कहानियाँ छपती हैं। बेपनाह दौलत की कहानियाँ छपती है। खुलेआम गुण्डागिरी की कहानियाँ छपती हैं। झूठे दिलासों से पन्ने भरे रहते हैं। झूठे दस्तावेज़ तक छपते हैं, जिसमें विरोधियों को मारा जा सके। इन सब बातों की किसी देशभक्त को चिन्ता नहीं है।
अशोक	:	(तीव्र होकर) तो किस बात की चिन्ता है? मैं पूछता हूँ तो किस बात की चिन्ता है?
दीप्ति	:	सुनना चाहेंगे ? अच्छा लगेगा सुनना? तो सुनिए। उन्हें बस एक बात की चिन्ता है-नई पीढ़ी को कहीं सही नेतृत्व न मिल जाए। वे हताश और निराश बने रहें और बूढ़े लोग मृत्यु की अन्तिम पग ध्वनि सुनने तक ऐयाशी और अधिकार की गंगा में डूबे रहें, लेकिन मैं कहती हूँ कि अब वह युग आ रहा है, जो आदमी के भीतर और बाहर कोई करतूत छिपी नहीं रह सकती। वह नंगा हो जाएगा और उसी नंगी लाश पर नई सभ्यता जन्म लेगी।

(करूणा का तेज़ी से प्रवेश)

करुणा	:	यह चीख-चीखकर किसको जगाया जा रहा है। मैं पूछती हूँ, तू खाना खायेगी भी या नहीं?
दीप्ति	:	अभी नहीं।
करुणा	:	तो मैं क्या करूँ?
दीप्ति	:	रामायण के आरम्भ में भाग्य विधि पढ़ने का जो कोष्ठक है, उसमें हम सबके भविष्य की खोज करो।
अशोक	:	आपने इस लड़की को बहुत सिर चढ़ा लिया है भैया।
विश्वजीत	:	मैंने? कभी कुछ किया है मैंने? कभी कुछ करने लायक हुआ हूँ?

(विवेक का प्रवेश)

विवेक	:	अच्छा, चाचा जी हैं। चाचा जी, अब आपको दीपक भैया से कुछ

नहीं कहना है। मैं परसों विश्व भ्रमण के लिए निकल रहा हूँ और हाँ पापा, आज रात मैं मनीषा दीदी के घर रहूँगा।

दीप्ति : ज़रा रुको, मैं भी चलती हूँ।

विवेक : चलो। (हँसकर, करुणा से) मम्मी ! आशीर्वाद की बात करना है तो बुर्जुआपन, फिर भी आप लोगों को खुश करने के लिए मैं बकायदा आशीर्वाद ग्रहण करने आऊँगा। चलो, दीप्ति।

दीप्ति : पापा, जाऊँ मैं? मेरी अच्छी मम्मी, खाना मैं वहीं खा लूँगी। (दोनों जाते हैं।) एक क्षण सब स्तब्ध रहते हैं, दीर्घ श्वास लेकर विश्वजीत बोलते हैं।

विश्वजीत : अब तू ही बता अशोक, मैं हूँ कहीं?

अशोक : हम कहीं नहीं हो सकते। अच्छा ही है।

करुणा : सब चले गये। अब तो तुम खाना खा लो।

विश्वजीत : खाना? हाँ वह भी एक मज़बूरी ही है। आओ अशोक, तुम ही आ जाओ। बहुत दिन हुए साथ बैठकर खाये।

अशोक : साथ बैठकर? हाँ, जैसे पुराने जन्म की बात हो। ऐसा लगता है यह जीवन तो जैसे सारे का सारा निरर्थकता में खो गया।

विश्वजीत : और यह लोग कहते हैं कि जो निरर्थक है वही सबसे अधिक सार्थक है। निरर्थकता में ही अर्थ की खोज की जा सकती है।

अशोक : पता नहीं, अर्थ जब चूक ही गया तो उसकी खोज क्या?

(बोलते हुए वे अन्दर चले जाते हैं। मंच पर अंधकार उतरने लगता है। दो क्षण बाद जब आलोक फिर उभरता है तो वहाँ पर व्यवस्था दिखाई देती है। डाइनिंग टेबल के आसपास मंझला बेटा शरत, बड़ी बेटी इन्दु, मंझली बेटी मनीषा और छोटी बेटी दीप्ति बैठे चाय पी रहे हैं और बातें कर रहे हैं। सब आधुनिक हैं। दीप्ति किंचित परिवर्तन के साथ हिप्पी वेश में हैं।

दीप्ति : एक युग के बाद आज हम यहाँ इकट्ठे हुए हैं। क्यों शरत भैया, पिछली बार कब आये थे आप?

शरत : फुर्सत कहाँ रहती है याद रखने की। आया तो हूँ एक दो बार भागते भागते, पर तू थी नहीं।

इन्दु	:	मैं भी इधर कम ही आ पाई। मकान का काम फैला है न। हाँ, ममा कहाँ गयी?
दीप्ति	:	जाती कहाँ? पड़ोस में है। पापा के लिए बड़ी चिंतित है। तभी आप सबको बुलाया है। लो वे आ गई।

(करूणा का प्रवेश)

शरत	:	नमस्ते, मम्मी!
इन्दु	:	नमस्ते, मम्मी!
मनीषा	:	नमस्ते, मामा!
करुणा	:	(बैठती हुई) नमस्ते! तो तुम सब आ गये। फुर्सत मिल गई?
शरत	:	फुर्सत कहाँ हैं? लेकिन तुमने बुलाया तो आना ही था। बात क्या है?
इन्दु	:	हाँ, आज कुछ गंभीर मालूम होती है।
मनीषा	:	दीप्ति कहती है कि आप पापा के बारे में चिन्तित हैं।
करुणा	:	दीप्ति ठीक कहती हैं। मैंने आज तुम सब को तुम्हारे पापा से सम्बन्ध में बातें करने के लिए बुलाया है। उनकी हालत दिन प्रतिदिन खराब होती जा रही है। जैसे जड़ हो गये हैं। कोई रस ही नहीं रह गया है। ज़िंदगी में। किसी से ज़रा भी राग नहीं। मुझ से भी नहीं। बोलती हूँ तो बस बोल भर लेते हैं। नहीं तो अकेले बैठे शून्य में कुछ खोजा करते हैं या फिर बड़बड़ाया करते हैं। और इधर तो मैंने उनमें एक नई बाते देखी है।
शरत	:	क्या बात है वह?
करुणा	:	बहुत बुरी बात है। गाली देने लगे हैं।
इन्दु	:	क्या कहती हो, ममा? पापा गाली देते हैं तुमको?
मनीषा	:	मैं नहीं मानती। मैंने पापा की इच्छा की विरुद्ध काम किया है वे अभी तक असद को स्वीकार नहीं कर सके, लेकिन जब कभी भी वे मिलते हैं तो कोई ऐसी बात नहीं करते, जिससे उनका क्रोध ज़ाहिर हो।
शरत	:	पापा कैसे भी हों, गाली उन्होंने किसी को नहीं दी।
दीप्ति	:	गाली तो वे मुझे भी नहीं देते। हालाँकि वे मुझसे बेहद नाराज़ हैं।
करुणा	:	मैं कहती हूँ, क्या तुम हमेशा अपनी ही आवाज़ सुनते रहोगे? पूरी बात सुने बगैर ही अपनी राय देने लगे। मैंने यह कब कहा कि वे

किसी दूसरे को गाली देने लगे हैं। (गंभीर होकर) काश, वे मुझे गाली दे सकते। मुझे ज़रा भी दु:ख नहीं होता, लेकिन वे तो अपने को गाली देते हैं। कोसते हैं, रोते हैं।

इन्दु : यह बिल्कुल दूसरी बात है। जिनका दूसरों पर बस नहीं चलता, वे ही अपने को कोसा करते हैं।

शरत : स्पष्ट है कि वे हीन भाव का शिकार हो गये हैं। घोर निराशावादी है। कभी-कभी ऐसे लोग पागल तक हो जाते हैं।

करुणा : यही तो मैं कहती हूँ तुम लोग उनके बारे में सोचते क्यों नहीं? तुमने सदा अपने-अपने मन की की। अपनी-अपनी आवाज़ सुनी। हम किसी को रोक नहीं पाये। विमल कनाडा में बैठा है। कभी-कभी पैसे भेजकर दायित्व से मुक्ति पा लेता है। विवेक न जाने किस प्रश्न का उत्तर पूछता हुआ घूम रहा है। कभी मिला है किसी के प्रश्न का उत्तर। जाने दो। अब इस दीप्ति को ही देखो। क्या रूप बनाया है। इसने ! देर तक मित्रों के साथ घूमती रहती और अब कहती है हॉस्टल में जाकर रहूँगी।

दीप्ति : ममा ! आप मुझे समझने की चेष्टा क्यों नहीं करते? आप प्यार करते हैं। ममता प्रकट करते हैं, पर समझने की कभी कोशिश नहीं करते। मैं कहती हूं, किसी को समझना ही प्यार करना है। आप यह क्यों नहीं सोचती कि हॉस्टल में रहने में सुविधा है। डॉक्टरी की पढ़ाई आसान नहीं है। मित्रों के साथ घूमती हूँ, लेकिन आवारागर्दी तो नहीं करती। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेने के कारण देर से लौटती हूँ और आपको परेशानी होगी यह सोचकर कभी-कभी नितिन के साथ चली जाती हूँ। नितिन और मैं विवाह करने का निश्चय कर चुके हैं। मैं यह सब आपके भले के लिए ही करती हूँ, फिर भी आप नाराज़ होती हैं तो मुझे चिन्ता नहीं।

करुणा : चिन्ता करने के लिए कौन कहता है? चिन्ता हो भी क्यों ? पैसे मिल ही जाते हैं खर्च के लिए।

दीप्ति : (तेज़ होकर) वही एक बात, पैसे, पैसे। आप नहीं देना चाहते तो न दीजिए। कर लूँगी अपना प्रबन्ध। नहीं पढ़ूँगी, लेकिन इस घर में नहीं आऊँगी। इस सीलन भरे घर में जहाँ हर वक्त लिजलिजे कॉक्रोचों के चलने की सुरसुराहट होती रहती है। मेरा दम घुटता है यहाँ।?

करुणा	:	तुम जाती हो तो चली जाओ, रोकता कौन है? पर इस तरह चीखो मत। आखिर इसी घर में हमने भी तो दिन काटे हैं। पराई बेटी थी। चालीस-चालीस लोगों के बीच में रही हूँ।
दीप्ति	:	कभी सोचा है ममा, कहाँ गये वे चालीस लोग? और क्यों गये?
करुणा	:	मैंने सब कुछ देखा और सोचा है। पर जाने दो उन बातों को। इस वक्त मुझे चिन्ता है तुम्हारें पापा की। आज वे बहुत सवेरे ही घर से निकल गये थे। अभी तक नहीं लौटे हैं। तुम उन्हें देखो। आखिर तुम्हारा भी तो कुछ दायित्व होगा। मुझे बहुत डर लगता है।
मनीषा	:	ममा! अभी तीन चार घंटे पहले मैं असद के साथ ट्रेन से घर लौट रही थी तो मैंने पापा को देखा था।
करुणा	:	कहाँ देखा था?
मनीषा	:	पुल के उस पार। रेल की पटरी के पास खड़े हुए।
शरत	:	रेल की पटरी के पास?
इन्दु	:	वहाँ वे क्या करने गये थे?
दीप्ति	:	घूमने तो वे उस ओर कभी नहीं जाते।
करुणा	:	यही डर तो मुझे खाये जा रहा है। तुम लोग जाओ और देखो, वे कहाँ हैं?
मनीषा	:	इतना डरने की आवश्यकता नहीं, मम्मी! मैंने चलती ट्रेन से उनको पुकारा था। तुम तो जानती हो, वहाँ आकर ट्रेनों की चाल कितनी धीमी हो जाती है। इसलिए चौंककर उन्होंने मेरी ओर देखा था और मुस्कराये थे।
शरत	:	हाँ ममा! पापा आ जायेंगे। चिन्ता की कोई बात नहीं।
करुणा	:	चिन्ता की बात मुझ पर छोड़ो। साफ-साफ कहो कि तुम उन्हें देखने नहीं जाना चाहते।
शरत	:	तुम तो व्यर्थ में ही नाराज़ हो जाती हो, मम्मी। जाने से किसने मना किया है लेकिन सवाल फुर्सत का है। तुम्हें मालूम है मुझे पेट्रोल पम्प मिलने वाला है। उसी के लिए फाइनैन्सर का प्रबन्ध कर रहा हूँ, लेकिन जब तक ऊपर की सिफारिश न हो, तब तक कुछ नहीं हो सकता (आज ऊपर वाले का मुझे जुगाड़ करना है। दीपक भैया ने मुझे आठ बजे बुलाया था और अब सवा सात बजे हैं। (उठता है।)

करुणा : तब तुम क्या देखोगे? जाओ भाई। ऊपर वाले का जुगाड़ करो।

(शरत जाता है)

इन्दु : जाना तो मुझे भी है, मम्मी।

करुणा : तुम्हें कहाँ जाना हैं?

इन्दु : आपको मालूम नहीं, हम मकान बनवा रहे हैं? और मकान बनवाना कितना कठिन काम है? सरकार से कर्ज लिया, इंश्योरेंस कम्पनियों से कर्ज़ लिया, मित्रों से कर्ज लिया, फिर भी परेशानी से छुट्टी नहीं मिली। सच कहती हूँ ममा, हम दोनों खाना-पीना भूल गये हैं। किसी एक को वहाँ रहना ही पड़ता है। न रहें तो सामान गायब हो जाता है। अभी उस दिन लोहे की छड़ें उठ गई थीं। कल दस बोरी सीमेंट ही गायब हो गई। अब बताओ दो आदमी क्या-क्या देखें? अच्छा मम्मी चलूँ, मज़दूरों का हिसाब भी करना है।

(जाती है)

करुणा : मैं पूछती हूँ, तुममें से कोई यह सोचता है कि माँ अब बूढ़ी हो गई है। खाना बनाते समय उसके अब हाथ काँपते हैं।

मनीषा : खाना बनाने का इन्तज़ाम तो हो सकता है, लेकिन पापा का क्या करोगी? तुम्हारे हाथ का बनाया खाना ही वे खा सकते हैं।

करुणा : इसीलिए तो मैं किसी से कुछ नहीं कह सकती, लेकिन अब उन्हें ढूँढ़ने कहाँ जाऊँ?

दीप्ति : कहीं भी नहीं। आप तो व्यर्थ में परेशान रहती हैं। पापा स्वयं ही चले आयेंगे। ममा मैं सोचती हूँ क्यों न मैं मनीषा दीदी के साथ ही चली जाऊँ?

करुणा : तू अभी जाना चाहती है, इसी वक्त?

दीप्ति : हाँ, ममा। तुम ज़रा भी मत डरो। परसों ज़रूर आऊँगी। मेरा जन्म दिन है न। परसों मैं बालिग हो जाऊँगी। यानी स्वतन्त्र। ओह, स्वतन्त्र होना भी कितनी अच्छी बात है। है न ? घबराओं न ममा। मैं अपनी ज़िम्मेदारी समझती हूँ। हॉस्टल में किसी दूसरे का डर नहीं। डर है तो केवल अपने से। और जो अपने से डरता है, वह अपना दायित्व समझता है। मैं बन्धनों को तोड़ डालना चाहती हूँ। व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर देना चाहती हूँ। पर ज़िंदगी को नहीं। ज़िंदगी

से मुझे प्यार है। (उसी समय शरत और विश्वजीत मंच पर प्रवेश करते हैं।) अरे लो ममा! पापा तो यह आ गये। बिल्कुल ठीक हैं। मेरा मतलब है, न बदन पर कहीं चोट है, न चेहरे पर कोई परेशानी है।

शरत : लो संभालो, ममा! तुम नाहक इतना डर रही थीं। पापा तो स्वयं ही आ रहे थे, लेकिन मैं अब चला। फाइनैन्सर का प्रबन्ध न हुआ तो पेट्रोल पम्प हाथ से निकल जायेगा। (जाता है।)

विश्वजीत : (सोफे पर बैठता है।) हाँ, हाँ तुम जाओ, सब जाओ। तुम लोग यहाँ रुक ही कैसे सकते हो? इस रुकी हुई ज़िंदगी में! मैं पूछता हूँ तुम लोग यहाँ आये कैसे?

करुणा : और मैं पूछती हूँ आप सवेरे से कहाँ थे?

चाय नाश्ता देती हूँ।

मनीषा : पापा! आप चार घंटे पहले रेल की पटरी के पास खड़े थे न?

करुणा : आप वहाँ क्या करने गये थे?

विश्वजीत : (शान्त भाव से चाय पीते हुए) जो तुम लोग समझ रहे हो, वही करने गया था।

मनीषा : यानी खुदकशी? नहीं, यह नहीं हो सकता। यह झूठ है?

विश्वजीत : जब तुम इस बारे में सोच सकते हो तो हो क्यों नहीं सकता? लेकिन छोड़ो इन बातों को। (सहसा कहीं खो जाते हैं।) मनीषा बेटी! तुमने जब मुझे पापा कहकर पुकारा था, तब मुझे ऐसा लगा था कि यह सारा आकाश इस एक शब्द से भर उठा है। मैंने सोचा खुदकशी का अर्थ है मौत और मौत का एक दिन निश्चित है। तब खुदकशी करना बेकार है। जान क्यों दी जाये? अंतिम क्षण तक उसे बचाए रखना चाहिए। वह सब कुछ देखने के लिए जो होने वाला है। अपने को दर्शक बनने से वंचित करना कहाँ की बुद्धिमानी है? सो मैं लौट आया।

करुणा : बहुत अच्छा किया। राह देखते-देखते मैं तो पागल हो गयी थी।

मनीषा : ममा, पापा तुमसे मज़ाक कर रहे हैं। ये खुदकशी करने नहीं गये थे। अच्छा पापा अब मैं चलूँ।

दीप्ति : दीदी, मैं भी जाती हूँ। पापा भूल न जाइयेगा। परसों मेरी वर्षगांठ है, मैं बालिग हो जाऊँगी।

विश्वजीत : तो तुम भी बालिग हो जाओगी? सब कुछ करने को स्वतन्त्र। अच्छा बेटी। तुझे भी बालिग होते देखूँगा। वैसे मुझे कुछ पता नहीं, तुम कब बालिग होते हो और कब नाबालिग। सच पूछा जाये तो मैं यह भी नहीं जानता कि मैं स्वयं बालिग हूँ या नाबालिग।

सब हँस पड़ते है। मनीषा और दीप्ति दोनों चली जाती हैं, कई क्षण तक विश्वजीत और करुणा दोनों मौन बैठे रहते हैं। फिर करुणा बोलती है।

करुणा : क्यों जी, क्या आप सचमुच खुदकशी करने के लिए गये थे?

विश्वजीत : पहले मेरी एक बात का जवाब दो।

करुणा : किस बात का?

विश्वजीत : मैं न जीता हूँ, न मरता हूँ, खुदकशी क्या इससे कुछ अलग चीज़ है?

करुणा : इसीलिए तो मैं कहती हूँ कि आप भी यह क्यों नहीं मान लेते कि आप स्वतन्त्र हो गये हैं। बच्चों के दायित्व से स्वतन्त्र। स्वतन्त्र होना कितना अच्छा है।

विश्वजीत : अच्छा तो है, परन्तु अपनी मज़बूरियों का मैं क्या करूँ? स्वभाव की मज़बूरी, बच्चों को प्यार करने की मज़बूरी, इनका बाप होने की मज़बूरी! (हँसता है) बाप होने की मज़बूरी! उनको खो देने पर यह आशा रखने की मजबूरी कि एक दिन लौट आयेंगे।

हँसता रहता है। करुणा सशंक भाव से उसकी ओर देखती है, लेकिन हँसी नहीं रुकती। इसी हँसी पर पर्दा धीरे-धीरे गिर जाता है।

अभ्यास

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दें:-

1. 'टूटते परिवेश' एकांकी में एक मध्यवर्गीय परिवार को टूटते हुए दिखाकर प्राचीन और नवीन पीढ़ी के संबंध को व्यक्त किया है। स्पष्ट करें।
2. 'टूटते परिवेश' एकांकी का सार लिखें।
3. निम्नलिखित की चारित्रिक विशेषताएँ लिखें:-

   (1) विश्वजीत (2) विवेक (3) दीप्ति
4. 'आज की नारी स्वतन्त्रता की सीमा लाँघ रही है।' एकांकी के आधार पर उत्तर दें।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 60 शब्दों में दें:-

1. विवेक और दीप्ति अपने पिता विश्वजीत से किस प्रकार व्यवहार करते हैं?
2. विवेक विदेश क्यों जाना चाहता है?
3. 'देश के भीतर एक और देश बनाये बैठे हैं हम। भीतर के देश का नाम है स्वार्थ, जो प्रान्त, प्रदेश, धर्म और जाति-इन रूपों में प्रकट होता है।' दीप्ति के इस कथन से किस समस्या की ओर संकेत किया गया है?
4. 'स्वभाव की मजबूरी, बच्चों को प्यार करने की मजबूरी, इनका बाप होने की मजबूरी, उनको खो देने पर यह आशा रखने की मजबूरी कि एक दिन लौट आयेंगे।' इन पंक्तियों में विश्वजीत का अन्तर्द्वन्द्व स्पष्ट उभर कर आया है। स्पष्ट करें।
5. इस एकांकी के माध्यम से लेखक ने नयी पीढ़ी को क्या संदेश दिया है?
6. इस एकांकी का शीर्षक कहाँ तक सार्थक है? स्पष्ट करें।

******